

March 1968
Phalguna 1889

© राष्ट्रिय शैक्षणिक अनुसंधान तथा प्रशिक्षण परिषद्, १९६८

मूल्यम् : रु. २.५०

राष्ट्रिय शैक्षणिक अनुसंधान तथा प्रशिक्षण परिषदे बी-३१ महाराणी
बाग स्थितेन प्रकाशन-विभागेन प्रकाशितम् । कलकत्तायां ३२
आचार्य प्रफुल्लचन्द्रमार्गस्थे श्री सरस्वती मुद्रणालये मुद्रितम् ॥

PREFACE

IT is with great pleasure that I submit the Sanskrit reader, *Sanskritodaya*, for the use of higher secondary classes in the country.

A word may be said here about how the text has been prepared. Lessons embodying what is most characteristic and striking in Sanskrit have been framed from the wealth of inspiring material offered by the *Rāmāyaṇa* and the *Mahābhārata*, while instructive and easy extracts have been taken from *Kādambarī*, the finest prose work of Sanskrit literature. In the lessons taken from the *Hitopadeśa*, *Pañcatantra* and other works, changes have been introduced in the light of the happier phrases suggested by repeated readings of the *Mahābhārata*, the unique treasure of mankind, which rightly claims—

yad ihāsti tad anyatra

yan nehāsti na tat kvacit

The entire text of *Sanskritodaya* was closely discussed by the Sanskrit Textbook Panel and then, after modifications, the manuscript was circulated among about forty leading Sanskrit scholars in the country; copies were also sent to the Directors of Public Instruction in the various states. In the light of the comments received, further changes were made. The text that emerged was finally examined by three different committees comprising scholars, professors and school teachers. It is hoped that with this repeated scrutiny by so large a number of competent authorities, *Sanskritodaya* has gained in quality and variety.

Sanskritodaya can thus be said to be the outcome of the cumulative effort of the Sanskrit Samāja, as a whole. However, if some shortcomings yet remain, the responsibility is entirely mine.

Times are fast changing and with them should change, too, our approach to the study of Sanskrit and its teaching. The Sanskrit Panel, rightly emphasizing the intensive study of Sanskrit, authorized me to prepare exercises not in English, not in Hindi, not in any regional language, but in Sanskrit. This should make the book acceptable in all the states, for, in a rational scheme of Sanskrit teaching, the teacher should teach Sanskrit primarily through Sanskrit, as is done in the case of English. Even if this method irks some teachers, exercises written in Sanskrit should help them to start conversation with their students in easy Sanskrit.

In this undertaking, I owe an enormous debt to my friends, whose ideas I have absorbed in discussion or through reading, and whose thoughts have so become part of myself that I cannot distinguish what is theirs from what is mine. I must content myself with expressing my gratitude to them in general and ask them to forgive the omission of detailed references. My sincere thanks are due to all the scholars who have, at one stage or the other, cooperated with me in this undertaking, but I must

Preface

particularly mention Prof. R. N. Dandekar, Poona, Prof. Mangrulkar, Poona, Principal Gaurinatha Sastri, Calcutta, Principal Ramachandra and Pandit Madhusudana Sastri of the Banaras University and Prof. V. Raghavan, Madras. It has indeed been a pleasure to deal with these scholars and I tender my sincere thanks to them.

Finally, I must thank the National Council of Educational Research and Training for giving me this opportunity to do some service to 'Sanskrit'.

Kurukshetra University
Kurukshetra

SURYAKANTA

भूमिका

अतिमहानयं प्रमोदावसरो यदद्याहं संस्कृतोदयाभिधानं पुस्तकमिदं विपश्चिता पुरो धातुं समर्थः । संकलन-
मिदमुच्चतरमाध्यमिकविद्यालयानां नवमदशमैकादशश्रेणीषु संस्कृते पाठ्यत्वेनाभिप्रेतम् ।

आसीदस्याकलनप्रकारः किञ्चित्प्रततः श्रमसापेक्षश्च । एतत्संवन्धि मौलिकं कार्यं त्वेकान्तेन मयैव कृतम्,
अत्रत्याः कतिपये पाठा अपि मयैवाकलिताः । हितोपदेशपञ्चतन्त्रादिग्रन्थेभ्यः प्रतिगृहीतेषु पाठेष्वपि पदे
पदे वाञ्छनीयाः परिष्कारा महाभारताद्याकरग्रन्थागतानां मञ्जुलतराणां पाठानां साहाय्येन संनिवेशिताः ।
मयोपरचितानां पाठानां प्रमुखः प्रभवोऽपि महाभारतमेव । कतिपये पाठास्तु पुष्कलं सरला नितरां रुचि-
कराश्चेति कादम्बरीत उद्धृत्यात्र पुरस्कृताः ।

इत्थं त्रिचितोऽयं पाठसंग्रहः केन्द्रियसंस्कृतपटलेन विगताक्तूबरमासस्य षड्विंशतिसप्तविंशतितारिकयो-
र्दिल्लीनगरेऽक्षरशो व्यलोकितः । तत्र स्वीकृते रूपेऽयं प्रहितः संशोधनार्थं चत्वारिंशद्भूयः संस्कृताध्यापकेभ्य
सर्वप्रदेशानां शिक्षासंचालकेभ्यश्च । सर्वतः प्राप्तानां संभतीनां प्रकाशे वाञ्छनीयानि परिवर्तनानि सनि-
वेश्याय संग्रहः पूनानगरे विगतजनवर्याः सप्तविंशत्यष्टाविंशतिनवविंशतितारिकासु द्वादशपण्डिताना
परिषदाक्षरशः परीक्षितः, मार्चमासस्याष्टमनवमतारिकयोः कलकत्तानगरेऽपरया समित्या समीक्षितः, तदनन्तर
दशमैकादशद्वादशतारिकासु वाराणस्यां काशीविश्वविद्यालये द्वादशपण्डितैः संभूयाक्षरशः परीक्षितः । इत्थ
बहूनां विपश्चितां संहतेन प्रयत्नेनायं संग्रहः सौष्ठवस्य कामप्यपूर्वां कोटिमापन्नः सर्वेषामपि प्रदेशानामुच्चतर-
माध्यमिकश्रेणीषु संस्कृतमधीयानानां छात्राणां रुचिकरः सौख्यावहश्च भवेदित्यस्त्यस्माकं दृढो विश्वासः ।

अस्त्ययं संस्कृतोदयो वर्तमानरूपेऽखिलस्यापि संस्कृतसमाजस्य रचना । संनिवेशितेष्वेवंविधे संहते प्रयत्ने
यद्याविलयन्त्येनं केचन दोषास्तदर्थमेकान्तेनाहमपराद्धः क्षम्यतां सहृदयैरिति याचे भूयो भूयो विनतेन शिरसा ।

नाविदितमिदं विपश्चितां यदद्य कालो जवेन परिवर्तते । ध्रुवमस्य परिवर्तनेन साकमभीष्येत परिवर्तन-
मस्माकं संस्कृतस्य पठनपाठनपद्धत्यामपि । एतदेव मनसि निधायाहमादिष्टः संस्कृतपटलेन संस्कृतोदयस्य-
पाठानामभ्यासान् संस्कृत एवोपन्यस्तुं न त्वेव हिन्दीभाषायामाङ्गलभाषायामपरस्यां वा कस्यामपि प्रादेशिक्या
भाषायाम् । एवं सर्वात्मना संस्कृतेनालंकृतोऽयं संग्रहः सर्वेष्वपि प्रदेशेषु सादरं प्रतिगृहीतो देशे किमप्यपूर्व-
मैक्यं सामनस्यं चोद्भावयेदित्यस्त्यस्माकं बलीयानभिलाषः । संस्कृताध्यापकाश्चेतः परं संस्कृतस्य पाठने
संस्कृतमेवाश्रित्य संस्कृतस्य स्तरमुन्नयेरन्नित्यप्यस्त्यस्माकं विनयः ।

संग्रहेऽस्मिन्ननेकैविद्वद्भिः संहृत्योद्युक्तम्; गाढमनुगृहीतोऽहमेतेषामुदाराय साहाय्याय । परमतिमलीमस
भवेदिदं यद्यत्र नावेदयेऽहं मनोगतां कृतज्ञतां विपश्चिद्वर्येभ्यो दाण्डेकर, मङ्गलकर (पूना), गौरीनाथ
(कलकत्ता), राघवन् (मद्रास्), रामचन्द्रभधुसूदनशास्त्रिभ्यः (वाराणसी) यैर्निर्व्याजं पुरस्कृतः सहकारो-
ऽस्मिन् सारस्वते समुद्योगे ।

दृढं चाहमनुगृहीतो राष्ट्रियशिक्षणसंस्थानस्याधिकारिणां यैर्मह्यं वित्तीयोऽयमवसरः सरस्वत्याः सेवायाः ।
मङ्गलमभिकामयेहमेतस्य संस्थानस्य ।

कुरुक्षेत्र-विश्वविद्यालयः

सूर्यकान्तः

दो शब्द

प्रस्तुत पुस्तक को देश के समक्ष रखते हुए मुझे हार्दिक प्रसन्नता है। पुस्तक का संकलन भारत के उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों की नवमी, दशमी एवं एकादशी श्रेणियों में संस्कृत पढ़ने वाले छात्र एवं छात्राओं के लिये किया गया है।

संकलन का काम अमसाध्य ठहरा है। पाठों का विचयन मैंने स्वयं किया है। तीनों श्रेणियों के लिये कतिपय पाठ भी मैंने स्वयं लिखे हैं। हितोपदेश, पञ्चतन्त्र तथा अन्य ग्रन्थों से उद्धृत पाठों के बीच यत्रतत्र महाभारत से चुने मोती जड़ दिये गये हैं। संकलन ने हमारे जीवन की संध्याको महाभारतादि आकरग्रन्थों के पारायण से सभाजित कर दिया है।

संकलन में निवेशित हमारे अपने पाठों का प्रमुख आधार भी महाभारत ही रहा है। कादम्बरी के बिना संस्कृत का गद्य-शरीर छूँछा रह जाता है। अतः कादम्बरी से कुछ रुचिकर एवं ऋजु गद्यांश छाँटकर किशोर छात्रों के संमुख प्रस्तुत किये गये हैं।

संग्रह को संस्कृत-पटल ने २६-२७ अक्टूबर १९६५ को दिल्ली में हुई अपनी बैठक में आद्योपान्त अक्षरशः पढ़ा था। पटल द्वारा परिष्कृत रूप में इसे देश के चालीस मूर्धन्य विद्वानों की सेवा में परिष्कारार्थ भेजा गया। साथ ही सभी प्रदेशों के शिक्षासंचालकों के पास भी इसकी प्रतियाँ भेजी गईं। इन सभी से प्राप्त विस्तृत परामर्शों को ध्यान में रखकर संस्कृतोदय में सुधार किये गये और इसके इस प्रकार परिनिष्ठित रूप पर पूना में जनवरी २७-२९ को हुई १२ विद्वानों की बैठक में आद्योपान्त अक्षरशः विचार हुआ; कलकत्ता में मार्च ८-९ की बैठक में परामर्श हुआ; और अन्त में वाराणसीस्थ काशी विश्वविद्यालय में मार्च १०-१२ को ब्रैठी १२ विद्वानों की परिषद् में आद्योपान्त अक्षरशः विचार हुआ।

इस प्रकार परिनिष्ठित हुए अपने वर्तमान रूप में संस्कृतोदय भारत के अखिल संस्कृत समाज की रचना ठहरता है। फिर भी यदि इसमें कुछ त्रुटियाँ रह गई हैं तो यह मेरा अपना अपराध है। इसके लिये मैं विद्वानों से नतमस्तक होकर क्षमा चाहता हूँ।

कालचक्र तेजी से घूम रहा है; और इसके साथ ही हमारे देश में भी आमूल परिवर्तन हो रहे हैं। यह भला हो या बुरा इसका प्रतिरोध असंभव है। परिवर्तन के इस दौर में हमारे संस्कृत के पठनपाठन की पद्धति में भी परिवर्तन वाञ्छनीय है। भारत के सुदूर सांस्कृतिक क्षितिज पर आँख रखते हुए संस्कृत-पटल ने मुझे संस्कृतोदय में अभ्यासों को संस्कृत में ही लिखने का आदेश दे कर अपनी दूरदर्शिता का परिचय दिया है। इस प्रकार सर्वात्मना संस्कृत से अचित्त संस्कृतोदय का भारत के सभी प्रदेशों में समान रूप में समुदय होगा ऐसी हमारी दृढ़ धारणा है। साथ ही हमारी संस्कृताध्यापकों से यह प्रार्थना भी है कि वे भविष्य में संस्कृत के माध्यम से ही संस्कृत पढ़ाने का सूत्रपात करें, जिससे छात्रों में संस्कृत-भाषण की रुचि उत्पन्न हो और संस्कृत का वास्तविक अभ्युत्थान हो सके।

संस्कृतोदय के समुदय में अनेक विद्वानों का सहयोग रहा है। इन सभी विद्वानों का मैं विर-ऋणी हूँ। किंतु इस प्रसङ्ग में उन विद्वानों का नाम निर्देश न करना अमद्वता होगी, जिनके सत्परामर्शों की छाप इस संकलन

दो शब्द

के प्रत्येक पत्र पर सजी हुई है। इन विद्वानों में प्रमुख हैं: प्रो० आर. एन. दाण्डेकर, प्रो० मङ्गलरकर (पूना), प्रिंसिपल गौरीनाथ शास्त्री (कलकत्ता), प्रो० राघवन (मद्रास), प्रिंसिपल रामचन्द्र शास्त्री एवं पं० मधुसूदन शास्त्री (वाराणसी)। इन सभी को मैं हृदय से धन्यवाद देता हूँ।

अन्त में मैं राष्ट्रीय शिक्षण-संस्थान के अधिकारियों के प्रति भी कृतज्ञता प्रकट करना अपना कर्तव्य समझता हूँ, जिन्होंने इस पवित्र कार्य को मुझे सौंप कर मुझे उपकृत किया है।

कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय

सूर्यकान्त

विषयानुक्रमणिका

पृष्ठाङ्काः

PREFACE	v
भूमिका	vii
दो शब्द	ix

प्रथमः उन्मेषः

किंशः

१	अमृतस्य पन्थाः				
	तैत्तिरीयोपनिषदः शिक्षावल्लीमाश्रित्य	१
२	त्यज दुर्जन-संसर्गम्				
	हितोपदेशे विग्रहे	२
३	बुद्धिर्यस्य बलं तस्य				
	हितोपदेशे सुहृद्भेदे	३
४	सुभाषितानि	५
५	कृतघ्नो मूषकः				
	हितोपदेशे संघौ	६
६	हिमालयः				
	सूर्यकान्तः	७
७	सूक्तयः	९
८	उपायेन हि यच्छक्यं न तच्छक्यं पराक्रमैः				
	हितोपदेशे सुहृद्भेदे	१०
९	लोभो मूलमनर्थानाम्				
	हितोपदेशे मित्रलाभे	१२
१०	इन्द्रधनुः				
	म. म. कुप्पुस्वामिकृते भूगोलशास्त्रे	१४
११	सुभाषितानि	१५
१२	कर्तव्यो नातिसंचयः				
	हितोपदेशे मित्रलाभे	१६
१३	सहसा विदधोत न क्रियाम्				
	हितोपदेशे संघौ	१७

	पृष्ठाङ्काः
१४ प्राणस्य श्रेष्ठत्वम् छान्दोग्योपनिषदः पञ्चमाध्यायस्य अथमक्षरमाश्रित्य	१६
१५ सुभाषितानि	२०
१६ मतिरेव बलाद् परीयसी हितोपदेशो विपद्ये	२२
१७ बृहस्पत्योदार्यम् जातकमालामाश्रित्य	२४
१८ शरद्वर्णनम् विष्णुपुराणे पञ्चमोऽर्धो दशमोऽध्याये	२६
१९ भारतीया वैज्ञानिकाः सूर्यकान्तः	२८
२० प्रकीर्णकानि	२९
२१ राष्ट्रपिता गान्धिः वचनूतानः सधस्वी	३२

द्वितीयः उन्मेषः

१ परमो धर्मः महाभारते आन्तिपर्वणि नृपाधिकलोत्तमो (१०६) अध्याये	३५
२ लोकमातरो नद्यः सूर्यकान्तः	३६
३ प्रतिच्छन्नः सृगालः पञ्चतन्त्रे मिथमेदे	३८
४ मनोरथानामयतिर्न विप्रले पञ्चतन्त्रे अमरीशिनश्चालके	४०
५ सुभाषितानि	४१
६ वसिष्ठ-विश्वामित्रौ सूर्यकान्तः	४३
७ ज्वालामुखाः पर्यताः म.म. कुप्युस्यामिकृते भुगोलशास्त्रे	४६
८ सूक्तयः	४७
९ पितृभक्तो रामचन्द्रः सूर्यकान्तः	४९

विषयानुक्रमिका

पृष्ठाङ्काः

१०	रामाश्रमे भरतः			
	भासकृतस्य प्रतिमानाटकस्य चतुर्थाङ्कात् संकलितम्	५०
११	सीतायाः राक्षणं प्रत्युत्तरम्			
	वाल्मीकिकृते रामायणे अरण्यकाण्डे सप्तचत्वारिंशे (४७) अध्याये	५२
१२	गुरुदक्षिणा			
	भासकृतस्य पञ्चरात्रस्य प्रथमाङ्कात् संकलितम्	५४
१३	आश्रमवर्णनम्			
	कादम्बर्या पूर्वभागे	५६
१४	तपस्विनां श्रेष्ठो जाबालिः			
	कादम्बर्या पूर्वभागे	५७
१५	वासुदेवस्य दौत्यम्			
	भासकृतस्य दूतवाक्यस्य प्रथमाङ्कात् संकलितम्	५८
१६	शबराणां जीवितम्			
	कादम्बर्या पूर्वभागे	६०
१७	परं नैःश्रेयसं वक्षः			
	महाभारते शान्तिपर्वणि द्व्यशीत्यधिकशततमे (१८२) अध्याये	६१
१८	कथं ते वशसः पति ?			
	महाभारते आरण्यकपर्वणि द्वाविंशत्यधिकशततमे (१२२) अध्याये	६३
१९	भीष्मः स्ववधोपायं ज्ञापयति			
	महाभारते भीष्मपर्वणि त्र्यधिकशततमे (१०३) अध्याये	६६
२०	सुभाषितानि	६६

तृतीयः उन्मेषः

१	दुर्गाण्यतितरन्ति ते			
	महाभारते शान्तिपर्वणि एकादशाधिकशततमे (१११) अध्याये	७३
२	उच्छ्वस्युत्तिद्विजः			
	सूर्यकान्तः	७५
३	भारते प्रजातन्त्रपद्धतिः			
	सूर्यकान्तः	७७
४	देवशुनी सरमा			
	सूर्यकान्तः	८०

विषयानुक्रमणिका

	पृष्ठाङ्काः
५ शकुन्तलायाः प्रस्थानम् कालिदासीयाभिज्ञानशाकुन्तलस्य चतुर्थाङ्कात् संकलितम् ..	८२
६ पुष्पकमां सिद्धिः सूर्यकान्तः	८५
७ सर्वशमनः कालिदासीयाभिज्ञानशाकुन्तलस्य सप्तमाङ्कात् संकलितम् ..	८७
८ दानवीरः कर्णः भासकृतस्य कर्णभारस्य प्रथमाङ्कात् संकलितम् ..	९०
९ हर्षो वत्सलस्य पितुः स्मरति वाणभट्टविरचिते हर्षचरिते पञ्चमे उच्छ्वासे ..	९५
१० राजा प्रकृतिरञ्जनात् भवभूतिरचिते उत्तररामचरिते प्रथमेऽङ्के ..	९६
११ शुकनासोपदेशः कादम्बर्या पूर्वभागे	९८
१२ सदाचारः भतुस्मृत्याम्	१०१
१३ राम-भरत संवादः वाल्मीकीये रामायणे अयोध्याकाण्डे अष्टनवतितमे सर्गे ..	१०३
१४ भोमकुप्योधनयोर्गदायुद्धम् महाभारते शल्यपर्वणि षट्पञ्चाशे (५६) सप्तपञ्चाशे (५७) चाध्याये ..	१०६
१५ विष्णोः स्तुतिः कालिदासीये रघुवंशे दशमे सर्गे	१०८
१६ इन्द्रार्जुनयोः संवादः भारविचरिते किरातार्जुनीये एकादशे सर्गे ।	११०
१७ जवाहरलालस्येच्छापत्रम् भास्करी	११४
	११७

प्रथमः उन्मेषः

प्रथमः किरणः

१ अमृतस्य पन्थाः

आचार्यमुपगम्य ब्रह्मचारी प्रार्थयते—

असतो मा सद् गमय ।
तमसो मा ज्योतिर्गमय ।
मृत्योर्मा अमृतं गमय ।

आचार्योऽनुशास्ति—

सत्यं वद । धर्मं चर । ब्रह्मचर्यं चर ।
स्वाध्यायान्न प्रमदितव्यम् । सत्यान्न प्रमदितव्यम् ।
धर्मान्न प्रमदितव्यम् । ब्रह्मचर्यान्न प्रमदितव्यम् ।

मातृदेवो भव । पितृदेवो भव ।
आचार्यदेवो भव । राष्ट्रदेवो भव ।

एष ते धर्मः । एष एव स पन्थाः येन गच्छन् त्वं सत्, ज्योतिः, अमृतत्वं चावाप्स्यसि ।
शुभं ते भूयात् ।

अभ्यासः

१. संधि-परिचयः—

चावाप्स्यसि—च + अवाप्स्यसि

२. समास-परिचयः—

स्वाध्यायः ।

मातृदेवः ।

राष्ट्रदेवः ।

३. भेद-विवेकः—

सत्—तत् । तमसः—तामसः ।

प्रमादः—प्रसादः । आचार्यः—आचारः ।

४. प्रश्नाः—

(क) राष्ट्रशब्दस्य कोऽर्थः ? भवतां राष्ट्रस्य किं नाम ? अस्मदीयस्य राष्ट्रस्य प्रदेशाः के ?

(ख) स्वाध्यायशब्दस्य कोऽर्थः ? ब्रह्मचर्यपालनस्य के गुणाः ?

(ग) सत्, ज्योतिः, अमृतत्वम् इत्येतैः पदैः किमभिप्रेतम् ?

द्वितीयः किरणः

२ त्यज दुर्जन-संसर्गम्

अस्त्युज्जयिनीवर्त्मनि महान् शाल्मलीतरुः । तत्र हंसकाकौ निवसतः स्म । कदाचिद् ग्रीष्मसमये परिश्रान्तः कश्चित् पथिकस्तत्र तरुतले धनुष्काण्डं निधाय मुक्तः । क्षणान्तरे तन्मुखाद् वृक्षच्छाया अपगता । तत आतपेन तन्मुखं तप्तमवलोक्य तद्वक्षरिधत्तेन हंसेन पक्षी प्रसार्य कृपया पुनस्तन्मुखे छाया कृता । ततो निर्भरनिद्रासुखिना तेन पथिकेन मुखव्यादानं कृतम् । अथ परसुखमसहिष्णुः स काकस्तस्य मुखे पुरीषोत्सर्गं कृत्वा पलायितः । ततो यावदसौ पान्थ उत्थायोर्ध्वं निरीक्षते तावत् तेनावलोकितो हंसः काण्डेन हत्वा व्यापादितः । अत उच्यते—

त्यज दुर्जनसंसर्गं भज साधुसमागमम् ।

कुरु पुण्यमहोरात्रं स्मर नित्यमनित्यताम् ॥

अभ्यासः

१. समास-परिचयः—

ग्रीष्मसमयः, पुरीषोत्सर्गः, उज्जयिनीवर्त्म ।

२. रूप-परिचयः—

असहिष्णु, महत्, निद्रा, मुख-शब्दानां प्रथमा, तृतीया, सप्तमीविभक्तिषु ।

३. अर्थ-परिचयः—

वर्त्म, धनुष्काण्डम्, व्यादाय, असहिष्णुः ।

४. भेद-विवेकः—

अपगतः—आगतः । पुरुषः—पुत्रीषम् ।

संसर्गः—विसर्गः । आतपः—संतापः ।

५. प्रश्नः—

(क) महाभारते भीष्मद्रोणकृपाचार्यैः दुर्योधन आश्रितः । किं फलमभून् तस्य ?

तृतीयः किरणः

३ बुद्धिर्यस्य बलं तस्य

अस्ति नीलकण्ठनाम्नि पर्वते दुर्दान्तो नाम सिंहः । स आहारार्थं प्रत्यहमनेकान् पशून् हन्ति स्म । ततः पशुभिरन्योन्यमामन्व्य स सिंहो विज्ञप्तः—“देव, किमर्थं प्रतिदिनमनेक-पशुधातः क्रियते ? तद् यदि भवतोऽनुमतं, वयमेव भवदाहारार्थं प्रत्यहमेकैकं पशुं प्रेषयामः ।” मिहेनोक्तम्—“यद्येतदभिमतं सर्वेषां तर्हि भवतु ।”

ततः प्रभृति सिंहः प्रतिदिनमेकैकं पशुमुपकल्पितं भक्षयन्नास्ते । एवं गच्छति काले एकदा लम्बकूर्चनाम्नो वृद्धशशकस्य वारः समायातः । सोऽचिन्तयत्—

आसहेतोर्विनीतिस्तु क्रियते जीविताशया ।

पञ्चत्वं चेद् गमिष्यामि किं सिहानुनयेन मे ॥

तन्मन्दं मन्दमुपगच्छामि । ततः शनैः शनैश्चलन् यदा स सिंहस्य सकाशमुपगतस्तदा क्षुधापीडितः सिंहो रोषादुत्फान्य लोचने तमुवाच—“किमिति विलम्बादागतोऽसि ?” शशकः प्रत्युवाच—“देव, क्षम्यतामयं क्षणिक उपरोधः । न ममापराधः । आगच्छन् पथि सिहान्तरेण धृतः । तस्याग्रे पुनरागमनाय समयं कृत्वा स्वामिनं निवेदयितुमत्रागतोऽस्मि । अग्रे देवपादाः प्रमाणम् ।”

एतच्छ्रुत्वा सिंहः क्रोधाद् दन्तान् विदशन्नबोचत्—“दर्शय मां क्वासौ दुरात्मा तिष्ठति ।” ततो “यद् देव आज्ञापयति” इत्युक्त्वा लम्बकूर्चस्तं गभीरकूपसमीपं नीत्वा तत्र च “पश्यतु स्वामी” इति निवेद्य तस्मिन् कूपजले तस्यैव प्रतिविम्बं दर्शितवान् ।

ततोऽसौ दर्पाध्मातः कोपात् तस्योपरि आत्मानं निक्षिप्य पञ्चत्वं गतः । अत उच्यते—

बुद्धिर्यस्य बलं तस्य निर्बुद्धेस्तु कुतो बलम् ।

पश्य सिंहो मदोन्मत्तः शशकेन विनाशितः ॥

अभ्यासः

१. संधि-परिचयः—

सिंहेनोक्तम् = सिंहेन + उक्तम्
यद्येतदभिमतम् = यदि + एतत् + अभिमतम्
एकैकम् = एक + एकम्
भक्षयन्नास्ते = भक्षयन् + आस्ते
सोऽचिन्तयत् = सः + अचिन्तयत्
तन्मन्दम् = तत् + मन्दम्
विलम्बादागतोऽसि = विलम्बात् + आगतः + असि
क्वासौ = क्व + असौ
इत्युक्त्वा = इति + उक्त्वा
मदोन्मत्तः = मद + उन्मत्तः

२. समास-परिचयः—

क्षुधापीडितः । दर्पाध्मातः । मदोन्मत्तः ।

३. पद-प्रयोगः—

पशूनाम् । युगपत् । प्रत्यहम् । युष्माकम् । ततः प्रभृति । सत्वरम् । इत्युक्त्वा । कदाचित् ।

४. भेद-विवेकः—

बुद्धिः—शुद्धिः । आहारः—विहारः । दर्पः—सर्पः ।

५. प्रश्नाः—

- (क) सिंहः सर्वदा किं करोति स्म ?
- (ख) शशकेन किं विलम्बकारणं प्रस्तुतम् ?
- (ग) सिंहः कूपे स्वप्रतिबिम्बं दृष्ट्वा किमकरोत् ?
- (घ) आसीद् रावणः सर्ववेदानां ज्ञाता । किमिति स विनाशमुपगतः ?

६. रिक्तस्थान-पूरणम्—

- (क) अथ कदाचित्.....वारः समायातः ।
- (ख) क्वासौ.....तिष्ठति ।
- (ग) बुद्धिर्यस्य..... ।

चतुर्थः किरणः

४ सुभाषितानि

परस्परस्य सुहृदो भावयन्तः परस्परम् ।
पैतृकं भारतं राष्ट्रमखण्डं परिरक्षथ ॥१॥
भ्राता भ्रातरमन्वेतु पिता पुत्रेण युज्यताम् ।
स्मयमानाः समायान्तु सर्वे भारतवासिनः ॥२॥
भूतिमन्तस्तपोनिष्ठाः कर्मरामा जयैषिणः ।
उत्थानमनसः सर्वे, सर्वे सन्तु निरामयाः ॥३॥
संभोजनं संकथनं संप्रीतिश्च परस्परम् ।
गुण्माभिः सह कार्याणि न विरोधः कथंचन ॥४॥

अभ्यासः

१. समास-परिचयः—

उत्थानमनसः, कर्मरामाः, निरामयाः ।

२. अर्थ-परिचयः—

स्वस्ति, भद्रम्, जयैषिणः, तपोनिष्ठाः, उत्थानमनसः ।

३. भेद-विवेकः—

सुहृत्—दुर्हृत् । निरामयः—निरालम्बः ।

युज्यताम्—त्यज्यताम् । विरोधः—अपराधः ।

४. कण्ठस्थं कुरुत—

सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम् ।

देवा भागं यथा पूर्वं संजानाता उपासते ॥

५. प्रश्नौ—

(क) परस्परिकसीहार्दस्य किं फलम् ?

(ख) दुर्योधनस्यानुयायिनः परस्परं सुहृद आसन्; किमिति ते विनाशमुपगताः ?

पञ्चमः किरणः

५. कृतघ्नो मूषकः

अस्ति विन्ध्याटव्यां महातपा नाम मुनिः । तेनैकदा उटजद्वारे काकमुखाद् भ्रष्टो मूषकशावको दृष्टः । ततो जातकारुण्येन तेन मुनिना स नीवारकणैः परिवर्धितः ।

एकदा तं मूषकं खादितुमनुधावन् बिडालो मुनिना दृष्टः । तदा तपःप्रभावात् तेन मुनिना मूषको वलिष्ठो बिडालः कृतः । स बिडालः कुक्कुराद् बिभेति । ततोऽसौ मुनिना कुक्कुरः कृतः । कुक्कुरस्य व्याघ्रान् महद् भयम् । तद् दृष्ट्वा तेन स व्याघ्रः कृतः । परं व्याघ्रमपि मूषकनिर्विशेषं पश्यति मुनिः । अतः सर्वेऽपि तत्रत्या जनास्तं व्याघ्रं दृष्ट्वा वदन्ति— “अनेन मुनिना मूषकोऽयं व्याघ्रतां नीतः ।” एतच्छ्रुत्वा स व्याघ्रः सव्यथोऽचिन्तयत्— “तावदयं मुनिर्जीवति तावदिदं मम स्वरूपाख्यानमकीर्तिकरं नापैति । इत्थं विचिन्त्य स मुनिं हन्तुमुपचक्रमे । मुनिस्तस्य चिकीर्षितं ज्ञात्वा शशाप—

यस्मादेवमपापं मां पापं हिंसितुमिच्छसि ।

तस्मात् स्वयोनिमापन्नो मूषकस्त्वं भविष्यसि ॥

इत्थं शप्त्वा मुनिस्तं पुनर्मूषकं चकार । अत उच्यते—

नीचः श्लाघ्यपदं प्राप्य स्वामिनं हन्तुमिच्छति ।

मूषको व्याघ्रतां प्राप्य मुनिं हन्तुं गतो यथा ॥

अभ्यासः

१. संधि-परिचयः—

विन्ध्याटव्याम् = विन्ध्य + अटव्याम्

ततोऽसौ = ततः + असौ

व्याघ्रान्महत् = व्याघ्रात् + महत्

तदनन्तरम् = तत् + अनन्तरम्

एतच्छ्रुत्वा = एतत् + श्रुत्वा

तावदिदम् = तावत् + इदम्

नापैति = न + अप + ऐति

अत उच्यते = अतः + उच्यते

हिमालय

२. समास-परिचयः—

आश्रमसमीपे, तपःप्रभावात्, स्वरूपाख्यानम्, श्लाघ्यपदम्, करकमुखात् ।

३. भेद-विवेकः—

महानपाः—महातेजाः । शावकः—सायकः । कारुण्यम्—तारुण्यम् ।

निर्विशेषम्—सर्वविशेषम् । मुनिः—शुनी । वलिष्ठः—गरिष्ठः ।

४. वाक्य-पूर्तिः—

स विडालः..... विभेति ।

मुनिस्तं..... मूषकनिर्विशेषं पश्यति ।

नीचः श्लाघ्यपदं प्राप्य..... ।

५. प्रश्नाः—

- (क) मुनिः कं नीचारकणः संवर्धितवान् ?
- (ख) कस्मात् कारणाद् व्याघ्रो मुनिं हन्तुमैच्छत् ?
- (ग) कस्य प्रभावाद् व्याघ्रः पुनरपि मूषको जातः ?
- (घ) कुक्कुरः कस्माद् विभेति ?

षष्ठः किरणः

६ हिमालयः

अस्ति भारतवर्षे उत्तरस्यां दिशि हिमालयो नाम पर्वतराजः । स पृथिव्या मानदण्ड इव राजते । न केवलं भारतवर्षेऽपि तु अखिलेऽपि जगति ये पर्वतास्तेषामयमुन्नततमः श्रेष्ठश्च । अतोऽयं पर्वतराज इति कथ्यते । अस्य तुङ्गानि शिखराणि सर्वदा हिमेनाच्छन्नानि शोभन्ते । अतोऽयं हिमालय इति नाम भजते । अयं पूर्वसागरात् पश्चिमसागरपर्यन्तमायतः । अतोऽयं भारतवर्षस्य रक्षक इति गीयते ।

हिमालयस्य मेखलासु नानाविधा ओषधयः प्ररोहन्ति । तासां काचन नक्तं दीपा इव प्रकाशन्ते । अस्य वनेषु विविधाः पादपा गुल्माश्च प्रभवन्ति । अत्रत्येषु वृक्षेषु शाला देवदारवश्च सुतरामुपयोगिनः । अत्र व्याघ्राः, ऋक्षाः, वृकाश्च विहरन्ति । वने विहरतां मृगाणामेकतमः कस्तूरीमृगः । अस्यैव नाभिमण्डलात् कस्तूरिकोत्पद्यते । तां वैद्या विविधरोगशान्तये उपयुञ्जते ।

संस्कृतोदय

अत्रत्यं मानसं सरोऽतिमनोहरमाल्लादनं दृष्टेः । अस्य जलं स्फटिकमिव निर्मलं हिममिव च शीतलम् । अस्याम्भसि हंसाः सलीलं विहरन्ति । अस्यानुतीरमृषीणामाश्रमाः, यत्रेमे धृतकल्मषा मुनयः सूर्याभिमुखं स्थिताः गायत्रीं जपन्ति ।

अयं नगाधिराजोऽनन्तानां रत्नानां प्रभवः । गङ्गाप्रभृतीनां सरितामित एवोद्गमः । अस्यैव विविक्तासु गुहासु सिद्धास्तपश्चरन्ति ।

अमरनाथ-बदरीनाथ-केदारनाथ-प्रभृतीनि क्षेत्राण्यस्य पावनतां प्रथयन्ति । उक्तं च—

शैलो हिमालयः श्रेष्ठो

देवगन्धर्वसेवितः ।

रक्षको भारतस्यास्य

प्रथितो धरणीतले ॥

गङ्गा यत्र नदी पुण्या

यस्यास्तीरे भगीरथः ।

अयजत्तात बहुभिः

क्तुभिर्भूरिदक्षिणैः ॥

यत्र भूतपतिः सृष्ट्वा

सर्वलोकान् सनातनः ।

उपास्यते तिग्मतेजा

वृत्तो भूतैः सहस्रशः ॥

अभ्यासः

१. संधि-परिचयः—

हिमेनाच्छन्नानि = हिमेन + आच्छन्नानि ।

गुल्माश्च = गुल्माः + च ।

कस्तूरिकोत्पद्यते = कस्तूरिका + उत्पद्यते ।

येष्विये = येषु + इमे ।

इत एव = इतः + एव ।

भारतस्यास्य = भारतस्य + अस्य ।

सूक्तय

२. अर्थ-परिचयः—

मेखला, आयतः, उपत्यका, गुल्मः, आह्लादनम्, दूतकल्मषाः, प्रभवः, इतः, प्रथितः ।

३. वाक्य-पूर्तिः—

(१) अयं पूर्वसागरात्—वर्तते ।

(२) तासां काश्चन नक्तं—इव प्रकाशन्ते ।

(३) अस्याम्भसि हंसाः— ।

४. भेद-विवेकः—

शैलः—शिला । नागः—नगः । उन्नतः—अवनतः ।

आयतः—आयातः । रोगः—भोगः । वित्तम्—सिक्तम् ।

सरित्—सरः । विविक्ता—संयुक्ता । सिद्धम्—साध्यम् ।

प्रथयन्ति—कथयन्ति ।

५. प्रश्नाः—

(क) भारतस्य सुरक्षाव्यवस्थायां हिमालयस्य किं महत्त्वम् ?

(ख) गङ्गायाः कुत उद्गमः ?

(ग) अमरनाथ, बदरीनाथ, केदारनाथ-क्षेत्राणि कुत्र सन्ति ?

सप्तमः किरणः

७ सूक्तयः

शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम् ।

हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः ।

परोपकाराय सतां विभूतयः ।

आर्जवं हि कुटिलेषु न नीतिः ।

चिन्तासमं नास्ति शरीरशोषणम् ।

पुराणमित्येव न साधु सर्वम् ।

अविवेकः परमापदां पदम् ।

निस्पृहस्य तृणं जगत् ।

शठे शाठ्यं समाचरेत् ।

सस्कृतोदय

न ऋते श्रान्तस्य सख्याय देवाः ।
केवलाघो भवति केवलादी ।

अभ्यासः

१. समास-परिचयः—

धर्मसाधनम्, शरीरशोषणम्, केवलाघः ।

२. भेद-विवेकः—

चिन्ता—चिन्ता । आपद्—संपत् । तृणम्—ऋणम् ।

ऋते—कृते । श्रान्तः—शान्तः । नीतिः—भीतिः ।

३. प्रश्नाः—

(क) शारीरिकस्वास्थ्यस्य के उपायाः ?

(ख) शरीरं धर्मस्य साधनं कथम् ?

(ग) 'केवलाघो भवति केवलादी' इत्यस्या उक्तेः क आशयः ?

अष्टमः किरणः

८ उपायेन हि यच्छक्यं न तच्छक्यं पराक्रमैः

कस्मिंश्चित्तरौ वायसदम्पती न्यवसताम् । तयोस्पत्यानि तरुकोटरावस्थितेन कृष्ण-
सर्पेण खादितानि । ततो वायस्याह—“स्वामिन्, त्यज्यतामयं तरुः । अत्र यावदयं कृष्ण-
सर्पेस्तिष्ठति, तावदावयोः संततेर्जीवनं न सुरक्षितम् ।” यतः—

दुष्टा भार्या शठो मित्रं भृत्यश्चोत्तरदायकः ।

ससर्पे च गृहे वासो मृत्युरेव न संशयः ॥

वायसोऽवदत्—“प्रिये, न भेतव्यम् । वारं वारं मयैतस्य महापराधः सोढः । इदानीं पुनरय-
मतिभूमिं गतो वधयोग्यः ।” वायस्याह—“नैवासि त्वमस्य प्रतिबलः । तत् कथमनेन बलीयसा
विषधरेण सार्धं विग्रहीतुं समर्थः ।” एतच्छ्रुत्वा किञ्चित्प्रकटितप्रणयकोप इव वायसोऽवदत्—
“अलमनया चिन्तया । बहुभाषिणि न श्रद्धधाति लोकः । जीवितेनैव शपामि ते यदस्य वधोपायं
करिष्यामि ।” वायसी प्रत्यवोचत्—“श्रुतं मया । परं कर्तव्यमुपायं ब्रूहि” । वायसोऽवदत्—

उपायेन हि यच्छक्यं न तच्छक्यं पराक्रमैः

“प्रिये, आसन्ने सरसि राजपुत्रः प्रतिदिनमागत्य स्नाति । तत्र प्रस्तरे तदङ्गादवतारितं कनकसूत्रं चञ्चवा धृत्वा आनीयास्मिन् कोटरे स्थापयिष्यसि ।”

अथ कदाचित् कनकसूत्रं दृष्ट्वा संस्थाप्य स्नातुं सरः प्रविष्टे राजपुत्रे वायस्या तथा-
नुष्ठितम् । तदा कनकसूत्रानुसरणप्रवृत्तैः राजपुरुषैः कोटरे दृष्टः कृष्णसर्पो व्यापादितः । अत
उच्यते—

उपायेन हि यच्छक्यं न तच्छक्यं पराक्रमैः ।

काकी कनकसूत्रेण कृष्णसर्पमघातयत् ॥

अभ्यासः

१. संधि-परिचयः—

यच्छक्यम् = यत् + शक्यम्

तच्छक्यम् = तत् + शक्यम्

कस्मिंश्चित् = कस्मिन् + चित्

तथोरपत्यानि = तयोः + अपत्यानि

वायस्याह = वायसी + आह

तदङ्गादवतारितम् = तत् + अङ्गात् + अवतारितम्

मयैतस्य = मया + एतस्य

२. समास-परिचयः—

महापराबः । कनकसूत्रम् । अनुसरणप्रवृत्तैः ।

३. भेद-विवेकः—

वायसः—वयसः । अवस्थितः—प्रस्थितः । भार्या—आर्या ।

चिन्ता—चिता । आसन्ने—असन्ने । प्रस्तरे—विष्टरे ।

४. प्रतीपमुद्भावयत—

कृष्णः— । उपायः— ।

विग्रहः— । निवसति— ।

५. अधोलिखितानां पदानां वाक्येषु प्रयोगो विधीयताम्—

अलम्, इदानीम्, सार्धम्, भवान्, वयोपायम्, स्नातुम्, व्यापादितः, मया ।

६. प्रश्नाः—

(क) कृष्णसर्पः कुत्र तिष्ठति स्म ?

(ख) वायसी किमिति तं त्यक्तुमैच्छत् ?

- (ग) राजपुत्रः कनकसूत्रं क्वास्थापयत् ?
 (घ) वायसः सर्पवधस्य कसुपायं प्रस्तुतवान् ?
 (ङ) राजपुरुषैः किं कृतम् ?
 (च) अस्याः कथायाः सारो मातृभाषया लिख्यताम् ?

नवमः किरणः

६ लोभो मूलमनर्थानाम्

पुरा ब्रह्मारण्ये कर्पूरतिलको नाम हस्ती प्रत्यवसत् । तस्य पीनपृथुलं वपुरवलोक्य सृगालाश्चिन्तयन्ति स्म—यद्येष केनाप्युपायेन त्रियेत तर्ह्यस्माकं मासचतुष्टयस्य भोजनं भवेत् । तत एकेन वृद्धसृगालेन चिन्तितम्—मया वृद्धिप्रभावादस्य करिणो मरणं साधयितव्यम् । अनन्तरं स वञ्चको हस्तिनः समीपं गत्वा तं प्रणमति स्म । हस्ती पप्रच्छ—“कस्त्वम् ? कुत आयातः ?” सोऽवदत्—“जम्बुकोऽहम् । सर्वैर्वनवासिभिर्मिलित्वा भवत्सेवायां प्रेषितः । पशवो मन्त्रयन्ते—यदस्माभिः स्वामिना विना नावस्थातव्यम् । भवांश्च सर्वैरपि स्वामिगुणैः संपन्नः । अत एतस्य वनस्य राज्येऽभिषेक्तुं भवानेव योग्यः । ततो यथाभिषेकवेला नात्येति तथा सत्वरमायातु देवः ।” हस्ती प्रत्यवदत्—“न खलु चिन्तयन्नपि निपुणं तमात्मनो गुण-मवलोकयामि यस्यायमनुरूपोऽनुग्रहातिरेकः । तथाप्युदारजनादरो बहुमानमारोपयत्यवश्यम् । तद् अनुगृहीतोऽस्म्यहमनया वनवासिनां संभावनया । यथाजोषं क्रियताम् । सज्जोऽस्म्यभिषेकाय । तद् यदि नातिखेदकरं तर्हि अभिषेकमण्डपमार्गमादेशय ।”

तेन सृगालेन तथानुष्ठिते सति राज्यलोभाकृष्टः स हस्ती यावज्जवेन सृगालमनुसरति तावन्महापङ्के निपतितः । तत्र चायं महोत्सेधो यथा यथा दन्तहस्ताग्रलाङ्गुलपादमचालयत्, तथा तथा गहनतरे पङ्केऽवासीदत् । ततः स स्थूलस्थूलं श्वसन्नवोचत्—“सखे, मुहूर्तकं प्रतिपालय माम् । पश्य, महापङ्के विप्लुतोऽहम् । अस्यामापदि त्वमेव मे उत्तारः । मित्र, प्राणसंशय-मापन्नोऽस्मि ।” सृगालोऽपि हर्षभरमन्थरेण मनसा विहस्यावदत्—“देव, एष आयातः । मम पुच्छकावलम्बनं कृत्वोत्तिष्ठ ।”

लोभो मूलमनर्थानाम्

ततो महापद्मे निमग्नस्य विप्रलब्धस्य हस्तिनो मांसमुत्कृत्योत्कृत्य सृगाला बहून्
दिवसान् भक्षयन्ति स्म । अत उच्यते—

लोभो मूलमनर्थानाम् ।

अभ्यासः

१. संधि-परिचयः—

कोऽपि	=	कः	+	अपि
यद्येषः	=	यदि	+	एषः
केनाप्युपायेन	=	केन	+	अपि + उपायेन
कस्त्वम्	=	कः	+	त्वम्
ततस्तेन	=	ततः	+	तेन
निपतिलोऽहम्	=	निपतितः	+	अहम्
कृत्वोत्तिष्ठ	=	कृत्वा	+	उत्तिष्ठ

२. समास-परिचयः—

अभिपेक्षेला, राज्यलोभाकृष्टः, पुच्छकावलम्बनम्, आगमनप्रयोजनम् ।

३. भेद-विवेकः—

हस्ती—अस्थि । पीतः—पीनः । उपायः—अपायः । गुणः—गणः । अनुष्ठितम्—प्रतिष्ठितम् ।
उपलब्धः—विप्रलब्धः । वञ्चकः—कञ्चुकम् । प्रणमति—उपनमति ।

४. प्रतीपमुद्गादयत—

वृद्धः । सत्वरम् । मृत्युः । पुरा ।

५. इमां कथामाश्रित्य अष्ट वाक्यानि संस्कृते लिखत ।

६. प्रश्नाः—

- (क) सृगाला हस्तिनं विलोक्य किं चिन्तयन्ति स्म ?
- (ख) कः खलु महापद्मे निमग्नः ?
- (ग) सृगालेन विहस्य किमुत्तरं दत्तम् ?
- (घ) हस्तिनः का दशाभवत् ?

७. अर्थलेखनपुरःसरं निम्नाङ्कितपदानां वाक्येषु प्रयोगो विधीयताम्—

विना, हस्ती, विहस्य, अवलोक्य, आगच्छतु, महापद्मे, कुतः, उक्तम् ।

दशमः किरणः

१० इन्द्रधनुः

सूर्यमण्डलस्य पुरतः संचरतां वारिधराणामुपरि यदा दिवसकरस्य किरणाः पतन्ति, तदा धनुषखण्डाकारेण अम्बरतले प्रतिभासते रश्मिमाला । अत्रेदं निदानमुपवर्णयन्ति खगोल-तत्त्वविशारदाः—भानोः किरणाः अन्तर्जले मेघमालासु यदा निपतन्ति, तदा सूर्यकिरणेषु वर्तमानाः सर्वेऽपि वर्णा जले प्रतिफलन्ति । वर्तन्ते हि रविकिरणेषु शुक्लनीलपीतरक्तहरित-कपिशचित्राः सप्त वर्णाः । दिनकरमण्डलस्य च वर्तुलत्वात् एत एव वर्णा धनुराकारेण मेघ-मालासु प्रतिफलन्ति ।

अभ्यासः

१. संधि-परिचयः—

धनुषखण्डाकारेण = धनुस् + खण्ड + आकारेण । सर्वेऽपि = सर्वे + अपि ।
गूढाशयः = गूढ + आशयः । धनुराकारेण = धनुस् + आकारेण ।
अत्रेदम् = अत्र + इदम्

२. समास-परिचयः—

सूर्यकिरणाः, मेघमालाः, सप्तवर्णाः, सूर्यमण्डलम्, गूढाशयः, रथचक्रम्, दिनकरमण्डलम् ।

३. भेद-विवेकः—

भानुः—सानुः । पुरतः—परितः । वर्तुलम्—अर्तुलम् । निपतन्ति—प्रपतन्ति । आकारः—आकरः ।
खगोलम्—भूगोलम् ।

४. प्रश्नौ—

- (क) इन्द्रधनुषः किं निदानम् ?
(ख) भवतां ग्रामे नगरे वा वृद्धाः इन्द्रधनुषः किं निदानं वर्णयन्ति ?

एकादशः किरणः

११ सुभाषितानि

आलस्यं हि मनुष्याणां शरीरस्थो महारिपुः ।
नास्त्युद्यमसमो बन्धुः कृत्वा ग्रं नावसीदति ॥१॥
यथा ह्येकेन चक्रेण न रथस्य गतिर्भवेत् ।
एवं पुरुषकारेण विना दैवं न सिद्ध्यति ॥२॥
उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत् ।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ॥३॥
उद्यमेन हि सिद्ध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः ।
न हि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः ॥४॥
कोऽतिभारः समर्थानां किं दूरं व्यवसायिनाम् ।
को विदेशः सविधानां कः परः प्रियवादिनाम् ॥५॥
उद्यच्छेदेव न नमेदुद्यमो ह्येव पौरुषम् ।
अप्यपर्वणि भज्येत न नमेदिह कस्यचित् ॥६॥

अभ्यासः

१. संधि-परिचयः—

ह्येकेन	=	हि	+	एकेन
नास्त्युद्यमसमः	=	न + अस्ति	+	उद्यमसमः
उद्धरेदात्मनात्मानम्	=	उद्धरेत्	+	आत्मना + आत्मानम्
आत्मैव	=	आत्मा	+	एव
ह्यात्मनः	=	हि	+	आत्मनः
रिपुरात्मनः	=	रिपुः	+	आत्मनः

२. समास-परिचयः—

महारिपुः । उद्यमसमः । अतिभारः ।

३. पुरुषार्थस्य महिमानमुद्दिश्य पञ्च वाक्यानि लिख्यन्ताम् ।

४ वाक्य-पूर्तिः—

- (क) उद्यमेन हि सिद्ध्यन्ति ।
 (ख) आलस्यं हि मनुष्याणाम् ।
 (ग) उद्वेगात्प्रना अवसादयेत् ।

द्वादशः किरणः

१२ कर्तव्यो नातिसंचयः

अस्ति कल्याणकटकवास्तव्यो भैरवो नाम व्याधः । स एकदा मृगमन्विष्यन् विन्ध्या-
 टवीं जगाम । तेन तत्र व्यापादितं मृगमादाय गच्छता घोराकृतिः शूकरो दृष्टः । ततस्तेन
 व्याधेन मृगं भूमौ निधाय शूकरः शरेण हतः । शूकरेणापि घनघोरगर्जनं कुर्वता स व्याध उदरे
 हतः सन् छिन्नद्रुम इव भूमौ निपपात । यतः—

जलमग्निर्विषं शस्त्रं क्षुद् व्याधिः पतनं गिरेः ।

निमित्तं किञ्चिदासाद्य देही प्राणैर्विमुच्यते ॥

अथ व्याधशूकरयोः पादास्फालनेन तत्र तिर्यगायतः शयानः सर्पोऽपि मृतः । अथानन्तरं
 दीर्घरावो नाम जरज्जम्बुकः परिभ्रमन् पिशितार्थी तानपगतासून् मृगव्याधसर्पशूकरानवलोक्या-
 चिन्तयत्—दिष्ट्या प्रभूतं भोज्यं मे समुपनतमद्य । अथवा—

अचिन्तितानि दुःखानि यथैवायान्ति देहिनाम् ।

सुखान्यपि तथा मन्ये दैवमत्रातिरिच्यते ॥

भवतु, एषां मांसैर्मांसत्रयं निश्चिन्तो यापयिष्यामि ।

मासमेकं नरो याति द्वौ मासौ मृगशूकरौ ।

अहिरेकं दिनं याति अद्य भक्ष्यो धनुर्गुणः ॥

अद्य तु प्रथमबुभुक्षायामिदं निःस्वादु कोदण्डलग्नं स्नायुबन्धनं खादामि । इत्युक्त्वा
 तथा कृते सति छिन्ने स्नायुबन्धने उत्पतितेन धनुषा हृदि निर्भिन्नः स दीर्घरावः पञ्चत्वं गतः ।

अत उच्यते—

कर्तव्यः संचयो नित्यं कर्तव्यो नातिसंचयः ।

पश्य संचयशीलोऽसौ धनुषा जम्बुको हतः ॥

सहसा विदधीत न क्रियाम्

अभ्यासः

१. संधि-परिचयः—

विन्ध्याटवीम्	=	विन्ध्य	+	अटवीम्
घोराकृतिः	=	घोर	+	आकृतिः
किञ्चिदासाद्य	=	किञ्चित्	+	आसाद्य
यथैव	=	यथा	+	एव
पादास्फालनम्	=	पाद	+	आस्फालनम्

२. अर्थ-परिचयः—

पिशितार्थी, अपगतासूनु, दिष्ट्या, यापयिष्यामि, दीर्घरावः ।

३. समास-परिचयः—

मासत्रयम्, धनुर्गुणः, दीर्घरावः, पादास्फालनम्, घोराकृतिः ।

४. प्रतीपमुद्भावयत—

दुःखम् । तिःस्वादु । प्रभूतम् । कल्याणम् ।

५. भेद-विवेकः—

व्याधः—व्याधिः । अपगतः—उपगतः । छिन्नः—खिन्नः । अहिः—बहिः । संचयः—निश्चयः ।

त्रयोदशः किरणः

१३ सहसा विदधीत न क्रियाम्

अस्त्युज्जयित्यां माधवो नाम विप्रः । तस्य ब्राह्मणी स्वबालापत्यस्य रक्षार्थं ब्राह्मण-
मवस्थाप्य स्नातुं गता । अथ ब्राह्मणो राज्ञा श्राद्धार्थं निमन्त्रितः । ब्राह्मणस्तु सहजदारिद्र्याद-
चिन्तयत्—यदि सत्वरं न गच्छामि तदान्यः कश्चित् श्राद्धार्थं वृतो भवेत् । यतः—

आदानस्य प्रदानस्य कर्तव्यस्य च कर्मणः ।

क्षिप्रमक्रियमाणस्य कालः पिबति तद्रसम् ॥

किंतु बालस्यात्र रक्षको नास्ति । तत् किं करोमि ? भवतु । त्रिरकालपालितमिमं
पुत्रनिर्विशेषं नकुलं बालरक्षायां व्यवस्थाप्य गच्छामि । तथा कृत्वा गतः । ततस्तेन नकुलेन

संस्कृतोदय

बालसमीपमुपसर्पन् कृष्णसर्पः दृष्टः । स तं व्यापाद्य खण्डशः कृतवान् । अत्रान्तरे ब्राह्मणोऽपि
श्राद्धं गृहीत्वा गृहमुपावृत्तः । ब्राह्मणं दृष्ट्वा नकुलो रक्तविलिप्तमुखपादस्तच्चरणयोरलुठत् ।
विप्रस्तथाविधं तं दृष्ट्वा बालकोऽनेन खादित इत्यवधार्य नकुलं व्यापादितवान् ।

अनन्तरं यावदुपसृत्यापत्यं पश्यति तावद् बालकः सुस्थः सर्पश्च व्यापादितस्तिष्ठति ।
ततस्तमुपकारकं नकुलं मृतं निरीक्ष्य आत्मानं मुषितं मन्यमानो ब्राह्मणः परं विषादमगमत् ।
अत उच्यते—

सहसा विदधीत न क्रिया-
मविवेकः परमापदां पदम् ।
वृणते हि विमृश्यकारिणं
गुणलुब्धाः स्वयमेव संपदः ॥

अभ्यासः

१. संधि-परिचयः—

अस्त्युज्जयिन्याम्	=	अस्ति	+	उज्जयिन्याम्
तच्चरणयोः	=	तद्	+	चरणयोः
इत्यवधार्य	=	इति	+	अवधार्य
ततोऽसौ	=	ततः	+	असौ
कश्चित्	=	कः	+	चित्

२. समास-परिचयः—

रक्तविलिप्तमुखपादः, गुणलुब्धाः, कृष्णसर्पः, बालकरक्षायाम् ।

३. निम्नाङ्कितानां वाक्यखण्डानां युग्ममादाय परस्परमुचितं संयोजनं कुरुत—

(क) तमुपकारकं नकुलं मृतं	(क) दृष्टो व्यापादितश्च ।
(ख) तेन नकुलेन कृष्णसर्पः	(ख) नकुलं दृष्ट्वा तं व्यापादितवान् ।
(ग) निमन्त्रणं श्रुत्वा ब्राह्मणः	(ग) तदान्यः कश्चित् श्राद्धार्थं वृतो भवेत् ।
(घ) ब्राह्मणो रक्तविलिप्तमुखं	(घ) निरीक्ष्य स विषादमगमत् ।
(ङ) यदि सत्वरं न गच्छामि	(ङ) सहजदारिद्र्यादचिन्तयत् ।

४. भेद-विवेकः—

नकुलः—बकुलः । रक्षकः—भक्षकः । सत्वरम्—चत्वरम् । बालः—कालः । अपत्यम्—अपध्यम् ।
पालितम्—क्षालितम् ।

५. प्रतीपमुद्धावयत—

समीपम् । आदानम् । दारिद्र्यम् । निर्विशेषम् ।

६. प्रदनाः—

- (क) राज्ञा निमन्त्रितो ब्राह्मणः किमचिन्तयत् ?
- (ख) ब्राह्मणेन बालकरक्षायाः क उपायश्चिन्तितः ?
- (ग) ब्राह्मणस्य विषादकारणं किम् ?
- (घ) अविचारितकारितायाः अन्यां कामपि कथां कथयत ।

चतुर्दशः किरणः

१४ प्राणस्य श्रेष्ठत्वम्

पुरा प्राणः, वाक्, चक्षुः, श्रोत्रं, मन इत्येतेषां मध्ये ग्रहं श्रेष्ठोऽहं श्रेष्ठ इति विवादः संप्रवृत्तः । परस्परं विवदमानास्ते पितरं प्रजापतिमेत्य पप्रच्छुः—“भगवन्, कतमो नः श्रेष्ठः ?” प्रजापतिरुवाच—“यस्मिन् शरीरादुत्क्रान्ते तदवसीयेत स वः श्रेष्ठः ।”

एतदाकर्ण्य प्रथमं वाक् शरीरादुदक्रामत् । सा संवत्सरं प्रोष्य प्रत्यागता पप्रच्छ—“कथं भवद्भिर्मया विना जीवितम् ?” प्राणादय ऊचुः—“यथा मूका अवदन्तोऽपि प्राणेन श्वसन्तश्चक्षुषा पश्यन्तः श्रोत्रेण शृण्वन्तो मनसा व्यायन्तो जीवन्ति एवं वयमप्यजीवाम” । ततश्चक्षुर्निरगच्छत् संवत्सरं प्रोष्य प्रत्यावृत्तापृच्छत्—“कथं यूयं मद् ऋतेऽजीवत ।” ते प्रोचुः—“यथा अन्धा अपश्यन्तोऽपि प्राणेन श्वसन्तो वाचा वदन्तः श्रोत्रेण शृण्वन्तो मनसा व्यायन्तो जीवन्ति तथा वयमप्यजीवाम ।” ततः श्रोत्रं निरयात् । संवत्सरान्ते प्रत्यावृत्तापृच्छच्च—“केन प्रकारेण यूयं मय्युत्क्रान्तेऽजीवत ?” ते प्रत्यवदन्—“यथा वहिरा अशृण्वन्तः प्राणेन श्वसन्तो वाचा वदन्तश्चक्षुषा पश्यन्तो मनसा विचारयन्तो जीवन्ति तथा वयमपि जीवितवन्तः” । अतः परं मनो निश्चक्राम । संवत्सरं परिभ्रम्य पुनरागत्य चापृच्छत्—“कथमुत्क्रान्ते मयि यूयं जीवितवन्तः ?” प्राणादयः प्रोचुः—“यथा बाला अमनसः प्राणेन श्वसन्तो वाचा वदन्तश्चक्षुषा पश्यन्तः श्रोत्रेण शृण्वन्तो जीवन्ति तथा वयमपि जीवामः ।”

ततः प्राणो निर्गन्तुमुपक्रमे । तस्मिन् तथानुतिष्ठति वागादीनीन्द्रियाणि प्राव्यथन्तो-
चुश्च प्राणम्—“भगवन्, मा निर्गमः । त्वमेवास्माकमधिष्ठाता । त्वमेव च नः श्रेष्ठः ।
विधेया वयं भवतः सर्वेऽपि ।”

अभ्यासः

१. संधि-परिचयः—

श्रेष्ठोऽहम्	=	श्रेष्ठ.	+	अहम्				
शरीरादुत्क्रान्ते	=	शरीरात्	+	उत्क्रान्ते				
चक्षुर्निरगच्छत्	=	चक्षुः	+	निः	+	अगच्छत्		
प्राणादयः	=	प्राण	+	आदयः				
प्रत्यावृत्यापृच्छच्च	=	प्रति	+	आवृत्य	+	अपृच्छत्	+	च

२. भेद-विवेकः—

प्राणः—अपानः । प्रवृत्तः—निवृत्तः । ऋते—कृते । मूकः—शोकः । श्रेष्ठः—ज्येष्ठः ।
विवादः—संवादः ।

३. प्रतीपमुद्गावयत—

ज्येष्ठ । पुरा । सादरम् ।

४. प्रश्नाः—

- (क) शरीरे प्राणस्य श्रेष्ठत्वं कथम् ?
- (ख) चक्षुरिन्द्रियस्य को व्यापारः ?
- (ग) प्राणायामस्य किं फलम् ?
- (घ) “त्वमेवास्माकमधिष्ठाता” इत्यस्य कोऽर्थः ?

पञ्चदशः किरणः

१५ सुभाषितानि

अजरामरवत् प्राज्ञो विद्यामर्थं च चिन्तयेत् ।

गृहीत इव केशेषु मृत्पुना धर्ममाचरेत् ॥१॥

सर्वद्रव्येषु विद्यैव द्रव्यमाहुरनुत्तमम् ।

अहार्यत्वादनर्घत्वादक्षयत्वाच्च सर्वदा ॥२॥

विद्या ददाति विनयं विनयाद्याति पात्रताम् ।

पात्रत्वाद्धनमाप्नोति धनाद्धर्मं ततः सुखम् ॥३॥

सुभाषितानि

विद्या शस्त्रं च शास्त्रं च द्वे विद्ये प्रतिपत्तये ।

आद्या हास्याय वृद्धत्वे द्वितीयाद्रियते सदा ॥४॥

अनेकसंशयोच्छेदि परोक्षार्थस्य दर्शकम् ।

सर्वस्य लोचनं शास्त्रं यस्य नास्त्यन्ध एव सः ॥५॥

अभ्यासः

१. संधि-परिचयः—

अजरामरवत्	=	अजर	+	अमरवत्
आहुरनुत्तमम्	=	आहुः	+	अनुत्तमम्
अहार्यत्वादनर्घत्वात्		अहार्यत्वात्	+	अनर्घत्वात्
अक्षयत्वाच्च	=	अक्षयत्वात्	+	च
पात्रत्वाद्धनम्	=	पात्रत्वात्	+	धनम्
धनाद्धर्मम्	=	धनात्	+	धर्मम्
परोक्षार्थस्य	=	परोक्ष	+	अर्थस्य
नास्त्यन्धः	=	न	+	अस्ति + अन्धः

२. अर्थ-परिचयः—

अनुत्तमम्, अहार्यम्, अनर्घम्, आद्या, हास्याय, आप्नोति, प्रतिपत्तये, वृद्धत्वे, लोचनम् ।

३. इमान् श्लोकान् कण्ठस्थान् कुरुत—

अजरामरवत्
विद्या ददाति विनयम्
अनेकसंशयोच्छेदि

४. प्रश्नाः—

- (क) विद्याया अर्थस्य च साधनसमये प्राज्ञः किं चिन्तयेत् ?
- (ख) विद्या हि अनुत्तमं द्रव्यं कथम् ?
- (ग) नरः पात्रत्वात् किं प्राप्नोति ?
- (घ) वृद्धत्वे का विद्या हास्याय भवति ?
- (ङ) परोक्षार्थस्य दर्शकं किम् ?

१६ मतिरेव बलाद् गरीयसी

कदाचिद् वर्षस्वपि वृष्टेरभावात् तृषार्तो गजयूथो यूथपतिमाह—“राजन्, नास्त्यस्माकं जीविताशा । अस्मिन् दारुणे जलाभावे निमज्जनाभावादार्ता वयं क्व यामः किं वा कुर्मः ।” एवमुक्तो यूथपतिर्नातिद्वरं गत्वा तानेकं प्रभूतसलिलं सरो दर्शितवान् । तत्र गच्छतां गजानां युगपद् अतिरभसपादपाताहतिभिस्तस्य सरसस्तीरे शयानाः शशकाः, लूनानां धान्यानां प्रकारा गोगणैरिव, अवमदिताः । एतेन स्वजनपरिमर्देन परितप्तः शिलीमुखो नाम शशकश्चिन्तयामास—अनेन गजयूथेन पिपासाकुलेन प्रत्यहमत्रागन्तव्यम् । गजानां पादाहतिभिश्च नियतमुदस्ये-दस्मत्कुलम् । तमेवं विषण्णमवलोक्य विजयो नाम जरच्छशकः प्रीतिपेशलमवदत्—“भ्रात, मा विषादे मनः कृथाः । पश्य, डिम्बलीलया द्रावयाम्येतान् गजान् ।” एवं प्रतिज्ञाय स प्रतस्थे ।

अथ पथि तेनालोचितम्—किमभिधातव्यं मया यूथपतेः पुरतः ? यतः—

स्पृशन्नपि गजो हन्ति जिघृन्नपि भुजंगमः ।

पालयन्नपि भूपालः प्रहसन्नपि दुर्जनः ॥

भवतु, पर्वतशिखरमारुह्यैनं संवादयामि । तथानुष्ठिते यूथपतिराह—“कस्त्वम् ? कुतः समायातः ?” स तं शिरसा प्रणम्य ब्रूते—“देव, दूतोऽहं भगवता चन्द्रेण प्रेषितः ।” यूथपतिरुवाच—“कार्यमुच्यताम्” । विजयो वदति—

“उद्यतेष्वपि शस्त्रेषु दूतो वदति नान्यथा ।

सदैवावध्यभावेन यथार्थस्य हि वाचकः ॥

तदहं तस्यादेशेन ब्रवीमि । श्रूयताम्, चन्द्रस्यैष प्रेषः । यदेते ममापत्यनिर्विशेषाश्चन्द्र-सरोरक्षकाः शशकास्त्वया दलितास्तत्र युक्तमाचरितम् । यतस्ते शशकाश्चिरमस्माभिः रक्षिताः । अत एव मे शशाङ्क इति नाम ।”

एवमुक्तवति दूते यूथपतिर्भयादिदमाह—“दूत, अनतिक्रमणीयो मया भगवतश्चन्द्र-स्यादेशः । अज्ञानतो मयैवं स्खलितम् । पुनर्नापचरिष्यामि” । दूत उवाच—“तदत्र सरसि भगवन्तं शशाङ्कं कोपात् प्रकम्पमानं प्रणम्य प्रसाद्य च दूरतरं देशं गच्छ । मा पुनरस्मिन् सर-परिसरे पदं निधाः ।” यूथपतिराह—“करिष्यामि यथा भगवत आदेशः ।”

मतिरेव बलाद् गरीयसी

ततो विजयेन परिवृत्तेऽहनि तस्य सरसो जले चञ्चलं चन्द्रप्रतिबिम्बं दर्शयित्वा स यूथपतिः प्रणामं कारितः । तस्मिन् प्रणते शशक उवाच—“देव, अज्ञानादनेनापराधः कृतः । तत् क्षम्यताम् । पुनर्नपिचरिष्यति ।” इत्युक्त्वा मृत्पिण्डमतिः स यूथपतिस्तेन दूरतरं प्रजाजितः । अत उच्यते—

मतिरेव बलाद् गरीयसी ।

अभ्यासः

१. संधि-परिचयः—

अज्ञानादनेनापराधः = अज्ञानात् + अनेन + अपराधः
पुनर्नपिचरिष्यति = पुनर् + न + अपचरिष्यति
स्पृशन्नपि = स्पृशन् + अपि

२. समास-परिचयः—

मृत्पिण्डमतिः, यूथपतिः, शशङ्कः, निमज्जनाभावः ।

३. अर्थ-परिचयः—

डिम्भलीलया, सरःपरिसरे, अनतिक्रमणीयः, लूनानां धान्यानां प्रकण गोगणैरिव ।

४. भेद-विवेकः—

प्रसादः—प्रमादः । आर्ताः—आप्ताः । दारुणे—वारुणे । विपण्णः—निषण्णः । पालयन्—पातयन् ।
उपचारः—अपचारः ।

५. प्रतीपमुद्भावयत—

यथार्थम् । अपचारः । आकुलः । चञ्चलः ।

६. प्रयोग-परिवर्तनम्—

कार्यमुच्यताम् । प्रणामं कारितः ।

७. प्रश्नौ—

- (क) शशङ्कविषये ग्रामवृद्धानां को विचारः ?
- (ख) चन्द्रप्रतिबिम्बं दृष्ट्वा हस्ती किमिति भयभीतो जातः ?

१७ बुद्धस्यौदार्यम्

बोधिसत्त्वः किल भगवान् स्वधर्माभिरते अभिजाते क्षात्रकुले ख्रिस्ततः पञ्चशत-
वर्षेभ्यः प्राग् जन्म लेभे । स निर्वृत्तजातकर्मादिसंस्कारः प्रकृतिमेधावित्वात् ज्ञानकौतूहलाच्च
नचिरादेव सर्वासु विद्यासु पारदृशाभवत् । मणिदर्पण इवातिनिर्मले तस्मिन् संचक्राम सकल
कलाकलापः । परमन्तरात्मना निभाल्य कामेषु बहुदोषान्, भावयित्वा चानित्यतां सर्वभावानां
स यौवन एव गृहात् प्रव्रज्य वनं श्रितः । तत्र च तस्यार्जवपूर्णेन दयाभावेन व्यालमृगादयो निवृत्त-
परस्परद्रोहाः तपस्विवद् विचेरुः । तं प्रव्रजितमाकर्ण्य तदीयैर्गुणैराकृष्टमनसो मनुष्या बन्धून्
परिग्रहांश्च विहाय तस्यान्तेवासितामुपजग्मुः ।

अथैकदा स सत्यसंगरोऽजितनाम्ना शिष्येणानुगम्यमानो योगप्रवणान् पर्वतदरी-
निकुञ्जान् विचचार । तत्र च गिरिगह्वरे प्रत्यग्रप्रसूतियन्त्रणाकशितां, परिक्षामेक्षणां, क्षुधा
त्वगस्थिमात्रां, सद्योजातान् शावकानपि आहारमिवेच्छन्तीं व्याघ्रीं ददर्श । समुपजातकारुण्यस्तु
बोधिसत्त्वस्तामवलोक्य महीकम्पादद्रिराडिव चकम्पे ।

अथ स शिष्यमुवाच—“वत्स, अवलोक्य समुपोढमोहनिद्रमिममवसानविरसं संसारम् ।
एषा व्याघ्री क्षुधालङ्घितस्नेहमर्यादा स्वशावकानपि भोक्तुमुद्यता । अहो वत ! अतिगाढोऽ-
यमात्मस्नेहो येन मातापि स्वतनयानेव भक्षयितुं प्रवृत्ता । नूनं सर्वमप्यलीकमस्य निर्विवेकस्यात्म-
स्नेहस्य । अतनुरयं हुताशनः सर्वमात्मसात् कुर्वन्नपि न शाम्यति । तच्छ्रीघ्रमुद्यम्यतामस्या-
क्षुन्निवारणाय, यावन्नैषा स्वतनयानात्मानं चोपहन्ति । अहमपि प्रयतिष्ये साहसादस्मादेना
निवारयितुम् ।”

तथेति प्रतिश्रुत्य स प्रक्रान्तस्तदाहारान्वेषणपरश्च बभूव ।

अथ बोधिसत्त्वस्तं शिष्यं संप्रेष्य चिन्तामापेदे, व्यचिन्तयच्च—सकलेऽपि शरीरे विद्य-
माने किमित्यहं परमांसं मृगये ? नैव स विचक्षणो यः सारहीने दुःखमये सतताशुचौ च देहे
परहिते उपयुज्यमाने प्रीतिं नानुभवेत् । तस्मात् तदप्रपातोत्क्रान्तजीवितेन स्वशरीरेण व्याघ्याः
शावकानां च संरक्षणं करिष्यामि । कदा नु स्वगात्रैरपि परहितं कुर्याम्—इति यो मे संकल्पो-
ऽभवत् सोऽयमधुना सफलीभवेत् ।

एवं निश्चित्य स देवानामपि मनांसि विस्मापयन् सहर्षं स्वां तनुमुत्सर्ज । अथ सा
व्याघ्री बोधिसत्त्वशरीरनिपातशब्देन समुपजातसाध्वसा विरम्य स्वशावकवैशसात् तस्या

बुद्धस्योदार्यम्

दिशि दृष्टिं प्राहिणोत् । अवलोक्य च बोधिसत्त्वशरीरमुत्क्रान्तजोर्वितं सहस्राभिसृत्य भक्षयितुं प्रचक्रमे ।

तस्य शिष्यस्तु मांसमनासाद्यैव प्रतिनिवृत्तः कुत्रोपाध्यायः इति विलोकयन् बोधिसत्त्व-शरीरमुद्गतप्राणं व्याध्या भक्ष्यमाणं ददर्श । स तत्कर्मातिशयविस्मयात् प्रवृद्धशोकावेग आत्म-गतमिदमुवाच—अहो वत कियच्चित्रम् ? दर्शनीयोऽयमस्य वीतरागस्य व्यसनातुरे प्राणिनि दयाभावः । सर्वथा नमोऽस्त्वस्मै महात्मने सर्वभूतशरण्याय अतिविपुलकारुण्याय अप्रमेयसत्त्वाय ।

अभ्यासः

१. संधि-परिचयः—

तस्यान्तेवासी = तस्य + अन्तेवासी
प्रत्यग्रम् = प्रति + अग्रम्
क्षुन्निवारणम् = क्षुब्ध + निवारणम्

२. समास-परिचयः—

आहारान्वेषणम्, दरीनिकुञ्जान्, बहुदोषाः, जातकर्म ।

३. रूप-परिचयः—

(क) तपस्विन्, विद्या, अभिरुचि-शब्दानां प्रथमा-तृतीया-पञ्चमीविभक्तिषु ।

(ख) चर्, कम्प्, वृत्-धातूनां लटि ।

४. भेद-विवेकः—

अभिरुचिः—विरतिः । अनुकूलः—प्रतिकूलः । वृद्धः—बुद्धः । संयोगः—वियोगः । शैशवम्—जरा ।
क्षिप्रम्—शनैः ।

५. प्रतीपमुद्धावयतः—

बुद्धः..... । आसाद्य..... । सफलीभवेत्..... । संकल्पः..... ।

६. प्रश्नाः—

(क) बुद्धस्य जीवनं किमिति स्पृहणीयम् ?

(ख) कारुण्ये कतरो गरीयान् ? बोधिसत्त्वो महात्मा गान्धर्वो ?

(ग) किमिति नास्त्यद्य बौद्धधर्मस्य प्रभावो भारते ?

१८ शरद्वर्णनम्

श्रीपराशर उवाच—

तयोर्विहरतोरेवं रामकेशवयोर्वने ।
 प्रावृङ् व्यतीता विकसत्सरोजा चाभवच्छरत् ॥१॥
 मयूरा मौनमातस्थुः परित्यक्तमदा वने ।
 असारतां परिज्ञाय संसारस्येव योगिनः ॥२॥
 उत्सृज्य जलसर्वस्वं विमलाः सितमूर्तयः ।
 तत्यजुश्चाम्बरं मेघा गृहं विज्ञानिनो यथा ॥३॥
 शरत्सूर्यशितप्लानि ययुः शोष सरांसि च ।
 बह्वालम्बममत्वेन हृदयानीव देहिनाम् ॥४॥
 कुमुदैः शरदम्भांसि चास्तां सर्वतो ययुः ।
 अवबोधैर्मनांसीव समत्वममलात्मनाम् ॥५॥
 तारकाविमले व्योम्नि रराजाखण्डमण्डलः ।
 चन्द्रश्चरमदेहात्मा योगी साधुकुले यथा ॥६॥
 शनकैः शनकैस्तीरं तत्यजुश्च जलाशयाः ।
 ममत्वं क्षेत्रपुत्रादिरूढमुच्चैर्यथा बुधाः ॥७॥
 निभृतोऽभवदत्यर्थं समुद्रः स्तिमितोदकः ।
 क्रमावाप्तमहायोगो निश्चलात्मा यथा यतिः ॥८॥
 सर्वत्रातिप्रसन्नानि सलिलानि तथाभवन् ।
 ज्ञाते सर्वगते विष्णौ मनांसीव सुमेधसाम् ॥९॥
 बभूव निर्मलं व्योम शरदा ब्रुवस्ततोयदम् ।
 योगाग्निदग्धक्लेशौघं योगिनामिव मानसम् ॥१०॥

सूर्याशुजनितं तापं निन्ये तारापतिः शमम् ।
अहंमानोद्भवं दुःखं विवेकः सुमहानिव ॥११॥

अभ्यासः

१. संधि-परिचयः—

तत्त्यजुश्चाम्बरम् = तत्त्यजुः + च + अम्बरम्
मनांसीव = मनांसि + इव
क्लेशौघम् = क्लेश + ओघम्

२. समास-परिचयः—

विकसत्सरोजा, अमलात्मानः, स्तिमितोदकः, सूर्याशवः, साधुकुलम्, निश्चलात्मा ।

३. भेद-विवेकः—

विमलम्—श्यामलम् । अंशुः—अंशः । व्यतीतम्—प्रतीतम् । संसारः—असारः ।

४. प्रतीपमुद्भावयत—

निश्चलम् । सुमेधाः । शुष्कम् । वैषम्यम् ।

५. अर्थ-परिचयः—

प्रावृट्, परित्यक्तमदाः, विकसत्सरोजा, अमलात्मनाम्, क्षेत्रपुत्रादिरूढम्, योगाग्निदग्धक्लेशौघम्,
निश्चलात्मा

६. प्रश्नाः—

- (क) भवते शरद् रोचते ग्रीष्मर्तुर्वा ?
- (ख) आम्राः कदा फलन्ति ?
- (ग) जम्बूफलानि भवते रोचन्ते न वा ?
- (घ) “योगी साधुकुले यथा” इत्यस्य कोऽर्थः ?

१६ भारतीया वैज्ञानिकाः

अद्य वयं वाष्पयानेन देशदेशान्तरेषु परिभ्रमामः, पोतेन अनायासं नदीः समुद्रांश्च तरामः, विमानेन वियति स्वच्छन्दं विहरामः, तडित्सारकेण नचिरादेव दूरतममपि संदेशं प्राप्नुमः, 'रेडियो' (वितारेण) इत्युपकरणेन नगानां, सागराणां, द्वीपद्वीपान्तराणां च व्यवधानं नृणीकृत्य अव्यवहिते एव काले दविष्टान् नेदिष्टांश्च शब्दान् शृणुमः, दूरदर्शनेन दविष्टमपि दृश्यमवलोकयामः इत्यहो आधुनिकविज्ञानस्य विस्मयावहो गरिमा । नास्त्यद्यानलधूर्लनिकर-मिवोद्गरिति निदाघेऽस्माकं तापभयमपि च रोमाञ्चकारिणि दारुणेऽपि शिशिरे शैत्यभयम् । वातानुकूलनयन्त्रेण समस्तेऽपि वर्षे वयमद्य जीवितानन्दमुपभोक्तुं पारयामः । सर्वमेतत्, इतोऽप्यधिकतरं च वैज्ञानिकानां प्रतिभानस्य अध्यवसायस्य च फलम् । नचिरादेव चन्द्रमसि इतरनक्षत्रेषु चास्माकं निर्वाधः प्रसरो भवेदित्याशास्महे ।

काममस्यां विज्ञानस्य विस्मयावहायां प्रगत्यां भूयिष्ठो भागो वैदेशिकानां वैज्ञानिकानां, परमस्माकं भारतमपि अलंकुर्वन्ति केचन प्रतिभावन्तो विपश्चितो यैर्विविधेषु विज्ञानक्षेत्रेषु पुष्कलं यशोऽधिगतं, कृतश्च गरीयानुपकारो मानवजातेः ।

को नाम वैज्ञानिको न जानाति जगदीशचन्द्रं, साहनीमहोदयं, काश्यपं, प्रफुल्लचन्द्रं, भाभाहोदयं, वेंकटरामं च, यैर्विज्ञानस्य नानाशाखाः विविधरसाप्लावितैरनेकैः फलैराचिताः ।

यदीयं भारतभूरस्ति पुष्कलमुर्वरा साहित्ये, दर्शने, व्याकरणे, कथायां, नीत्यां, धर्मे च तर्हि विज्ञानेऽपि इयं तान् विदुषः प्रादुरभावयद् येषां कीर्त्या विराजते धवलितमद्यापि समस्तं भूमण्डलम् ।

नम एतेभ्यो वैज्ञानिकमूर्धन्येभ्यः ।

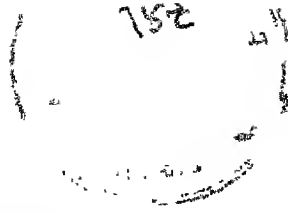
अभ्यासः

१. अर्थ-परिचयः—

विमानम्, वाष्पयानम्, तडित्सारकम्, दूरदर्शनम् ।

२. भेद-विवेकः—

दूरम्—दविष्टम् । नेदीयः—नेदिष्टम् । सन्नाधः—निर्वाधः । बहु—भूयिष्ठम् । अणु—अणीयस्—अणिष्ठम् । गुरु—गरीयस्—गरिष्ठम् । लघु—लघीयस्—लघिष्ठम् ।



प्रकीर्णकानि

३. प्रतीपमुद्गावयत---

सायासम्..... । तिरस्कारः..... । स्वीकारः..... । प्रत्याख्यानम्..... ।

४. प्रश्नाः---

- (क) विज्ञानस्य कासांचन शाखानां नामानि लिखत ।
- (ख) रसायनविज्ञानस्य इंग्लिशभाषायां किं नाम ?
- (ग) जीवविज्ञानस्य इंग्लिशभाषायां किं नाम ?
- (घ) प्रफुल्लचन्द्ररायेण रसायनशास्त्रे भारतीयरसायनशास्त्रस्य वैशिष्ट्यं प्रदर्शितम् । अपि भवान् जानाति तस्य विषये ?
- (ङ) साहनीमहोदयेन वनस्पतिशास्त्रं क्वाधीतम् ? काश्यपमहोदयो लवपुरे राजकीयमहाविद्यालये प्राध्यापकोऽभूत् । अपि जानाति भवान् तद्विषये ?
- (च) बेंकटरामः खलु 'नोबल' पुरस्कारस्य विजेता । किं जायते भवता तस्य विषये ?
- (छ) किं जानाति भवान् 'स्पूतनिक' विषये ?
- (ज) का खलूपलब्धिव्योमयानविषये अमेरिकावासिनाम् ?
- (झ) किं भवता कदापि विमानेन यात्रा कृता ? यदि कृता तर्हि ततो भूतलस्य दृश्यं वर्णयताम् ।

विंशः किरणः

२० प्रकीर्णकानि

न कश्चिदपि जानाति किं कस्य श्वो भविष्यति ।

अतः श्वः करणीयानि कुर्यादद्यैव बुद्धिमान् ॥१॥

शुभाशुभाभ्यां मार्गभ्यां बहन्ती वासनासरित् ।

पौरुषेण प्रयत्नेन योजनीया शुभे पथि ॥२॥

उत्साहो बलवानार्थं नास्त्युत्साहात् परं बलम् ।

सोत्साहस्य हि लोकेषु न किञ्चिदपि दुर्लभम् ॥३॥

विषस्य विषयाणां च दृश्यत ९

उपभुक्तं विषं हन्ति विषयाः स्मरणादपि ॥४॥

अल्पानामपि वस्तूनां संहतिः कार्यसाधिका ।

तृणैर्गुणत्वमापन्नैर्बध्यन्ते मत्तदन्तिनः ॥५॥

सर्वेषां यः सुहृन्नित्यं सर्वेषां च हिते रतः ।

कर्मणा मनसा वाचा स धर्मं वेद नेतरः ॥६॥

वाच्यावाच्ये हि कुपितो न प्रजानाति कर्हिचित् ।

नाकार्यमस्ति क्रुद्धस्य नावाच्यं विद्यते तथा ॥७॥

दानोपभोगरहिता दिवसा यान्ति यस्य वै ।

स लोहकारभस्त्रेव श्वसन्नपि न जीवति ॥८॥

वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि ।

लोकोत्तराणां चेतांसि को नु विज्ञातुमर्हति ॥९॥

कर्णस्त्वचं शिविर्मांसं जीवं जीमूतवाहनः ।

ददौ दधीचिरस्थीनि नास्त्यदेयं महात्मनाम् ॥१०॥

प्रियवाक्यप्रदानेन सर्वे तुष्यन्ति जन्तवः ।

तस्मात्तदेव वक्तव्यं वचने का दरिद्रता ॥११॥

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा ।

सम्यञ्चः सन्नता भूत्वा वाचं वदत भद्रया ॥१२॥

न वै भिन्ना जातु धर्मं चरन्ति

न वै सुखं प्राप्नुवन्तीह भिन्नाः ।

न वै भिन्ना गौरवं प्राप्नुवन्ति

न वै भिन्नाः प्रशमं रोचयन्ति ॥१३॥

दण्डः शास्ति प्रजाः सर्वा दण्ड एवाभिरक्षति ।

दण्डः सुप्तेषु जागति दण्डं धर्मं विदुर्बुधाः ॥१४॥

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु ।
 युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ॥१५॥
 इज्याध्ययनदानानि तपः सत्यं धृतिः क्षमा ।
 अलोभ इति मार्गोऽयं धर्मस्याष्टविधः स्मृतः ॥१६॥
 प्राणा यथात्मनोऽभीष्टा भूतानामपि ते तथा ।
 आत्मौपम्येन भूतेषु दयां कुर्वन्ति साधवः ॥१७॥
 मातृवत् परदारेषु परद्रव्येषु लोष्टवत् ।
 आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति स पण्डितः ॥१८॥
 दरिद्रान् भर कौन्तेय मा प्रयच्छेऽश्वरे धनम् ।
 व्याधितस्यौषधं पथ्यं नीरुजस्य किमौषधैः ॥१९॥
 आपदां कथितः पन्था इन्द्रियाणामसंयमः ।
 तज्जयः संपदां मार्गो येनेष्टं तेन गम्यताम् ॥२०॥
 रागो योगस्तथा दाक्ष्यं नयश्चेत्यर्थसाधकाः ।
 उपायाः पण्डितैः प्रोक्ताः सर्वे दैवसमाश्रिताः ॥२१॥
 गृहे यत् क्षत्रियस्यापि निधनं तद् विगर्हितम् ।
 अधर्मः सुमहानेष यच्छ्रय्यामरणं गृहे ॥२२॥
 अरण्ये यो विमुञ्चेत् संग्रामे वा तनुं नरः ।
 क्रतूनाहृत्य महतो महिमानं स गच्छति ॥२३॥
 कृपणं विलपन्नार्तो जरयाभिपरिप्लुतः ।
 म्रियते रुदतां मध्ये जनानां न स पूरुषः ॥२४॥
 शूराणामार्यवृत्तानां संग्रामेष्वनिवर्तिनाम् ।
 धीमतां सत्यसंधानां सर्वेषां क्रतुयाजिनाम् ॥२५॥
 शस्त्रावभृथप्राप्तानां ध्रुवं वासस्त्रिविष्टपे ।
 मुदा नूनं प्रगृह्णन्ति पुण्या देवगणा हि तान् ॥२६॥

अभ्यासः

१ प्रश्ना.

- (क) भवते पुरुषकारो रोचते भाग्यं वा ?
 (ख) धर्मस्य सारं को वेद ? “सर्वेषां हिते रतः एव धर्मं जानाति”—इमं सिद्धान्तमुदाहरणैः समर्थयत ।
 (ग) क्रोधस्य के गुणाः के वा अगुणाः ? क्रोधेनैव रामो रावणं जघान, अर्जुनश्च कर्णम् । यदि क्रोध एकान्ततो त्याज्यस्तर्हि महापुरुषैः क्रोधः किमित्याश्रितः ?
 (घ) “प्रियवाक्यप्रदानेन सर्वे तुष्यन्ति जन्तवः” “प्रियं च नानृतं ब्रूयात्”—एतयोर्द्वयोरुक्तयोः सामञ्जस्यं प्रदर्शयत ।
 (ङ) “आपदां कथितः पन्था इन्द्रियाणामसंयमः”—इतीयमुक्तिः भारतस्येतिहासे चरितार्थनीया । अत्र निदर्शनत्वेन रावण-दुर्योधन-पृथ्वीराजादीनां चरितम् उद्धावयत ।
 (च) क्षात्रधर्मस्य किं वैशिष्ट्यम् ? विश्वामित्रो ब्राह्मण आसीत् क्षत्रियो वा ?

एकविंशः किरणः

२१ राष्ट्रपिता गान्धिः

येनोद्धृता भरतभूरिह पारतन्त्र्यात्
 येनात्मसंयमपथो जगतः प्रदिष्टः ।
 हिंसामहिंसनपरोऽप्यहिनच्च सद्य
 तं नौमि राष्ट्रपितरं भुवि मोहनाख्यम् ॥१॥

अजीवयद्देशमिमं विपद्गतम्
 अदात् स्वतन्त्रत्वपयो दयेरितः ।
 प्रसादयत्यस्तमितोऽपि सद्द्युतिः
 स कर्मचन्द्रोद्भवमोहनः सुधीः ॥२॥

राष्ट्रपिता गान्धि

अमुष्य सत्याग्रहपाशयन्त्रिता
अहिंसया हिंसितार्हिसवृत्तयः ।
द्रुतं गताः सौहृदभावमाङ्गला
अदुश्च स्वातन्त्र्यममोघविक्रमाः ॥३॥

असौ हरिश्चक्रधरो गुणाकरो
विधूय दुःशासनमुग्रशासनम् ।
पटैः समाच्छादयदात्मनिर्मितै-
रकिंचनां भारतभूमिभामिनीम् ॥४॥

न भौतिकं नापि समाजजं तथा
न वापि साम्राज्यकृतं न यान्त्रिकम् ।
न नैतिकं नापि च राजनैतिकं
न जात्वधीनत्वमनेन मर्षितम् ॥५॥

इहार्पमोहम्मदसंप्रदाययो-
रबोधजातां विमर्ति परोजिताम् ।
प्रमार्जयन् साम्यदृशं दिशन् भृशं
धरातलं नूनमतोलयद् दिवा ॥६॥

मुनिर्महात्मा तपसां प्रसूतिः
पिता च राष्ट्रस्य नवोदितस्य ।
असन्निरस्यान्ययुगप्रवर्तको
जयत्यसौ मोहनदासगान्धिः ॥

अभ्यासः

१ प्रश्नाः—

- (क) 'राष्ट्रपिता' इति संज्ञायाः किं मूलम् ?
- (ख) राष्ट्रं किं नाम ? गान्धिः 'भारतस्य पिता' इति कथमुच्यते ?
- (ग) सत्याग्रहशब्दस्य क आशयः ? सत्याग्रहेण आत्मन उत्थानं भवति न वा ?

- (घ) 'महात्मा सत्यसंगर आसीत्'—उद्धाव्यता कापि घटना तस्य जीवने अस्य समर्थनाय ।
- (ङ) 'विधूय दुःशासनमुग्रशासनम्' इत्यस्या उक्तेः कोऽभिप्रायः ? किं जानाति भवान् दुःशासन-विषये ?
- (च) आर्षमोहम्मदसंप्रदाययोः को भेदः ? किं धर्मोऽपि प्रतिजाति प्रतिदेशं वा भिद्यते ?
-

द्वितीयः उन्मेषः

प्रथमः किरणः

१ परमो धर्मः

युधिष्ठिर उवाच—

महानयं धर्मपथो बहुशाखश्च भारत ।
किंस्विदेवेह धर्माणामनुष्ठेयतमं मतम् ॥१॥
किं कार्यं सर्वधर्माणां गरीयो भवतो मतम् ।
यथायं पुरुषो धर्ममिह च प्रेत्य चाप्नुयात् ॥२॥

भीष्म उवाच—

मातापित्रोर्गुरुणां च पूजा बहुमता मम ।
अत्र युक्तो नरो लोकान् यशश्च महदश्नुते ॥३॥
न तैरनभ्यनुज्ञातो धर्ममन्यं प्रकल्पयेत् ।
यमेतेऽभ्यनुजानीयुः स धर्म इति निश्चयः ॥४॥
एत एव त्रयो लोका एत एवाश्रमास्त्रयः ।
एत एव त्रयो वेदा एत एव त्रयोऽग्नयः ॥५॥
पिता ह्यग्निर्गार्हपत्यो माताग्निर्दक्षिणः स्मृतः ।
गुरुराहवनीयस्तु साग्नित्रेता गरीयसी ॥६॥
त्रिष्वप्रमाद्यन्नेतेषु त्रीँल्लोकानवजेष्यसि ।
पितृवृत्त्या त्विमं लोकं मातृवृत्त्या तथापरम् ॥७॥
ब्रह्मलोकं गुरोर्वृत्त्या नित्यमेव चरिष्यसि ।
सम्यगेतेषु वर्तस्व त्रिषु लोकेषु भारत ॥८॥

सर्वे तस्यादृता लोका यस्यैत वय आदता
अनादृतास्तु यस्यैते सर्वास्तस्याफलाः क्रियाः ॥६॥

नैवायं न परो लोकस्तस्य चैव परंतप ।
अमानिता नित्यमेव यस्यैते गुरवस्त्रयः ॥१०॥

अभ्यासः

१. समास-परिचयः—

धर्मपथः, बहुशास्त्रः, सर्वधर्माणाम्, मातापित्रोः ।

२. अर्थ-परिचयः—

गार्हपत्यः, दक्षिणः, आहवनीयः, धर्मपथः, अभ्यनुजातः ।

३. भेद-विवेकः—

अनुज्ञा—प्रतिज्ञा । वृत्तिः—कृतिः । प्रसाद्यन्—प्रसादयन् । आदृताः—आधृताः ।

४. प्रतीपमुद्भावयत—

इह । अनुष्ठेयः । नित्यम् । परो लोकः ।

५. प्रश्नौ—

(क) गुरवः के ? गुरूणां सेवायाः किं फलम् ?

(ख) किं भवते गुरुकुलशिक्षापद्धतिः रोचते ?

गुरुभक्तिप्रसङ्गे गुरुणा एकलव्यस्य कथा संक्षेपेण श्रावणीया ।

द्वितीयः किरणः

२ लोकमातरो नद्यः

नद्यो गिरिभ्यः प्रसरन्ति । अतस्ताः सरित इत्युच्यन्ते । जनपदेषु प्रवहन्त्यस्ता जलधि-
मभिसरन्ति । अतस्तासां समुद्रगा इति, जलधेश्च सरित्पतिरिति नाम । पानार्थं कृष्यर्थं च
जलवितरणादेता मातरो लोकानाम् । आसां कूले तत्र तत्रावतारान् घटयन्ति जनाः । तेषां
सोपानक्रमेण नदीमवगाहन्ते स्नानार्थिनः । सेतुना कूलात् कूलान्तरं यान्ति यात्रिणः । नदीषु

नौकाभिः पोतैर्वा विविधानि पण्यानि इतस्ततः प्रापयन्ति व्यवहारिणः । नदीभिर्विना लोकानां जीवनं दुष्करम् ।

दृश्यतामयं सिन्धुप्रदेशवाही उदाररमणीयः सिन्धुर्देवनदः । पुरा एतस्य तटे यज्ञकाम्यो ऋषयो देवानां स्तुतौ सूक्तानि गायन्ति स्म ।

एताः किल पञ्जावप्रदेशं परिपोषयन्ति वितस्ता-विपाट्-परुष्णी-असिकनी-शुतुद्रीनामन्यो महानद्यः । इदानीमन्तर्हितापि सरस्वती ब्रह्मावर्तस्य जीवनमासीत् । अस्या एव तटे वालखिल्या ऋषयो भूरिदक्षिणैः क्रतुभिरीजिरे । अत्रैवासीद् ब्रह्मभूतस्य दधीचेः पुण्याख्य आश्रमः । नूनमत्रत्यं कुरुक्षेत्रं स्वर्गादिप्यधिकतरं निर्वृतिस्थानम् ।

इतश्चैषा हरद्वार-कनखल-प्रयाग-वाराणस्यादिपत्तनानि पुनाना नदीनामग्रजा अमरा-पगा भागीरथी यस्या यशो गीतं कविकुलगुरुणा कालिदासेन । एतेऽत्र मुमुक्षव उपसर्पन्त्यस्याः प्रसन्नपावनेषु पयःसु अभिषेकार्थम् ।

द्वयजने प्रयागे यमुना भागीरथीमुपतिष्ठते । यमुनायाः प्रवाहः कृष्णो गङ्गायाश्च श्वेतः । एते द्वे सारितौ अन्तर्हिता सरस्वती च यत्र संमिलन्ति स एव पावनः तीर्थराजस्त्रिवेणी-संगमो मुमुक्षूणां सुलभं मोक्षद्वारम् ।

इयमत्र प्रवहति गिरिवरे चित्रकूटे नानायज्ञचिता मन्दाकिनी । ध्रुवं ते पुण्यात्मानो येऽस्यां स्नात्वा श्रद्धया पितृदेवार्चनं कुर्वन्ति ।

एषा चात्र भारतभूमेर्मेखलेव विभाति पुण्यसलिला प्रत्यक्स्रोता मेकलसुता नर्मदा अस्या एव तटे विराजते प्रख्यातं शुक्लतीर्थम् । अत्रैव सा सह्यसुता गोदावरी या महाराष्ट्रान्ध्र-प्रदेशयोः प्रवहन्ती नासिकभद्राचलराजमन्ध्रादिपत्तनानि पुनाति । अस्या एव तटे सा पञ्चवटी यस्यां पुण्यश्लोको रामः सीतया धर्ममधिकृत्य पृष्टस्तस्यै धर्मस्य सारं विवृणोति स्म ।

पश्चिमघाटतः प्रभवति वीराणां जननी भगवती कृष्णा । अस्या एवं तटे प्रख्यात 'वेजवाडा' इति नगरम् । ये श्रद्धयैतस्याः पय आचामन्ति तेषां हृदि स्फुरति स्वतन्त्रता, प्रजागति धर्मबुद्धिः, प्ररोचते च प्रज्ञा ।

इयं प्रवहति शुभ्रा कावेरी पश्चिमघाटस्थ ब्रह्मगिरेः ; एषा मैसूरमद्रासप्रदेशयो श्रीरङ्गपत्तनतिरुचरापल्यादिपत्तनानि स्वपयोऽमृतैः पुण्यतरीकरोति ।

असमप्रदेशस्यो अक्षयाम्भाः ब्रह्मपुत्रो नाम महानदो गरिम्णा अयोध्यामनुवहन्ती सरयूं, विहारप्रदेशे प्रवहन्तं शोणं चाप्यतिशेते ।

इमा सन्ति सिन्धुसत्तमा या पावयन्ति परिपोषयन्ति चास्मदीय भारत वर्षम्
नम एताभ्यो लोकमातृभ्यः ।

अभ्यासः

१. समास-परिचयः—

सरित्पतिः, कूलान्तरम्, देवयजनम्, यज्ञचिता, प्रत्यक्स्रोताः, अक्षयाम्भाः ।

२. प्रश्नाः—

- (क) अपि भवान् जानाति गङ्गाया अवतरणविषये भगीरथस्य कथाम् ?
- (ख) वितस्ता, विपादा, परुष्णी, असिक्नी, शुतुद्रि इति नदीनामाधुनिकनामानि कथयत ।
- (ग) नर्मदायाः किं माहात्म्यम् ?
- (घ) कावेरी कस्मिन् प्रदेशे प्रवहति ?

तृतीयः किरणः

३ प्रतिच्छन्नः सृगालः

कस्मिंश्चिद् वनोद्देशे चण्डरवो नाम सृगालः प्रतिवसति स्म । स कदाचित् क्षुधाविष्टो नगरमध्ये प्रविष्टः । अथ तं सारमेयाः सरभसमभिद्रुत्य तीक्ष्णदन्ताग्रैर्भक्षयितुमारभन्त । सोऽपि तैरुत्कृत्यमानावयवः प्राणभयात् प्रत्यासन्नं रजकगृहं प्रविष्टः । तत्र च नीलीरसपरिपूर्णं महाभाण्डमासीत् । सारमेयैरभिद्रुतः सृगालः प्रस्कन्द्य तन्मध्ये पतितः । अथ यावन्निष्क्रान्त-स्तावन्नीलीवर्णः संजातः । सारमेयास्तं सृगालमजानन्तो यथाकामं प्रदुदुवुः । निपुण-संवृतश्चण्डरवोऽपि दूरतरं प्रदेशमासाद्य प्रकीर्णहरिणे कानने विजहार ।

अथ तं नीलकञ्चुकमपूर्वं सत्त्वमवलोक्यारण्यवासिनः सिंहादयो भयसन्नचित्ता इतस्ततः पलायन्त । अकथयंश्च—न ज्ञायतेऽस्य कीदृग् विचेष्टितं पौरुषं च । तद् दूरतरं प्रयामः । उक्तं च—

न यस्य चेष्टितं विद्यान् कुलं न पराक्रमम् ।

न तस्य विश्वसेत् प्राज्ञो यदीच्छेच्छ्रयमात्मनः ॥

चण्डरवोऽपि तान् संत्रस्तान् अवलोक्येदमाह—“भो भोः श्वापदाः, किमिति मामवलोक्य संत्रस्ताः पलायध्वे ? तन्न भेतव्यम् । अहं ब्रह्माणा स्वयमेव सृष्ट्वाभिहितः—“यच्छ्वापदानां राजा नास्ति, तत् त्वं भयाद्य सर्वश्वापदानां प्रभुत्वेऽभिषिक्तः । गत्वा तान् परिपालय” । अतोऽहमत्रागतः । तदपूर्वदर्शनोऽहमिति विमुच्य लज्जाम्, अनुपजातपरिचय इत्युत्सृज्याविश्रम्भम्, अविज्ञातशील इत्यपहाय शङ्कां मयि मित्रवद् वर्तमाना, मम वीर्यपरित्राता निरातङ्का अत्र वने वसत । मम नाम च ककुद्द्रुम इति वर्तते ।”

तदाकर्ण्य सिंहपुरःसराः श्वापदाः “स्वामिन्, प्रभो, समादिश” इति वदन्तस्तं समुपासत । अथ तेन सिंहायामात्यपदवीं प्रदत्ता, व्याघ्राय शय्यापालत्वम्, वृकाय च द्वारपालत्वम् । ये तु आत्मीयाः सृगालास्तान् कदर्थीकृत्य तैः सहालापमपि न करोति । ते सर्वेऽपि तेन गलहस्तिकया निःसारिताः ।

एवं तस्यालीकसुभगाभिमानिनो राज्यं कुर्वतस्तद्वशानुगाः सिंहादयो मृगान् व्यापाद्य तस्मै निवेदयन्ति स्म । सोऽपि प्रभुधर्मेण भागशो मृगान् प्रविभज्य भुजिष्येभ्यः प्रायच्छत् ।

एवं गच्छति काले एकदा तेन विप्रकर्षाद् वाश्यमानाः सृगाला आकर्णिताः । तेषां संराव श्रुत्वा पुलकिततनुरानन्दाश्रुपरिपूर्णनयनः उद्ग्रीवस्तारस्वरेण विरवितुमारब्धवान् । अथ ते सिंहादयस्तस्य तारं प्रतिरावमाकर्ण्य, छद्मगूढः सृगालोऽयम्, इति संविज्ञाय लज्जयावाङ्मुखाः प्रोचुः “भो वञ्चिता वयमनेन क्षुद्रसृगालेन । तद् वध्यतामयम् ।” सोऽपि तदाकर्ण्य पलायितुमुपक्रममाणः तस्मिन्नेव स्थाने श्वापदैर्विशकलीकृतो मृतश्च ।

अत उच्यते—

त्यक्ताश्चाभ्यन्तरा येन बाह्याश्चाभ्यन्तरीकृताः ।

स एव मृत्युमाप्नोति यथा राजा ककुद्द्रुमः ॥

अभ्यासः

१. संधि-परिचयः—

वनोद्देशे, यावन्निष्क्रान्तस्तावन्नीलीवर्णः, यदीच्छेच्छ्रियम्, यच्छ्वापदानाम् ।

२. समास-परिचयः—

भयसन्नचित्ताः, क्षुधाविष्टः, उद्ग्रीवः, आनन्दाश्रुपरिपूर्णनयनः, वीर्यपरित्राताः, अवाङ्मुखाः ।

३. रूप-परिचयः—

श्रीशब्दस्य प्रथमायाम् । ब्रह्मन्शब्दस्य तृतीयायाम् । मृत्युशब्दस्य द्वितीयायाम् ।

४ भेद विषयक

आकम्प्य... आकम्पितः । वञ्चितः... सञ्चितः । संव्रस्तः... संतुष्टः । भुजिष्यः... भोजनम् ।

५. प्रश्नाः—

- (क) सृगालः किमिति भाण्डे पतितः ?
- (ख) ये उन्नता भूत्वा आत्मीयान् परित्यजन्ति तेषां परिणामः कीदृशो भवति ?
- (ग) प्रतिच्छन्नं सृगालं दृष्ट्वा सिंहादयः किमिति सीता अभवन् ?
- (घ) एतस्मिन् विषये कामपि अन्यां कथां कथयत ।

चतुर्थः किरणः

४ मनोरथानामगतिर्न विद्यते

कस्मिंश्चिन्नगरे कुम्भीधान्यो नाम ब्राह्मणः प्रतिवसति स्म । तस्यैकदा भिक्षार्जितैः सक्तुभिर्घटः परिपूरितः । तं नागदन्तेऽवलम्ब्य तस्याधस्तात् खट्वा निधाय तुन्दपरिमृजोऽसौ सततमेकदृष्ट्या तमवलोकयति स्म । अथ कदाचिद् रात्रौ सक्तुभिः पूर्णं घटं पश्यन् चिन्तयामास—परिपूर्णोऽयं घटस्तावत् सक्तुभिर्वर्तते । तद् यदि दुर्भिक्षं भवति तदानेन रूप्यकाणां शतं कल्पते । ततस्तेन मया अजाद्वयं ग्रहीतव्यम् । ततः षाण्मासिकप्रसववशात् ताभ्यां यूथं भविष्यति । ततोऽजाभिः प्रभूता गा ग्रहीष्यामि । गोभिर्महिषीः । महिषीभिर्वडवाः । वडवाप्रसवतः प्रभूता अश्वा भविष्यन्ति । तेषां विक्रयात् पुष्कलं सुवर्णं भवेत् । सुवर्णेन चतुःशलं गृहं संपत्स्यते । ततः कश्चिद् ब्राह्मणो मम गृहमागत्य रूपसंपन्नां कन्यां मह्यं दास्यति । तत्सकाशात् पुत्रो मे भविष्यति । तस्याहं सोमशर्मेति नाम करिष्यामि । ततस्तस्मिन् जानुचलनयोग्ये संजातेऽहं पुस्तकं गृहीत्वा अश्वशालायाः पृष्ठे उपविष्टस्ततोऽवलोकयिष्यामि । अत्रान्तरे सोमशर्मा मां दृष्ट्वा जनन्युत्सङ्गात् जानुप्रचलनपरोऽश्वखुरनिकटवर्ती मम समीपमागमिष्यति । ततोऽहं ब्राह्मणीं कोपाविष्टोऽभिधास्यामि—“गृहाण तावद् बालकम् ।” सापि गृहकर्मव्यग्रा मम वचनं न श्रोष्यति । ततोऽहं समुत्थाय तां पादप्रहारेण ताडयिष्यामीति ।

एवं तेन स्वप्नायमानेन तथा पादप्रहारो दत्तो यथा स घटो भग्नः । स च पतितैः सक्तुभिः पाण्डुरतां गतः । अथवा साध्विदमुच्यते—

अनागतवती चिन्तामसंभाव्या करोति यः ।

स एव पाण्डुरः शेते सोमशर्मपिता यथा ॥

सुभाषितानि

अभ्यासः

१. संधि-परिचयः—

अत्रान्तरे, परिपूर्णोऽयम्, कोपाविष्टः, जनन्युत्सङ्गात्, साविदम् ।

२. समास-परिचयः—

कुम्भीधान्यः, षाण्मासिकप्रसववशात्, अश्वखुरनिकटवर्ती, पादप्रहारः, कोपाविष्टः, अश्वशाला ।

३. अर्थ-परिचयः—

नागदन्तः, अधस्तात्, बडवा, महिषी, उत्सङ्गः ।

४. रूप-परिचयः—

(क) शर्मन्—तृतीयायाम् । गो—द्वितीयायाम् । पितु—पञ्चम्याम् । मातु—चतुर्थ्याम् ।

(ख) स्वाधातोः लटि, गम् धातोः लोटि, दृश्धातोः लटि, जाधातोः लटि ।

५. प्रयोग-परिवर्तनम्—

स तमवलोकयति । स घटं बभञ्ज । तेन प्रहारो दत्तः । अहं तं ताडयामि ।

६. प्रश्नाः—

(क) ब्राह्मणः कुत्र शेते स्म ?

(ख) ब्राह्मणेन सक्तुपरिपूर्णो घटः किमिति भग्नः ?

(ग) एतादृशीमन्यां कामपि कथां श्रावयत ।

पञ्चमः किरणः

५ सुभाषितानि

शरीरनियमं ह्याहुर्ब्राह्मणा मानुषं व्रतम् ।

मनोविशुद्धां बुद्धिं च दैवमाहुर्व्रतं द्विजाः ॥१॥

न हायनैर्न पलितैर्न वित्तेन न बन्धुभिः ।

ऋषयश्चक्रिरे धर्मं योजनूचानः स नो महान् ॥२॥

आचारसंभवो धर्मो धर्माद् वेदाः समुत्थिताः ।

वेदैर्यज्ञाः समुत्पन्नाः यज्ञैर्देवाः प्रतिष्ठिताः ॥३॥

संस्कृतोदय

अग्निहोत्रफला वदा दत्तमुक्तफल घनम्
प्रेमपुत्रफला दाराः शीलवृत्तफलं श्रुतम् ॥४॥

सामर्थ्ययोगं संप्रेक्ष्य देशकालौ व्ययागमौ ।
विमृश्य सस्यक् च धिया कुर्वन् प्राज्ञो न सीदति ॥५॥

विपत्तिष्वव्यथो दक्षो नित्यमुत्थानवान् नरः ।
अप्रमत्तो विनीतात्मा नित्यं भद्राणि पश्यति ॥६॥

न व्याधयो नापि यमः श्रेयःप्राप्तिं प्रतीक्षते ।
यावदेव भवेत् कल्पस्तावच्छ्रेयः समाचरेत् ॥७॥

स्मरन्ति सुकृतान्येव न वैराणि कृतानि च ।
सन्तः प्रतिविजानन्तो लब्ध्वा प्रत्ययमात्मनः ॥८॥

न वैराण्यभिजानन्ति गुणान् पश्यन्ति नागुणान् ।
विरोधं नाधिगच्छन्ति ये त उत्तमपुरुषाः ॥९॥

यत् कर्तव्यं मनुष्येण व्यवसायवता सता ।
तत् कार्यमविशङ्केन सिद्धिर्देवे प्रतिष्ठिता ॥१०॥

यं भारं पुरुषो वोढुं मनसा हि व्यवस्यति ।
दैवमस्य ध्रुवं तत्र साहाय्यायोपपद्यते ॥११॥

अभ्यासः

१. समास-परिचयः—

शीलवृत्तफलम्, श्रेयःप्राप्तिः, प्रेमपुत्रफलाः, व्ययागमौ ।

२. रूप-परिचयः—

(क) कृषातोः लिटि, ईक्ष् धातोर्लङि, गम् धातोः लङि ।

(ख) श्रेयः शब्दस्य तृतीयायाम्, विनीतात्मन् शब्दस्य षष्ठ्याम्, जन्मन् शब्दस्य प्रथमाद्वितीययोः ।

३. अर्थ-परिचयः—

अग्निहोत्रम्, उत्थानवान्, प्रत्ययः, व्यवसायः, व्याधयः, प्रेमपुत्रफलः, आचरसंभवः, शरीरविषमः ।

४. भेद-विवेकः—

अनूचानः—समीचीनः । वैद्याः—विद्याः । श्रेयः—प्रेयः । गच्छन्ति—अधिगच्छन्ति । व्यवसायः—
अध्यवसायः । वोढुम्—सोढुम् ।

५. प्रश्नाः—

- (क) 'योऽनूचानः स नो महान्' इति एतामुक्तिम् समर्थयत ।
- (ख) 'शीलवृत्तफलं श्रुतम्' इत्येतामुक्तिं रामायणमहाभारतयोः प्रधानपात्रेषु चरितार्थयत ।
- (ग) के उत्तमपुरुषाः ?
- (घ) नित्यमुत्थानवान् नरः किं प्राप्नोति ?
- (ङ) 'सिद्धिर्दैवे प्रतिष्ठिता' इति अस्या उक्तेः क आशयः ?

षष्ठः किरणः

६ वसिष्ठ-विश्वामित्रौ

आसीत् पुरा कान्यकुब्जे धन्विनां ककुदो विश्वामित्रो नाम राजर्षिः । स एकदा मृगयाया मृगानुसरणक्रमेण क्षमाधनस्य ब्रह्मर्षेर्वसिष्ठस्याश्रमं प्रविवेश, तत्र च शबलानाम्नीं धेनुं ददर्श । पल्लवस्निग्धपाटला धेनुर्ललाटे श्वेतरोमाङ्केन शुशुभे । सा न केवलं प्रभूतस्य पयसः प्रसूतिरपि तु सर्वेषामपि कामानां दोग्ध्री, दैवीनां मानुषीणां चापदां प्रतिहर्त्री बभूव ।

शबलायाः प्रसादाद् वसिष्ठो निमिषेणैव ससैन्यस्य राजर्षेरलौकिकमातिथ्यं चकार । धेनोस्तन्महद्द्रुतमवलोक्य विश्वामित्रस्तस्यै लुलुभे, प्रणतो वसिष्ठं चोवाच—“ब्रह्मर्षे, अहमत्र भवते कुण्डोष्नीनां शतसहस्रमर्पयामि, इयं धेनुस्तु मह्यं प्रदीयताम् ।”

तथोक्तो वसिष्ठः प्रत्युवाच—“राजर्षे, नूनं दुर्लभाभिलाषो भवान् । अविस्तं यजनमेवास्माकं कुलधर्मः । यज्ञेष्वपेक्षितस्य हविष इयमेव प्रसूतिः । नूनमेतया विनोपरुध्येत ममाश्रमधर्मः । तत् क्षम्यतां राजर्षे, नाहमुत्सहे होमधेनुं दातुम् ।”

एवमुक्तो विश्वामित्रो वसिष्ठं परिभर्त्सयन् सरोषमाह—“एवं भोः, न मे शासने तिष्ठसि । शृणु, इयं धेनुः सर्वसत्त्वानां रत्नम् । नृपाश्च रत्नहराः । तद् यदि गवां शत-सहस्रेणाप्येनां दातुं नोत्सहसे तर्ह्यहमेनां प्रसभं हरामि ।”

वसिष्ठ प्रत्युवाच राजर्षे अनुत्सक खलु । तथापि जान

क्षत्रियोऽसि क्षत्रियाश्च प्रकृत्यैवोत्सर्पिणश्छद्वर्तिनश्च तत क्रियता यथा त छद

वसिष्ठेनैवमुक्तो विश्वामित्रः स्वसैनिकान् बलन शबला हतुमादिदश । तस्यादश

पालयन्तः सैनिकाः प्रसह्य तां क्रष्टुमारेभिरे । तैस्तथा व्यवधूयमाना धेनुः सोत्कम्पं चक्रन्द,

वसिष्ठं चाब्रवीत्—“ब्रह्मर्षे, किमिति जोषमास्यते भवता? अतीव खलु भवतो ममोपर्य-

दाक्षिण्यम् । किं न मां शृङ्गग्रहं प्राप्तामुन्मथितामवलोकयति भवान्?”

ततो वात्सल्यपरिवाहिणा चक्षुषा परिष्वजमान इव तां तथा शोकपरिप्लुता

मुनिरुवाच—“कल्याणि, वागेव मे नाभिधेयविषयमवतरति त्रपया । तथापि शृणु, नाहं त्वा

त्यक्तुमुत्सहे । पश्यतु भवती स्वयमेव । अभूमिरिदमाश्रमपदमविनयानाम् । आवासश्चात्र

सरस्वत्याः । तथाप्ययं राजा उत्पथं प्रतिपद्य त्वयि जिह्मं चरितुमुद्यतः । जानासि च यन्मृनीना

क्षमैव धर्मः । तद् यदि तुभ्यं गमनं रोचते तर्हि गच्छ किं तु यद्याश्रम एवावासमिच्छसि तर्हि

तिष्ठ । क्रियतां यथा ते छन्दः ।”

तपोनित्यस्य ब्रह्मर्षेः ‘तिष्ठ’ इति वचनमाकर्ण्य सत्त्वैर्मनसापि दुष्प्रधर्मा धेनुः संरम्भात्

स्व महिमानं प्रतिपद्यमाना रौद्रं रूपमधारयत्, हुंकारमात्रेण चासंख्यान् सैनिकानसृजद् ये

विश्वामित्रस्य दृष्टान् भटान्, नडान् नागा इव, व्यमृद्नन्, अजर्यश्च तं दुराधर्षं सम्राजम् ।

स्वसैनिकानां तत् कदनमवलोक्य शोकाग्निना परितप्तो विश्वामित्रो वसिष्ठमब्रवीत्—

“ब्रह्मर्षे, अतिमहत् खल्विदमाश्चर्यस्थानं यदेतयैकाकिन्या धेन्वा प्रभूतं मे बलमुत्सादितम् ।

नून तवैव तपसोऽयमपौरुषेयो गरिमा । श्रूयन्ते हि आश्चर्यातिशययुक्तास्तपःसिद्धयः ।

तदहमपि राज्यभोगांस्तिरस्कृत्य तप एवाचरिष्यामि ।”

एवमुक्त्वा राज्यं पुत्रेषु निक्षिप्य विश्वामित्रस्तपोवनं ययौ तत्र च स्थाणुरिवाचल-

स्तिष्ठन् मरुदाहारः शतं संवत्सरान् दारुणं तपस्तेपे । उवाच च—

तपसो हि परं नास्ति तपसा विन्दते महत् ।

तपसा योजये नूनमात्मानं धर्म्यया श्रिया ॥

क्षत्रादेवं ब्रह्मबलं गरीयो ।

न ब्रह्मतः किञ्चिदन्यद् गरीयः ।

सोऽहं जानन् ब्रह्मतेजो यथावद्

मर्त्यः सन्नमरत्वं भजेय ॥

वसिष्ठ विश्वामित्रौ

क्षत्रं नाहं पुनर्यायां लोकानालोकयाम्यहम् ।
आ सिद्धेरा प्रजासर्गादात्मनो मे गतिः शुभा ॥
उपलब्धा मुनिश्रेष्ठ तथेयं सिद्धिरुत्तमा ।
इतः परं गमिष्यामि ततः परतरं पुनः ।
ब्रह्मणः पदमव्यग्रं मा ते भूदव संशयः ॥

अभ्यासः

१. समास-परिचयः—

कुण्डोष्णी, तपोनित्यः, दुर्लभाभिलाषः, शोकपरिप्लुता, मरुदाहारः, वात्सल्यपरिवाहि ।

२. भेद-विवेकः—

कदनम्—सदनम् । प्रतिहृवी—प्रतिहन्त्री । धन्वी—तन्वी । अनुत्सेकः—अनच्छेदः ।

३. रूप-परिचयः—

(क) धन्विन्, धेनु, प्रसूति, ऋषि—शब्दानां तृतीयायाम् ।

(ख) दृश्, स्था, सह, कृ—धातूनां लटि ।

४. प्रयोग-परिवर्तनम्—

विश्वामित्रो धेनुं ददर्श । ते गां कष्टुमारेभिरे ।

त्वं मामवलोकयसि । शत्रुता सैनिकानजयत् ।

५. प्रश्नाः—

(क) “क्षत्रादेवं ब्रह्मबलं गरीयः” इति अस्या उक्तेः कोऽर्थः ?

(ख) वसिष्ठविश्वामित्रयोः कलहस्य किं मूलम् ?

(ग) विश्वामित्रेण राज्यं त्यक्त्वा तपः किमिति स्वीकृतम् ?

(घ) मानवजीवने तपसः किं स्थानम् ?

(ङ) ‘विद्यार्थी वा त्यजेत् सुखम्’ इति अस्या उक्तेः क आशयः ?

७ (अ) ज्वालामुखाः पर्वताः

क इमे ज्वालामुखा नाम ? एते ह्यग्निमयाः पर्वतविशेषाः येषां शिखरेभ्यो द्रवीभूत-
मयोगोलकमिव अतिभीषणमखिलस्याप्यन्तिकस्थस्य प्राणिजातस्य विनाशकं विषमयं द्रव्यम्,
अपरिमेयो बाष्पनिवहः, बहूनि शिलाशकलानि, रजःपटलं च असकृत् परितो निःसरन्ति ।
येभ्यश्च निर्गतैः शिलाजालैरन्तरिक्षमतिदूरं व्याप्नुवद्भिर्विनाश्यन्ते महानगराणि । एतेषामति-
भीषणानामग्निपर्वतानामुत्पत्तिमित्यमुपवर्णयन्ति पृथ्वीस्वरूपविमर्शकाः—सामान्यतः पर्वताना-
मुत्पत्तिक्रमे कदाचिद् वसुधागर्भाद् बहिर्निःसृतः शैलेयप्रवाहो भुवो बहिःप्रदेशे सूच्याकारक
त्रिकोणमल्पाकृतिं च पर्वतमेकमुत्पाद्य तस्य शिखरे पुनरपि भूमध्यात् पदार्थानां बहिरागमनाय
बिलमेकं परिकल्पयति । अनेनैव मार्गेण तदा तदा निर्गतः शैलेयद्रवप्रवाहः पर्वतस्याकारमभि-
वर्धयति, शिखरस्थं द्वारमपि यथापूर्वं परिकल्पयति । एवमुत्पन्नाः पर्वता ज्वालामुखा भवन्ति ।

बहोः कालात् पूर्वं भूम्यामवस्थिता ज्वालामुखा अद्य न परिदृश्यन्ते । क्रमेण घनो-
भवता भूमेरावरणेन आच्छादितानि तेषां मुखद्वाराणि—इति वर्णयन्त्याधुनिका भूतत्त्वविज्ञान-
विदः । प्राचीनाः कतिचन अग्निपर्वता अदर्शनं यान्ति, नवीनाः कतिचन तत्र तत्रोद्भवन्ति ।
एतादृशपर्वतविशेषाणामुत्पत्तौ अतर्कितोपनतो वसुधातलस्योद्भेद एव मुख्यं कारणमिति
परिगण्यते । तादृशोद्भेदस्य निदानं हि अन्तर्भूमि एकत्रोपचीयमानस्याग्नेयोद्गारस्यासकृदभि-
घातः । अभिघातोऽयं भूमेरास्तरणद्वारा तत्तत्समये अन्तर्महि सुसूक्ष्मद्वारैः प्रविशद्भिः, तत्र
चात्यन्तमौष्ण्याद् बाष्पत्वेन परिणमद्भिर्दुर्ध्वजलकणैरुपजायते । धूमशकटादीनां महानौकानां
च भारं तूलवदविगण्य तीव्रवेगेनाकर्षन्तः स्वयं प्रसरणशीला इमे बाष्पनिवहाः दैवयोगादन्तर्महि
सजाता बहिर्निर्गमनमार्गमनुपलभ्य नेदिष्ठमाग्नेयोद्गारमुन्मथ्याभिघातं जनयन्ति । अनेनैव
कारणेन ज्वालामुखाः प्रायो जलनिधिसमीप एवाविर्भवन्ति ।

(आ) भूकम्पः

भूकम्पो नाम वसुधाया आवरणभूतस्योपरितनभागस्यैकदेशस्य भयानकं चलनम् ।
तच्च पूर्वोक्तप्रकारेण अन्तर्निहीतस्याग्नेयोद्गारस्य महताभिघातेनैव जायते । यदा कस्मि-
श्चित्प्रदेशे महीतलस्योद्भेदो भवति, तदा तत्समीपवर्ती भुवो भागः कम्पते । महीमध्यस्थौ-
ष्ण्यस्याधिक्येनोपरितनभागस्य भाराधिक्येन वा संभवति भूमेः प्रकम्प इत्यत्र नास्ति

सूक्तयः.

संशयलेशोऽपि । अत्यन्तमौष्ण्येनोद्वेजितेऽन्तर्गतान्नेयद्रवे परःशलाः समुत्पद्यन्ते तरङ्गाः । तेषा-
मतिनिविडाभिघातेन जायमानः कम्पः कदाचिदभ्रंकषशिखरोपशोभिनः प्रासादानपि पातयति,
प्राणिजातस्यापि नाशमापादयति । यत्र ज्वालामुखा वर्तन्ते प्रायशस्तस्मिन्नेव प्रदेशे भूकम्पोऽपि
जायते पौनःपुन्येन ।

अभ्यासः

१. समास-परिचयः—

ज्वालामुखः, अग्निपर्वतः, शैलेयद्रवप्रवाहः, एतादृशपर्वतविशेषाः, तत्तत्समये, जलनिधिसमीपे ।

२. अर्थ-परिचयः—

दैवयोगात्, आग्नेयोद्गारः, आग्नेयद्रवः ।

अभ्रंकषशिखरोपशोभिनः, भूकम्पः ।

३. रूप-परिचयः—

(क) सु, वृ, भृ, कृ—धातूनां लटि ।

जन्, श्रु, दृश्, स्था—धातूनां लोटि ।

(ख) विज्ञानविद्, भूमि, अदस्—शब्दानां प्रथमायाम् ।

४. प्रश्नाः—

(क) भूकम्पस्य किं निदानम् ?

(ख) ज्वालामुखाः पर्वताः के ? किं वा कारणं ज्वालामुखानाम् ?

(ग) जापानदेशे ज्वालामुखाः सन्ति न वा ?

(घ) पोम्पियाई-नगरस्य ध्वंसः कथं जातः ?

(ङ) बिहारप्रदेशे भूकम्पः कदा जातः ?

(च) १९३५ तमे ख्रिस्तीयाब्दे क्वेटा-नगरस्य का दशा जाता ?

अष्टमः किरणः

८ सूक्तयः

पदं हि सर्वत्र गुणैर्निधीयते ।

आदानं हि विसर्गाय सतां वारिमुच्चासिव ।

काले खलु समारब्धाः फलं वञ्चन्ति नीतयः ।

फलानुमेयाः प्रारम्भाः ।

क्लेश फलन हि पुननवता विघ्नत ।
 न रत्नमन्विष्यति मृग्यत हि तत् ।
 याच्ञा मोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा ।
 नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण ।
 अहो दुरन्ता बलवद्विरोधिता ।
 न तितिक्षासममस्ति साधनम् ।
 उद्यमेन हि सिध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः ।
 समय एव करोति बलावलम् ।
 सदाभिमानैकधना हि मानिनः ।
 मितं च सारं च वचो हि वाग्मिता ।
 संहतिः कार्यसाधिका ।
 अङ्गीकृतं सुकृतिनः परिपालयन्ति ।
 न साहसमनारुह्य नरो भद्राणि पश्यति ।
 मौनं स्वीकारलक्षणम् ।
 जनानने कः करमर्पयिष्यति ।
 न महानिच्छति भूतिमन्यतः ।
 न धर्मवृद्धेषु वयः समीक्ष्यते ।

अभ्यासः

१. अर्थ-परिचयः—

तितिक्षा, अनारुह्य, भूतिः, फलानुमेयाः, याच्ञा, बलवद्विरोधिता ।

२. भेद-विवेकः—

संहतिः—संस्कृतिः । आदानम्—दानम् । मृग्यते—सृज्यते । मितम्—मतम् । दशा—दिशा ।
 निधीयते—विधीयते । समीक्ष्यते—समीक्षते ।

३. प्रश्नाः—

- (क) 'सदाभिमानैकधना हि मानिनः' इतीमामुक्तिं राणाप्रतापे चरितार्थयत ।
- (ख) "न धर्मवृद्धेषु वयः समीक्ष्यते"
"योजनूचानः स नो महान्" को भेदोऽनयोरेकयोः ?
- (ग) केषां प्रारम्भाः फलानुमेया भवन्ति ?
- (घ) "पदं हि सर्वत्र गुणैर्निधीयते" इतीयमुक्तिः अष्टावक्रे चरितार्थनीया ।

नवमः किरणः

६ पितृभक्तो रामचन्द्रः

मर्यादापुरुषोत्तमो रामचन्द्रस्त्रेतायां प्रख्याते सूर्यकुले जन्म लेभे । अयोध्याधिपति-
दशरथस्तस्य जनकः, कोसलाधिपस्य दुहिता कौसल्या च तस्य जननी । लक्ष्मणो, भरतः,
शत्रुघ्नश्चेति त्रयस्तस्य भ्रातरः । अभिरामेण वपुषा अप्रतिमेन तेजसा च रामः पितुर्मतुर्लोकस्य
च मनोनयननन्दनः । कुलगुरोर्वसिष्ठस्योपदेशात् स नातिचिरादेव साङ्गेषु वेदेषु धनुर्विद्याया
च पारदृश्वाभवत् । मणिदर्पण इवातिनिर्मले तस्मिन् संचक्राम सकलः कलाकलापः । तस्य
भ्रातरोऽपि सर्वाभिविद्याभिः सकलाभिश्च कलाभिस्तमनुचक्रुः । तपःश्रुतान्वितानां पुत्राणा-
मवदातैश्चरितैः पितरौ निकामं प्रीतावास्ताम् ।

एकदा राजर्षिर्विश्वामित्रोऽयोध्यामागत्य मुनीनां यज्ञविघातशान्तये दशरथं राम-
लक्ष्मणौ ययाचे । उदारसत्त्वो दशरथो वसिष्ठस्यानुज्ञया स्वपुत्रौ कौशिकेन सह विससर्ज ।
धर्मरतीनां तेषां मार्गे ताडका राक्षसी प्रादुर्बभूव । तां रामः शरेण विव्याध । यश्च सुबाहु-
नामा भायाजीवी राक्षसस्तत्र तत्र मुनीनभ्यार्दत् तमपि रामो विषदिग्धैः शरैश्चिच्छेद ।

एवं सततसत्त्रिणां मुनीनां मखविघातमपाकृत्य रामलक्ष्मणौ विश्वामित्रेण सह
राजर्षेर्जनकस्य राजधानीं मिथिलामाजग्मतुः । तत्र च संप्रवृत्ते सीतास्वयंवरे रामः पणत्वेन
धृत दुरानमं शैवं धनुरनायासेनैव बभञ्ज । एतेन हर्षस्य परां कोटिमापन्नो जनको राघवाय
स्वतनयां जानकीं न्यवेदयत् ।

विवाहादनन्तरं सपुत्रो दशरथः स्वां पुरीं प्रतस्थे । मार्गे रामस्य यशोऽमृष्यमाण ,
त्रिसप्तकृत्वः क्षत्रियाणां द्रावणः परशुरामो रामं युद्धायाभ्यगात्, परं राघवान्तिकमुपगम्य स
कूपे संवृतोऽग्निरिव हतप्रभोऽभवत् ।

परिणतवया दशरथो रामं यौवराज्येऽभिषेक्तुमैच्छत् । परं रामस्य विमाता कैकेयी
तस्याभिषेकसंभारानसहमाना कोपभवनमास्थिता, अपुण्योपहतया मन्थरया प्रेरिता दशरथ-
मवोचत्—“आर्य, पुरा प्रतिश्रुतं वरद्वयमधुना याचे । एकेन भरतस्य यौवराज्यमपरेण च रामस्य
चतुर्दश वर्षाणि वनवासम् । नो चेत् प्राणांस्त्यजामि ।” तामथर्वाङ्गिरसीं कृत्यामिदोग्रां वाच-
माकर्ण्य हतचेतनो राजा, कुम्भे क्षिप्तो महोरग इव निःश्वसन्, मौनमास्थितः । पितुर्मौनं
तस्यादेश इति सत्कृत्योदग्रमना रामः समानव्रतचर्याभ्यां सीतालक्ष्मणाभ्यामनुयातो वनं ययौ ।
वनं व्रजतो रामस्य काप्यतुलैवाभिख्यासीत् । यतो हि—

पित्रा दत्ता रुदन् रामः प्राङ् मही प्रत्यपद्यत ।
 परचाद् वनाय गच्छेति तदाज्ञां मुदितोऽग्रहीत् ॥
 दधतो मङ्गलक्षौमे वसानस्य च वल्कले ।
 ददृशुर्विस्मितास्तस्य मुखरागं समं जनाः ॥

(रघुवंशे १२, ७-८)

अभ्यासः

१. समास-परिचयः—

मनोनयननन्दनः, उदारसत्त्वः, तपोरतीनाम्, हृतचेतनः, महोरगः, पलितशिराः, तपःश्रुतोपपन्नाः ।

२. प्रश्नाः—

- (क) रामः मर्यादापुरुषोत्तमः कथमासीत् ?
- (ख) परशुरामः क्षत्रियाणां द्रावणः किमित्यासीत् ?
- (ग) कैकेयी रामं किमिति वनं प्रतिष्ठापयामास ?
- (घ) रामेण राज्याभिषेकः किमिति न्यवृत्तः ?
- (ङ) सीतालक्ष्मणौ वनं किमिति अगच्छताम् ?
- (च) रामभरतयोः कतरो रोचते भवते ?
- (छ) रामस्य कथां संक्षेपेण कथयतु ।

दशमः किरणः

१० रामाश्रमे भरतः

लक्ष्मणः—(सुमन्त्रं दृष्ट्वा) अये, तातः !

सुमन्त्रः—अये, कुमारो लक्ष्मणः ।

भरतः—एवं, गुरुयम् । आर्यं, अभिवादये ।

लक्ष्मणः—एहि, एहि । आयुष्मान् भव । (सुमन्त्रं वीक्ष्य) तात, कोऽत्रभवान् ?

सुमन्त्रः—कुमार, अयमिक्ष्वाकुकुलजः कुमारो भरतस्तवानुजः ।

लक्ष्मणः—एहि, एहि इक्ष्वाकुकुमार, स्वस्ति, आयुष्मान् भव ।

रामाश्रमे भरतः.

भरतः—अनुगृहीतोऽस्मि ।

लक्ष्मणः—कुमार, इह तिष्ठ । त्वदागमनमार्याय निवेदयामि ।

भरतः—आर्य, अचिरमिदानीमभिवादयितुमिच्छामि । शीघ्रं निवेद्यताम् ।

लक्ष्मणः—वाढम् । (राममुपगम्य) जयत्वार्यः । आर्य,

अयं ते दयितो भ्राता भरतो भ्रातृवत्सलः ।

संक्रान्तं यत्र ते रूपमादर्श इव तिष्ठति ॥

रामः—वत्स लक्ष्मण, किमेवं भरतः प्राप्तः ?

लक्ष्मणः—आर्य, अथ किम् ?

रामः—मैथिलि ! भरतावलोकनार्थं विशालीक्रियतां चक्षुः ।

सीता—आर्यपुत्र, किं भरत आगतः ?

रामः—मैथिलि, अथ किम् ?

अद्य खल्ववगच्छामि पित्रा मे दुष्करं कृतम् ।

कीदृशस्तनयस्नेहो भ्रातृस्नेहोऽयमीदृशः ॥

लक्ष्मणः—किं प्रविशतु कुमारः ?

रामः—वत्स लक्ष्मण, गच्छ, सत्कृत्य शीघ्रं प्रवेश्यतां कुमारः ।

लक्ष्मणः—यदाज्ञापयत्यार्यः ।

रामः—अथवा तिष्ठ त्वम् । इयं मैथिली स्वयं गच्छतु मातृभावेन ।

सीता—यदार्यपुत्र आज्ञापयति । (उत्थाय परिक्रामति) ।

सुमन्त्रः—(सीतां दृष्ट्वा) अये, वधूः !

भरतः—अये, इयमत्रभवती जनकराजपुत्री—

इदं तत् स्त्रीमयं तेजो जातं क्षेत्रोदराद्धलात् ।

जनकस्य नृपेन्द्रस्य तपसः संनिदर्शनम् ॥

आर्ये, अभिवादये । भरतोऽहमस्मि ।

सीता—(आत्मगतम्) ने केवलं रूपं स्वरसंयोगोऽपि स एव ।

(प्रकाशम्) वत्स, चिरं जीव ।

भरतः—(राममुपगम्य) आर्य, अभिवादये । भरतोऽहमस्मि ।

रामः—(सहर्षम्) एहि, एहि इक्ष्वाकुकुमार, स्वस्ति, आयुष्मान् भव ।

भरतः—अनुगृहीतोऽस्मि ।

अभ्यास'

१. समास-परिचयः—

इक्ष्वाकुजलजः, भरतावलोकनार्थम्, तनयस्नेहः, स्वरसंयोगः ।

२. रूप-परिचयः—

- (क) अस्, गम्, इ, इष्—आतुनां लटि ।
 (ख) स्था, दृश्, भू, विष्—आतुनां लोटि ।

३. प्रश्नाः—

- (क) भरतो वनं किमित्यायातः ?
 (ख) भरतेन स्वमातुः कैकेयाः कथं किमिति न स्वीकृतम् ?
 (ग) मैथिली इति नाम्नः किं मूलम् ?
 (घ) कैकेयी इति नाम्नः किं मूलम् ?
 (ङ) 'आत्मगतम्' इत्यस्य क आशयः ?
 (च) लक्ष्मणभरतयोर्भवते कतरो रोचते ?
 (छ) भासस्य विषये भवतां गुरुचरणैः किं श्रावितम् ?

एकादशः किरणः

११ सीतायाः रावणं प्रत्युत्तरम्

रावणेनैवमुक्ता तु कुपिता जनकात्मजा ।
 प्रत्युवाचानवद्याङ्गी तमनादृत्य राक्षसम् ॥१॥
 महागिरिमिवाकम्पं महेन्द्रप्रतिमं पतिम् ।
 महोदधिमिवाक्षोभ्यमहं राममनुव्रता ॥२॥
 सर्वलक्षणसंपन्नं न्यग्रोधपरिमण्डलम् ।
 सत्यसन्धं महाभागमहं राममनुव्रता ॥३॥
 महाबाहुं महोरस्कं सिंहविक्रान्तगामिनम् ।
 नृसिंहं सिंहसंकाशमहं राममनुव्रता ॥४॥

पूर्णचन्द्राननं रामं राजवत्सं जितेन्द्रियम् ।
 पृथुकीर्तिं महाबाहुमहं राममनुव्रता ॥१॥
 त्वं पुनर्जम्बुकः सिंहीं मामिहेच्छसि दुर्लभाम् ।
 नाहं शक्या त्वया स्प्रष्टुमादित्यस्य प्रभा यथा ॥६॥
 क्षुधितस्य हि सिंहस्य मृगशत्रोस्तरस्विनः ।
 आशीविषस्य वदनादंष्ट्रामादातुमिच्छसि ॥७॥
 मन्दरं पर्वतश्रेष्ठं पाणिना हर्तुमिच्छसि ।
 कालकूटं विषं पीत्वा स्वस्तिमान् गन्तुमिच्छसि ॥८॥
 अक्षि सूच्या प्रमृजसि जिह्वया लेक्षि च क्षुरम् ।
 राघवस्य प्रियां भार्यामधिगन्तुं त्वमिच्छसि ॥९॥
 अवसज्य शिलां कण्ठे समुद्रं तर्तुमिच्छसि ।
 सूर्याचन्द्रमसौ चोभौ पाणिभ्यां हर्तुमिच्छसि ॥१०॥
 कल्याणवृत्तां यो भार्या रामस्याहर्तुमिच्छसि ।
 अयोमुखानां शूलानां मध्ये चरितुमिच्छसि ॥११॥

अभ्यासः

१. समास-परिचयः—

अनवद्याङ्गी, सिंहविक्रान्तगामी, सूर्याचन्द्रमसौ, कल्याणवृत्ता, सिंहसंकाशः, सत्यसन्धः ।

२. भेद-विवेकः—

प्रतिमा—उपमा । मन्दरः—मन्दिरम् । अवसज्य—विसृज्य ।
 तरस्वी—मनस्वी । वदनम्—सदनम् । पीत्वा—पात्वा ।

३. अर्थ-परिचयः—

न्यग्रोधपरिमण्डलः, महोरस्कः, पृथुकीर्तिः, अनुव्रता, आशीविषः, लेक्षि, अवसज्य ।

४. प्रश्नाः—

- रावणो विद्वानासीत् इति श्रूयते । किमिति तेन रामस्य भार्या सीता हुता ?
- विद्याचारयोः कस्याधिकतरं महत्त्वम् ?
- महेन्द्र इति शब्दस्य कोऽर्थः ? राघव इति शब्देन किमभिप्रेतम् ?
- संस्कृतरामायणस्य रचयिता कः ?

द्वादशः किरणः

१२ गुरुदक्षिणा

(यज्ञसमाप्त्यनन्तरम्)

दुर्योधनः—भो आचार्य ! प्रतिगृह्यतां दक्षिणा ।

द्रोणः—दक्षिणेति । भवतु, भवतु ।

दुर्योधनः—आज्ञापयतु भवान् । किमनुतिष्ठामि ?

द्रोणः—पुत्र दुर्योधन, कथयामि ।

दुर्योधनः—किमिदानीं भवता विचार्यते ?

द्रोणः—पुत्र, ब्रवीमि खलु तावत् । बाष्पवेगस्तु मां बाधते ।

सर्वे—कथमाचार्योऽपि बाष्पमुत्सृजति ?

भीष्मः—पौत्र दुर्योधन, अफलस्ते परिश्रमः ।

दुर्योधनः—कः कोऽत्र ?

भटः—(प्रविश्य) जयतु महाराजः ।

दुर्योधनः—आपस्तावत् ।

भटः—यदाज्ञापयति महाराजः । (निष्क्रम्य प्रविश्य) जयतु महार

दुर्योधनः—(कलशं गृहीत्वा) भो आचार्य, अश्रुपातोच्छिष्टस्य क्रियत

द्रोणः—भवतु भवतु । मम कार्यक्रियैव मुखोदकमस्तु । पुत्र, श्रूयताम्

येषां गतिः क्वापि निराश्रयाणां

संवत्सरैर्द्वादशभिर्न दृष्टा ।

त्वं पाण्डवानां कुरु संविभाग-

मेषा च भिक्षा मम दक्षिणा च ॥

शकुनिः—(सोद्वेगम्) मा तावद् भोः । किमियं धर्मवञ्चना युक्ता ?

द्रोणः—कथं धर्मवञ्चनेति ? मा तावद् भो गान्धारविषयविस्मितश

सर्वलोकमनार्थं मन्यसे ।

दुर्योधनः—मातुल, इतस्तावत् ।

शकुनिः—अयमस्मि ।

दुर्योधनः—मातुल, पाण्डवानां राज्यार्थविषये को निश्चयः ?

गुरुदक्षिणा

शकुनिः—न दातव्यम् इति मे निश्चयः ।

दुर्योधनः—‘दातव्यम्’ इति वक्तुमर्हति निसर्गशालीनो मातुलः ।

शकुनिः—यदि दातव्यं राज्यं किमस्माभिः सह मन्त्रयसे ? ननु सर्वमेव प्रदीयताम् ।

दुर्योधनः—अथेदानीम्—

गुरुकरतलमध्ये तोयमावर्जितं मे
श्रुतमिह कुलवृद्धैर्यत् प्रमाणं पृथिव्याम् ।
तदिदमपनयो वा वञ्चना वा यथा वा
भवतु नृप, जलं तत् सत्यमिच्छामि कर्तुम् ॥

शकुनिः—अनृतवचनान्मोचयितव्यो भवान् ननु ?

दुर्योधनः—अथ किम् ? प्रसन्नस्ते तर्कः ।

शकुनिः—तेन हि इतस्तावत् । (उपसृत्य) भो आचार्य, इहात्रभवान् कुरुराजो भवन्तं
विज्ञापयति । यदि पञ्चरात्रेण पाण्डवानां प्रवृत्तिरुपनीयते राज्यस्यार्धं प्रदास्यति
किल । समानयतु भवानिदानीम् ।

भीष्मः—पौत्र दुर्योधन, अच्छलो धर्मः । वयमपि तावदस्मिन्नर्थे प्रीताः स्मः । पश्य पौत्र—

वर्षेण वा वर्षशतेन तेषां
त्वं पाण्डवानां कुरु संविभागम् ।
नूनं प्रतिज्ञां कुरु वीर ! सत्यां
सत्या प्रतिज्ञा हि सदा कुरुणाम् ॥

दुर्योधनः—एष एव मे निश्चयः । न जातु माननीयेष्वात्मानमपराधयिष्ये ।

अभ्यासः

१. प्रयोग-परिवर्तनम्—

किं भवता विचार्यते ? यदाज्ञापयति महाराजः । अश्रुपातोच्छ्वष्टस्य क्रियतां शौचम् । सर्वमेव
प्रदीयताम् । समानयतु भवानिदानीम् ।

२. रूप-परिचयः—

(क) कृ, दृश्, दा, अस्, जि—धातूनां लटि ।

(ख) अप्, अश्रु, अस्मद्, युष्मद्—शब्दानां तृतीयायाम् ।

संस्कृतोदयः

३. प्रश्नाः---

- (क) यज्ञे दक्षिणायाः किं फलम् ?
- (ख) दुर्योधनः पाण्डवेभ्यः किमिति द्रुहाति स्म ?
- (ग) भीष्मद्रोणाभ्यां दुर्योधनः कस्मात्कारणात् न त्यक्तः ?
- (घ) शकुनिदुर्योधनयोः कः संबन्ध आसीत् ?
- (ङ) 'अच्छलो धर्मः' इत्यस्या उक्तेः कः आशयः ?
- (च) महाभारते कति पर्वाणि सन्ति ?
- (छ) महाभारतस्य कर्ता कोऽस्ति ?
- (ज) द्रोणः आचार्यशब्देन किमिति संबोध्यते ?

त्रयोवशः किरणः

१३ आश्रमवर्णनम्

अपश्यं चाहम्---उपचर्यमाणातिथिम्, पूज्यमानपितृदेवतम्, अर्च्यमानहरिहरपिता-
महम्, उपदिश्यमानवेदमन्त्रम्, व्याख्यायमानयज्ञविद्यम्, आलोच्यमानधर्मशास्त्रम्, पठ्यमान-
विविधपुस्तकम्, विचार्यमाणसकलशास्त्रार्थम्, आरभ्यमाणपर्णशालम्, उपलिप्यमानाजिरम्,
उपमृज्यमानोटजाभ्यन्तरम्, आबध्यमानध्यानम्, साध्यमानमन्त्रम्, अभ्यस्यमानयोगम्, उपक्रिय-
माणवनदेवतावलिम्, निर्वर्त्यमानमौञ्जीमेखलम्, प्रक्षाल्यमानवल्कलम्, संगृह्यमाणसमिधम्,
शोष्यमाणपुष्करबीजम्, ग्रथ्यमानाक्षमालम्, न्यस्यमानवेत्रदण्डम्, आपूर्यमाणकमण्डलुम्, अदृष्ट-
पूर्वं कलिकालस्य, अपरिचितमनृतस्य, अश्रुतपूर्वं कपटस्य, अतिरमणीयमपरमिव ब्रह्मलोकं
मुनीनामाश्रमम् ।

अभ्यासः

१. अर्थ-परिचयः---

यज्ञविद्या, पर्णशाला, मौञ्जीमेखला, अक्षमाला, शास्त्रम्, पितामहः ।

२. समास-परिचयः---

उपमृज्यमानोटजाभ्यन्तरम्, साध्यमानमन्त्रम्, पठ्यमानविविधपुस्तकम्, अर्च्यमानहरिहरपितामहम् ।

तपस्विना श्रेष्ठो जाबालिः

३. प्रतीपमुद्धावयत—

योगः.... । आपूर्यमाणम्.... । उत्थाप्यमानम्.... । त्यस्यमानम्.... ।

४. भेद-विवेकः—

उटजम्—उदरम् । यज्ञः—यक्षः । पठ्यमानम्—पाठ्यमानम् । हरिः—हरः ।

उपचारः—अपचारः । पिता—पाता । संग्रहः—विग्रहः । साध्यमानः—बाध्यमानः ।

५. प्रश्नाः—

(क) किं भवता कश्चिदाश्रमो दृष्टः ?

(ख) आश्रमवासनगरवासयोः को भेदः ?

(ग) भवते आश्रमवासो रोचते नगरवासो वा ?

(घ) आश्रम, ग्राम, नगराणां, परस्परं को भेदः ?

चतुर्दशः किरणः

१४ तपस्विनां श्रेष्ठो जाबालिः

अवलोक्य चाहं तं तपोनिधिमचिन्तयम्—“अहो प्रभावस्तपसाम् । सर्वतपस्विना-
मयं चाग्रणीः । द्विसूर्यमिवाभाति जगदनेनाधिष्ठितं तत्त्वदर्शिना । निष्कम्पेव क्षितिरेतद-
वष्टम्भात् । एष प्रवाहः करुणारसस्य, संतरणसेतुः संसारसिन्धोः, आधारः क्षमाम्भसाम्,
तरणिः सर्वतपसाम्, परशुस्तृष्णालतागहनस्य, सागरः संतोषामृतरसस्य, उपदेष्टा सिद्धिमार्गस्य,
मूलमुपशमतरोः, नाभिः प्रज्ञाचक्रस्य, प्रासादो दर्शनध्वजस्य, तीर्थं सर्वविद्यावताराणाम्,
वडवानलो लोभार्णवस्य, निकषोपलः शास्त्ररत्नानाम्, दावानलो रागकीचकानाम्, अर्गलबन्धो
नरकद्वारस्य, कुलभवनमाचाराणाम्, आयतनं मङ्गलानाम्, अमूमिर्मदविकाराणाम्, दर्शकः
सत्पथानाम्, उत्पत्तिः साधुतायाः, नेमिरुत्साहचक्रस्य, आश्रयस्त्यागस्य, विपक्षः कलिकालस्य,
कोशस्तपसाम्, सखा सत्यस्य, क्षेत्रमार्जवस्य, प्रभवः पुण्यानाम्, अदत्तावकाशो मत्सरस्य, अराति-
विपदाम्, अस्थानं परिभवस्य, अननुकूलोऽभिमानस्य, असंमतो दैन्यस्य, अनायत्तो रोषस्य,
अनभिमुखः सुखानाम् ।

संस्कृतोदयः

अभ्यासः

समास-परिचयः—

निकषोपलः, संतोषामृतसः, नरकद्वारम्, मदविकाराः, संतरणसेतुः, करुणारसः, उपशमतरुः,
सर्वविद्यावतारः ।

अर्थ-परिचयः—

तपोनिधिः, अर्गलबन्धः, नेमिः, प्रभवः, संतरणसेतुः, तरणिः, बडवानलः, आयतनम्, मत्सरः ।

प्रश्नाः—

- (क) सत्पुरुषा मङ्गलानामायतनं भवन्ति । कञ्चित् स्वीकरोति भवानेतत् ?
- (ख) दावानलबडवानलयोः कोऽर्थः ?
- (ग) निकषोपलेन किं क्रियते स्वर्णकारैः ?
- (घ) 'नेमिहस्ताहचक्रस्य' इत्यस्य वाक्यखण्डस्य कोऽर्थः ?

पञ्चदशः किरणः

१५ वासुदेवस्य दौत्यम्

ऋचुकीयः—जयतु, जयतु महाराजः । एष खलु पाण्डवशिबिराद् दौत्येनागतः पुरुषोत्तमो
नारायणः ।

दुर्योधनः—मा तावद् भो बादरायण, किं स कंसभृत्यो दामोदरस्तव पुरुषोत्तमः ? स
तीर्थंकाकस्तव पुरुषोत्तमः ? आः ! सत्वरमपसर मम पुरतः ।

ऋचुकीयः—प्रसीदतु, प्रसीदतु महाराजः । संभ्रमेण समुदाचारो विस्मृतः । दूतः प्राप्तः
केशवः । (पादयोः पतति ।)

दुर्योधनः—केशव इति । सम्यग् वदसि सांप्रतम् । भो भो राजानः, योऽस्य छात्रव्यंसकस्य
प्रत्युत्थास्यति स मया दण्ड्यः । बादरायण, प्रवेशयाधुना तं दूतम् ।

ऋचुकीयः—यदाज्ञापयति महाराजः । (इति निर्गच्छति ।)

दुर्योधनः—वयस्य कर्ण, अद्य कृष्णमतिः स कृष्णः पाण्डवानां दौत्येनात्रागच्छति । युधिष्ठिरस्य
नारीमृदूनि वचनानि श्रोतुं त्वमपि कणौ सज्जय । (ततः प्रविशति वासुदेवः
काञ्चुकीयश्च ।)

वासुदेवस्य दौत्यम्

वासुदेवः—(स्वगतम्) कथं मां विलोक्य संभ्रान्ताः सर्वे राजानः? (प्रकाशम्) अलमल संभ्रमेण । ननु स्वैरमासतां भवन्तः ।

दुर्योधनः—(स्वगतम्) कथं केशवं दृष्ट्वा संभ्रान्ताः सर्वे राजानः? (वासुदेवं प्रति) भो दूत, एतदासनम् आस्यताम् ।

वासुदेवः—आचार्य, आस्यताम् । गाङ्गेयप्रमुखा राजानः, स्वैरमासतां श्रीमन्तः । वयमप्युपविशामः ।

दुर्योधनः—भो दूत, धर्मात्मजो युधिष्ठिरः, वायुसुतो भीमः, इन्द्रपुत्रो मे भ्रातार्जुनः, विनीतौ च तौ नकुलसहदेवौ कञ्चित् सन्ति सर्वे कुशलिनः ?

वासुदेवः—सदृशमेतद् गान्धारीपुत्रस्य । कुशलिनः सर्वे । भवतो राज्ये शरीरे च कुशल-मनामयं च पृष्ट्वा विज्ञापयन्ति युधिष्ठिरादयः—

अनुभूतं महद् दुःखं संपूर्णं समयश्च सः ।

अस्माकमपि धर्म्यं यद् दायार्थं तद् विभज्यताम् ॥

दुर्योधनः—कथं कथं दायार्थमिति ? देवात्मजास्ते नैवाहन्ति दायार्थम् ।

वासुदेवः—भो राजन्, मा मैवम् । एवं परस्परविरोधस्य विवर्धनेन कुत्सुकुलं शीघ्रमेव नामशेषं भविष्यति । अतः क्रोधं वैरं चापहाय तदेव भवान् कर्तुमर्हति ।

दुर्योधनः—मनुष्याणां देवात्मजैः सह कथं बन्धुता भवेत् ? भवन्तस्तु पिष्टपेषणमेव कुर्वन्ति । अस्य विषयस्य तु कथापि नैव कर्तव्या । श्रूयताम्—

सूच्यग्रं नैव दास्यामि विना युद्धेन केशव ।

वासुदेवः—भो दुर्योधन, न जानीषे तावदर्जुनस्य पराक्रमम् । पशुपतिमपि स युद्धेऽप्रीणयत् । इन्द्रादयो यस्य विक्रमं नितरां प्रशंसन्ति, स महावीरो देवेन्द्रार्तिकरान् निवात-कवचान् नाम दैत्यान् लीलयैव व्यनाशयत् । एक एव च विराटनगरे भीष्मादीन् महारथिनोऽजयत् । किं बहुना—

दातुमर्हसि मद्वाक्याद् राज्यार्थं धृतराष्ट्रज ।

अन्यथा सागरान्तां गां हरिष्यन्ति हि पाण्डवाः ॥

अभ्यासः

अर्थ-परिचयः—

दौत्यम्, सांप्रतम्, दण्ड्यः, संभ्रान्तः, स्वैरम्, कञ्चित्, अनामयम्, पिष्टपेषणम्, आर्तिकरः ।

संस्कृतोदयः

२. रूपपरिचयः—

- (क) आस्, स्था, स्मृ, गम्, दृश्, अस्—धातूनां लोटि ।
(ख) मृदु, श्रीमन्, राजन्, कुशलिन्, भ्रातृ—शब्दानां चतुर्थ्यां सप्तम्यां च ।

३. प्रश्नाः—

- (क) श्रीकृष्णः दुर्योधनस्य सभायां किमर्थं गतः ?
(ख) अर्जुनेन अक्षौहिणीः सेनाः परित्यज्य एकाकी श्रीकृष्णः कस्मै प्रयोजनाय स्वीकृतः ?
(ग) 'युधिष्ठिरस्य नारीमूढानि वचनानि श्रोतुं त्वमपि कणौ' सज्जय' अस्मिन् वाक्ये 'नारीमूढानि' इत्यस्य क आशयः ?
(घ) काञ्चुकीयस्य को व्यापारः राजसभायाम् ?
(ङ) गाङ्गेयः क आसीत् ? भीष्मस्य गाङ्गेय इति नाम किमर्थम् ?
(च) श्रीकृष्णं दृष्ट्वा राजानः किमिति उत्थिताः ?
(छ) श्रीकृष्णः 'वासुदेव' इति कस्मात् कारणात् कथ्यते ?

षोडशः किरणः

१६ शबराणां जीवितम्

आसीच्च मे मनसि—'अहो, मोहप्रायमेषां जीवितम्, साधुजनविगर्हितं च चरितम् । तथा हि पुरुषपिशितोपहारे धर्मबुद्धिः, आहारः साधुजनविगर्हितो मधुमांसादिः, श्रमो मृगया, शास्त्रं शिवास्तम्, उपदेष्टारः सदसतां कौशिकाः, प्रज्ञा शकुनिज्ञानम्, परिचिताः श्वानः, राज्यं शून्याटवीषु, आपानकमुत्सवः, मित्राणि क्रूरकर्मसाधनानि धनूषि, सहाया विषदिग्धमुखाः भुजंगा इव सायकाः, गीतमुत्सादकारि मुग्धमृगाणाम्, कलत्राणि बन्दिगृहीताः परयोषितः, क्रूरात्मभिः शार्दूलैः सह संवासः, पशुरुधिरेण देवतार्चनम्, मांसेन बलिकर्म, चौर्येण जीवनम्, भूषणानि भुजंगमणयः, वनगजमदैरङ्गरागः, यस्मिन्नेव कानने निवसन्ति तदेवोत्खातमूलमशेषतः कुर्वन्ति ।

अभ्यासः

१. समास-परिचयः—

साधुजनविगर्हितम्, शिवास्तम्, भुजंगमणयः, क्रूरकर्मसाधनानि, शून्याटवी, मुग्धमृगाः, परयोषितः, देवतार्चनम् ।

२ प्रश्ना

- (क) शम्भरा. के? ते वनेषु किमिति वसन्ति? तेषां कः प्रधानो व्यापारः?
- (ख) "वनगजमदैरङ्गरागः" इत्यस्य वाक्यांशस्य कोऽर्थः?
- (ग) अपि श्रुतं भवता भुजंगमणीनां विषये किमपि?
- (घ) 'प्रज्ञा वाकुनिज्ञानम्' इत्यस्य कोऽर्थः?

सप्तदशः किरणः

१७ परं नैःश्रेयसं वचः

धृतराष्ट्र उवाच—

श्रोतुमिच्छामि ते धर्म्यं परं नैःश्रेयसं वचः ।
अस्मिन् राजषिवंशे हि त्वमेकः प्राज्ञसंमत ॥१॥

विदुर उवाच—

निषेवते प्रशस्तानि निन्दितानि न सेवते ।
अनास्तिकः श्रद्धवान् एतत् पण्डितलक्षणम् ॥२॥
यस्य संसारिणी प्रज्ञा धर्मार्थविनुवर्तते ।
कामादर्थं वृणीते यः स वै पण्डित उच्यते ॥३॥
नाप्राप्यमभिवाञ्छन्ति नष्टं नेच्छन्ति शोचितम् ।
आपत्सु च न मुह्यन्ति नराः पण्डितबुद्धयः ॥४॥
आर्यकर्मणि रज्यन्ते भूतिकर्माणि कुर्वते ।
हितं च नाम्यसूयन्ति पण्डिता भरतर्षभ ॥५॥
तत्त्वज्ञः सर्वभूतानां योगज्ञः सर्वकर्मणाम् ।
उपायसं मनुष्याणां नरः पण्डित उच्यते ॥६॥
श्रुतं प्रज्ञानुगं यस्य प्रज्ञा चैव श्रुतानुगा ।
असंभित्तार्यमर्यादः पण्डिताख्यां लभेत सः ॥७॥

संस्कृतोदयः

एको धर्मः परं श्रेयः क्षमैका शान्तिरुत्तमा ।
विद्यैका परमा दृष्टिरहिंसैका सुखावहा ॥८॥
मितं भुङ्क्ते संविभज्याश्रितेभ्यो
मितं स्वपित्यमितं कर्म कृत्वा
ददात्यमित्रेष्वपि याचितः सन्
तमात्मवन्तं प्रजहत्यनर्थाः ॥९॥
यथा मधु समादत्ते रक्षन् पुष्पाणि षट्पदः ।
तद्वदर्थान् मनुष्येभ्य आदद्यादविहिसया ॥१०॥
ऋजु पश्यति यः सर्वं चक्षुषानुपिबन्निव ।
आसीनमपि तूष्णीकमनुरज्यन्ति तं प्रजाः ॥११॥
सुव्याहृतानि सुधिषां सुकृतानि ततस्ततः ।
संचिन्वन् धीर आसीत् सिलाहारी शिलं यथा ॥१२॥
वाक्सायका वदन्नाग्निष्पतन्ति
यैराहतः शोचति राज्यहानि ।
परस्य वै ममंसु ते पतन्ति
तान् पण्डितो नावसृजेत् परेषु ॥
बुद्ध्या भयं प्रणुदति तपसा विन्दते महत् ।
गुरुशुश्रूषया ज्ञानं शान्तिं त्यागेन विन्दति ॥१४॥
कामक्रोधग्राहवर्ती पञ्चेन्द्रियजलां नदीम् ।
कृत्वा धृतिमयीं नावं जन्मदुर्गाणि संतर ॥१५॥

अभ्यासः

१. समास-परिचयः—

धर्मार्थौ, भूतिकर्माणि, असंमिश्रार्थमर्थादः ।

२. अर्थ-परिचयः—

श्रद्धानः, संसारिणी, सुखावहा, षट्पदः, संचिन्वन् ।

३. प्रश्नाः—

(क) मनुष्यः त्यागेन शान्तिं कथं विन्दति ?

(ख) 'जन्मदुर्गाणि संतर' इत्यस्य श्लोकखण्डस्य कोऽर्थः ?

कथं ते वशगः पतिः ?

- (ग) वाक्सायकाः परस्य समीपि कथं विध्यन्ति ?
(घ) 'हितं च नाभ्यसूयन्ति' इत्यस्य वाक्यस्य कोऽर्थः ? अत्र गुरुणा संक्षेपेण दुर्योधनस्य कथा श्रावणीया ।
(ङ) 'ऋजु पश्यति यः सर्वं चक्षुषानुपिवन्निव' इमं श्लोकार्थं गान्धिमहात्मनः उदाहरणेन समर्थयत ।

अष्टादशः किरणः

१८ कथं ते वशगः पतिः ?

सत्यभामोवाच—

केन द्रौपदि वृत्तेन भर्तारमुपतिष्ठसि ।
लोकपालोपमं वीरं युवानं शत्रुमर्दनम् ।
कथं च वशगस्तुभ्यं नैव कुप्यति ते शुभे ॥१॥
तव वश्यो हि सततं पाण्डवः प्रियदर्शने ।
मुखप्रेक्षश्च ते नित्यं तत्त्वमेतद् ब्रवीहि मे ॥२॥
व्रतचर्या तपो वापि स्नानमन्त्रौषधानि वा ।
विद्यावीर्यं मूलवीर्यं जपहोमस्तथागदाः ॥३॥
एतदाचक्ष्व पाञ्चालि यशस्यं पतिवेदनम् ।
येन कृष्णे भवेन्नित्यं मम कृष्णो वशानुगः ॥४॥

द्रौपद्युवाच—

असत्स्त्रीणां समाचारं सत्ये मामनुपृच्छसि ।
असदाचरिते मार्गे कथं स्यादनुकीर्तनम् ॥५॥
यदैव भर्ता जानीयान्मन्त्रमूलपरां स्त्रियम् ।
उद्विजेत तदैवास्याः सर्पाद् वेश्मगतादिव ॥६॥

संस्कृतोदयः

उद्विग्नस्य कुतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम् ।
न जातु वशगो भर्ता स्त्रियाः स्यान्मन्त्रकारणात् ॥७॥

वर्तेऽहं तु च यां वृत्तिं पाण्डवे सत्यसंगरे ।
तां सर्वां शृणु मे सत्यां सत्यभामे यशस्विनि ॥८॥

अर्हकारं विहायाहं कामक्रोधौ च सर्वदा ।
सार्जवं पाण्डवं नित्यं प्रयतोपचराम्यहम् ॥९॥

प्रणयं प्रतिसंगृह्य निधायात्मानमात्मनि ।
शुश्रूषुर्निरभिमाना पत्युर्मे चित्तरक्षिणी ॥१०॥

दुर्व्याहृताच्छङ्कमाना दुःस्थितादुरवेक्षितात् ।
दुरासितादुर्व्रजितादिङ्गिताध्यासितादपि ॥११॥

देवो मनुष्यो गन्धर्वो युवा वापि स्वलंकृतः ।
द्रव्यवानभिरूपो वा न भेज्यः पुरुषो मतः ॥१२॥

नाभुक्तव्रति नास्नाते नासंविष्टे च भर्तारि ।
न संविशामि नाश्नामि सदा कर्मकरे ह्यपि ॥१३॥

क्षेत्राद्विनाद्धा ग्रामाद्वा भर्तारिं गृहमागतम् ।
प्रत्युत्थायाभिनन्दामि आसनेनोदकेन च ॥१४॥

प्रमृष्टभाण्डा मृष्टास्त्रा काले भोजनदायिनी ।
संयता गुप्तधान्या च सुसंमृष्टनिवेशना ॥१५॥

अतिरस्कृतसंभाषा दुःस्त्रियो नानुसेवती ।
अनुकूलवती नित्यं भवाम्यनलसा सदा ॥१६॥

अतिहासातिरोषी च क्रोधस्थानं च वर्जये ।
निरताहं सदा सत्ये भर्तुरेवोपसेवने ।
सर्वथा भर्तूरहितं न ममेष्टं कथंचन ॥१७॥

कथं ते वशगः पतिः ?

यच्च भर्ता न पिबति यच्च भर्ता न खादति ।
यच्च नाश्नाति मे भर्ता सर्वं तद्वर्जयाम्यहम् ॥१८॥
यथोपदेशं नियता वर्तमाना वरे पथि ।
स्वलंकृता सुप्रयता भर्तुः प्रियहिते रता ॥१९॥
ये च धर्माः क्रुदुम्बेषु श्वश्रवा मे कथिताः पुरा ।
तान् सर्वाननुवर्तेऽहं दिवारात्रमतन्द्रिता ॥२०॥
पत्याश्रयो हि मे धर्मो मतः स्त्रीणां सनातनः ।
स देवः स गतिर्नान्या तस्य का विप्रियं चरेत् ॥२१॥
अहं पतिं नातिशये नात्यश्ने नातिभूषये ।
नापि परिवदे श्वश्रूं सर्वदा परियन्त्रिता ॥२२॥
अवधानेन सुभगे नित्योत्थानतयैव च ।
भर्ता मे वशगो नित्यं गुरुशुश्रूषणेन च ॥२३॥
प्रथमं प्रतिबुध्यामि चरमं संविशामि च ।
नित्यकालमहं सत्ये एतत्संवदनं मम ॥२४॥
एतज्जानाम्यहं कर्तुं भर्तृसंवदनं महत् ।
असत्स्त्रीणां समाचारं नाहं कुर्यां न कामये ॥२५॥

अभ्यासः

१. संधि-परिचयः—

लोकपालोपमः, जपहोमस्तथागदाः, भवेन्नित्यम्, वेश्मगतादिव, प्रयतोपचराम्यहम्, द्रुव्याहिताच्छङ्क-
माना, नाश्नामि, तद्वर्जयाम्यहम्, नित्योत्थानतयैव ।

२. समास-परिचयः—

स्नानमन्त्रौषधानि, वशानुशः, वेश्मगतः, प्रमृष्टभाण्डा, पत्याश्रयः, गुरुशुश्रूषणम्, भर्तृसंवदनम् ।

३. रूप-परिचयः—

(क) भर्तुः, स्त्री, गति, शुश्रूषा, आत्मन्-शब्दानां प्रथमा, तृतीया, पञ्चमी सप्तमी-विभक्तिषु ।
(ख) अश, आप्, मन्, गम्, श्रु-धातूनां लटि, लिटि, लोटि च ।

संस्कृतोदयः

४. धातूनुद्भावयत—

प्रयता, वर्तते, दुरासितम्, चिकीर्षितम्, गतिः मतिः, प्रमृष्टम्, सोढः, आरूढः।

५. प्रश्नाः—

- (क) मन्त्रमूलपराः स्त्रियो भर्तृन् कथमुद्देजयन्ति ?
- (ख) भर्तुः वशीकरणं किम् ?
- (ग) भर्तृसंवननाय कानि कर्माणि परित्याज्यानि ?
- (घ) अहंकारपरित्यागात् किं जायते ?
- (ङ) पतिपत्न्योः कलहस्य कः परिणामो भवति ?
- (च) यत्र विषये सीतायाश्चरितं निदर्शनत्वेन श्रावयत ।

एकोनविंशः किरणः

१६ भीष्मः स्वधोपायं ज्ञापयति

संजय उवाच—

पूजयन्तो महाराज पाण्डवा भरतर्षभ ।

प्रणम्य शिरसा चैनं भीष्मं शरणमन्वयुः ॥१॥

तानुवाच महाबाहुर्भीष्मः कुरुपितामहः ।

स्वागतं तव वाष्ण्यं स्वागतं ते धनंजय ।

स्वागतं धर्मपुत्राय भीमाय यमयोस्तथा ॥२॥

किं कार्यं वः करोम्यद्य युष्मत्प्रीतिविवर्धनम् ।

सर्वात्मना च कर्तास्मि यद्यपि स्यात् सुदुष्करम् ॥३॥

तथा ब्रुवाणं गाङ्गेयं प्रीतियुक्तं पुनःपुनः ।

उवाच वाक्यं दीनात्मा धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥४॥

कथं जयेम धर्मज्ञ कथं राज्यं लभेमहि ।

प्रजानां संक्षयो न स्यात् कथं तन्मे वद प्रभो ॥५॥

सीष्मः स्ववधोपायं ज्ञापयति

भवानेव वधोपायं ब्रवीतु स्वयमात्मनः ।
भवन्तं समरे राजन् विषहेम कथं वयम् ॥६॥
न हि ते सूक्ष्ममप्यस्ति रन्ध्रं कुरुषितामह ।
मण्डलेनैव धनुषा सदा दृश्योऽसि संयुगे ॥७॥
नाददानं संदधानं विकर्षन्तं धनुर्नृच ।
पश्यामस्त्वां महाबाहो रथे सूर्यमिव स्थितम् ॥८॥
नरास्वरथनागानां हन्तारं परवीरहन् ।
क इहोत्सहते हन्तुं त्वां पुमान् भरतर्षभ ॥९॥
वर्षता शरवर्षाणि महान्ति पुरुषोत्तम ।
क्षयं नीता हि पृतना भवता महती मम ॥१०॥
यथा युधि जयेम त्वां यथा राज्यं भवेन्मम ।
भवेत् सैन्यस्य वा शान्तिस्तन्मे ब्रूहि पितामह ॥११॥
ततोऽब्रवीच्छान्तनवः पाण्डवान् पाण्डुपूर्वज ।
न कथंचन कौन्तेय मयि जीवति संयुगे ।
युष्मासु दृश्यते वृद्धिः सत्यमेतद् ब्रवीमि वः ॥१२॥
निर्जिते मयि युद्धे तु ध्रुवं जेष्यथ कौरवान् ।
क्षिप्रं मयि प्रहरत यदीच्छथ रणे जयम् ।
अनुजानामि वः पार्थाः प्रहरध्वं यथाबलम् ॥१३॥
एवं हि मुकृतं मन्ये भवता विदितो ह्यहम् ।
हते मयि हतं सर्वं तस्मादेवं विधीयताम् ॥१४॥

युधिष्ठिर उवाच—

ब्रूहि तस्मादुपायं नो यथा युद्धे जयेमहि ।
भवन्तं समरे क्रुद्धं दण्डपाणिमिवान्तकम् ॥१५॥
शक्यो वज्रधरो जेतुं वरुणोऽयं यमस्तथा ।
न भवान् समरे शक्यः सेन्द्रैरपि सुरासुरैः ॥१६॥

संस्कृतोदयः

भीष्म उवाच—

सत्यमेतन्महाबाहो यथा वदसि पाण्डव ।

नाहं शक्यो रणे जेतुं सेन्द्रैरपि सुरासुरैः ॥१७॥

आत्तशस्त्रो रणे यत्तो गृहीतवरकार्मुकः ।

न्यस्तशस्त्रं तु मां राजन् हन्युर्युधि महारथाः ॥१८॥

निक्षिप्तशस्त्रे पतिते विमुक्तकवचध्वजे ।

द्रवमाणे च भीते च तवास्मीति च वादिनि ॥१९॥

स्त्रियां स्त्रीनामधेये च विकले चैकपुत्रके ।

अप्रहृष्टे च दुष्प्रेक्ष्ये न युद्धं रोचते मम ॥२०॥

इमं च शृणु मे पार्थ संकल्पं पूर्वचिन्तितम् ।

शिखण्डिनं च दृष्ट्वाहं न युध्येयं कथंचन ॥२१॥

य एष द्रौपदो राजस्तव सैन्ये महारथः ।

शिखण्डी समराकाङ्क्षी शूरश्च समितिजयः २२॥

अर्जुनः समरे शूरः पुरस्कृत्य शिखण्डिनम् ।

मामेव विशिखैस्तूर्णमभिद्रवतु दंशितः ॥२३॥

तदन्तरं समासाद्य पाण्डवो मां धनंजयः ।

शरैर्घातयतु क्षिप्रं समन्ताद् भरतर्षभ ॥२४॥

न तं पश्यामि लोकेषु यो मां हन्यात् समुद्यतम् ।

ऋते कृष्णान्महाभागात् पाण्डवाद् वा धनंजयात् ॥२५॥

एष तस्मात् पुरोधाय कंचिदन्यं ममाग्रतः ।

मा पातयतु बीभत्सुरेवं ते विजयो भवेत् ॥२६॥

एतत् कुरुष्व कौन्तेय यथोक्तं वचनं मम ।

ततो जेष्यसि संग्रामे धार्तराष्ट्रान् समागतान् ॥२७॥

अभ्यासः

१. धातुतुङ्गावयवतः—

अन्वयः, उवाच, ब्रुवाणः, भवेत्, हव्युः, प्रहरत, निर्जितः, द्रवमाणः, शृणु, दृष्ट्वा, पातयतु, समागतः ।

२. अर्थ-परिचयः—

संग्रामः, तूर्णम्, कार्मुकम्, विमुक्तकवचध्वजः, अन्तकः, दण्डपाणिः, दुष्प्रेक्ष्यः, दंशितः, समितिंजयः ।

३. रूप-परिचयः—

(क) जि, गम्, द्रु, युष्, हन्, ह-धातूनां लटि ।

(ख) दण्डपाणि, शिखण्डिन्, युष्मद्, अस्मद्, परवीरहन्-शब्दानां प्रथमा-तृतीया-पञ्चमी-विभक्तिषु ।

४. प्रश्नाः—

(क) भीष्मेण स्ववचोपायः कस्मै प्रयोजनाय ज्ञापितः ? भीष्मो युद्धे अजेयः आसीत् । किं मूलमासीदत्र ?

(ख) निक्षिप्तशस्त्रे पतिते विमुक्तकवचध्वजे ।
द्रवमाणे च भीते च तवास्मीति च वादिनि ॥

एतेषु भीष्माय ब्रुद्धं किमिति न रोचते स्म ?

(ग) भीष्मो ब्रह्मचर्यवलस्य निदर्शनम् । भीष्मेण विवाहः किमिति न कृतः ? भीष्मस्य गाङ्गेय इति नाम कथम् ? अत्र गुरुणा भीष्मस्य कथा संक्षेपेण श्रावणीया ।

(घ) क आसीदजुनः ? के के हतास्तेन भारतीये युद्धे ?

(ङ) क आसीदत्र भवान् युधिष्ठिरः ? युधिष्ठिर-दुर्योधनयोर्वैरस्य किं कारणमासीत् ?

विशः किरणः

२० सुभाषितानि

एक एव सुहृद् धर्मो निधनेऽप्यनुयाति यः ।

शरीरेण समं नाशं सर्वमन्यत्तु गच्छति ॥१॥

अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम् ।

उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम् ॥२॥

संस्कृतोदयः

न कश्चित् कस्यचिन्मित्रं न कश्चित् कस्यचिद् रिपुः ।
व्यवहारेण जायन्ते मित्राणि रिपवस्तथा ॥३॥

साधोः प्रकोपितस्यापि मनो नाघाति विक्रियाम् ।
न हि तापयितुं शक्यं सागराम्भस्तृणोल्कया ॥४॥

नारिकेलसमाकारा दृश्यन्ते हि सुहृज्जनाः ।
अन्ये बदरिकाकारा बहिरेव मनोहराः ॥५॥

मनस्यन्यद् वचस्यन्यत् कर्मण्यन्यद् दुरात्मनाम् ।
मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम् ॥६॥

कुसुमस्तवकस्येव द्वे वृत्ती तु मनस्विनः ।
सर्वेषां भूर्ध्नि वा तिष्ठेद् विशीर्येत वनेऽथवा ॥७॥

त्यजेदेकं कुलस्यार्थे ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत् ।
ग्रामं जनपदस्यार्थे आत्मार्ये पृथिवीं त्यजेत् ॥८॥

अपूर्वः कोऽपि कोशोऽयं विद्यते तव भारति ।
व्ययतो वृद्धिमायाति क्षयमायाति संचयात् ॥९॥

उत्तमं स्वार्जितं वित्तं मध्यमं पितुरर्जितम् ।
कनिष्ठं भ्रातृवित्तं च स्त्रीवित्तमधमाधमम् ॥१०॥

उदयति यदि भानुः पश्चिमे दिग्विभागे
प्रचलति यदि मेरुः शीततां याति बह्निः ।
विकसति यदि पद्मं पर्वताग्रे शिलायां
न भवति पुनरुक्तं भाषितं सज्जनानाम् ॥११॥

उद्योगितं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मी-
दैवेन देयमिति कापुरुषा वदन्ति ।
दैवं निहत्य कुरु पौरुषमात्मशक्त्या
यत्ने कृते यदि न सिध्यति कोऽत्र दोषः ॥१२॥

सुभाषितानि

काव्यशास्त्रविनोदेन कालो गच्छति धीमताम् ।
व्यसनेन तु मूर्खाणां निद्रया कलहेन वा ॥१३॥
कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि ॥१४॥
को वीरस्य मनस्विनः स्वविषयः को वा विदेशस्तथा
यं देशं श्रयते तमेव कुरुते बाहुप्रतापार्जितम् ॥
यद् दंष्ट्रानखलाङ्गुलप्रहरणः सिंहो वनं गाहते
तस्मिन्नेव हतद्विपेन्द्रसधिरैस्तृष्णां छिनत्त्यात्मनः ॥१५॥
ज्वलितं न हिरण्यरेतसं चयमास्कन्दति भस्मनां जनः ।
अभिभूतिभयादसूततः सुखमुज्ज्वलति न धाम मानिनः ॥१६॥
निरुत्साहं निरानन्दं निर्वीर्यमरिनन्दनम् ।
मा स्म सीमन्तिनी काचिज्जनयेत्पुत्रमीदृशम् ॥१७॥
न तेन वृद्धो भवति येनास्य पलितं शिरः ।
यो वै युवाप्यघ्नीयानस्तं देवाः स्थविरं विदुः ॥१८॥
मनस्वी म्रियते कामं कार्पण्यं न तु गच्छति ।
अपि निर्वाणमायाति नानलो याति शीतताम् ॥१९॥
व्याघ्रोऽपि तिष्ठति जरा परितर्जयन्ती
रोगाश्च शत्रव इव प्रहरन्ति देहम् ।
ग्रायुः परित्तवति भिन्नघटादिवाभ्यो
लोकस्तथाप्यहितमाचरतीति चित्रम् ॥२०॥

अभ्यासः

१. समास-परिचयः—

पुरुषसिंहः, काव्यशास्त्रविनोदः, दंष्ट्रानखलाङ्गुलप्रहरणः, नारिकेलसमाकारः, सागराग्निः ।

२. रूप-परिचयः—

(क) रिपु, सुहृत्, आत्मन्, मनस्विन्, दंष्ट्रा, युवन्-शब्दानां द्वितीया-पञ्चमी-सप्तमी-विभक्तिषु ।

(ख) त्यज्, इ, दा, भी, विद्, रुध्-धातूनां लटि, लिटि, लोटि च ।

संस्कृतोदय

३. प्रश्नाः—

- (क) सुहृज्जनाः कीदृशाः ? दुर्जनाश्च कीदृशाः ?
 - (ख) “मनस्वी पुरुषः सर्वेषां मूर्ध्नि तिष्ठति” इतीमामुक्तिमुदाहरणैः साधयत ।
 - (ग) त्यजेदेकं कुलस्यार्थं ग्रामस्यार्थं कुलं त्यजेत् ।
ग्रामं जनपदस्यार्थं आत्मां पृथिवीं त्यजेत् ॥
इत्यस्य श्लोकस्य कोऽर्थः ?
 - (घ) वीरपुरुषस्य जीवनं कीदृशं भवति ? राणाप्रतापस्योदाहरणं पुरस्कृत्योत्तरं दीयताम् ।
-

तृतीयः उन्मेषः

प्रथमः किरणः

१ दुर्गाण्यतितरन्ति ते

युधिष्ठिर उवाच—

क्लिश्यमानेषु भूतेषु तैस्तैर्भवैस्ततस्ततः ।
दुर्गाण्यतितरेद्येन तन्मे ब्रूहि पितामह ॥१॥

भीष्म उवाच—

आश्रमेषु यथोक्तेषु यथोक्तं ये द्विजातयः ।
वर्तन्ते संयतात्मानो दुर्गाण्यतितरन्ति ते ॥२॥
ये दम्भात् जयन्त्यन्यान् येषां वृत्तिश्च संवृता ।
विषयांश्च निगृह्णन्ति दुर्गाण्यतितरन्ति ते ॥३॥
वासयन्त्यतिथीन् नित्यं नित्यं ये चानसूयकाः ।
नित्यं स्वाध्यायशीलाश्च दुर्गाण्यतितरन्ति ते ॥४॥
मातापित्रोश्च ये वृत्तिं वर्तन्ते धर्मकोविदाः ।
वर्जयन्ति दिवासुप्तं दुर्गाण्यतितरन्ति ते ॥५॥
स्वेन वित्तेन जीवन्ति न्यायप्राप्तेन योगतः ।
अग्निहोत्रपराः सन्तो दुर्गाण्यतितरन्ति ते ॥६॥
आहवेषु च ये शूरास्त्यक्त्वा मरणजं भयम् ।
धर्मेण जयमिच्छन्तो दुर्गाण्यतितरन्ति ते ॥७॥
ये वदन्तीह सत्यानि प्राणत्यागेऽप्युपस्थिते ।
प्रमाणभूता भूतानां दुर्गाण्यतितरन्ति ते ॥८॥
ये पापानि न कुर्वन्ति कर्मणा मनसा गिरा ।
तपोनित्याः सुतपसो दुर्गाण्यतितरन्ति ते ॥९॥

य च संशान्तरजसः संशान्ततमसश्च ये ।
 सत्ये स्थिता महात्मानो दुर्गाण्यतितरन्ति ते ॥१०॥
 येषां न कश्चित् त्रसति ये त्रसन्ति न कस्यचित् ।
 येषामात्मसमो लोको दुर्गाण्यतितरन्ति ते ॥११॥
 परश्रिया न तप्यन्ते ये सन्तः पुरुषर्षभाः ।
 ग्राम्यादस्त्रास्त्रिवृत्ताश्च दुर्गाण्यतितरन्ति ते ॥१२॥
 सर्वान् देवान्नमस्यन्ति सर्वान् धर्माश्च शृण्वते ।
 ये श्रद्धावान् दान्ताश्च दुर्गाण्यतितरन्ति ते ॥१३॥
 यात्रार्थं भोजनं येषां यात्रार्थं धनसंचयः ।
 वाक् सत्यवचनार्थाय दुर्गाण्यतितरन्ति ते ॥१४॥
 ईश्वरं सर्वभूतानां जगतः प्रभवाप्ययम् ।
 भजन्ति मनसा ये च दुर्गाण्यतितरन्ति ते ॥१५॥

अभ्यासः

१. समास-परिचयः—

स्वाध्यायशीलः, परश्रिया, मातापित्रोः, संयतात्मानः ।

२. प्रश्नाः—

- (क) ये अत्यान् दम्भात् न जयन्ति ते कथं दुर्गाणि अतितरन्ति ?
- (ख) अग्निहोत्रपराः कथं दुर्गाणि अतितरन्ति ?
- (ग) दिवास्वापस्य के दोषाः ?
- (घ) “ये च संशान्तरजसः संशान्ततमसश्च ये” कोऽर्थोऽस्य श्लोकार्धस्य ?
- (ङ) “येषां न कश्चित् त्रसति ये त्रसन्ति न कस्यचित्” ईदृशः पुरुषः कथं दुर्गमसितरेत् ?
 यतः अयं तु एकान्तेन प्रभावहीनः ।
- (च) भृत्येषु कोपस्य किं फलम् ?
- (छ) “सर्वान् देवान् नमस्यन्ति सर्वान् धर्माश्च शृण्वते !” इत्यस्य श्लोकार्धस्य क आशयः ?
३. (क) “सत्ये स्थिता महात्मानो दुर्गाण्यतितरन्ति ते” अस्मिन् विषये हरिश्चन्द्रस्य युधिष्ठिरस्य वा वृत्तं श्रावयत ।
- (ख) “यात्रार्थं भोजनं येषां यात्रार्थं धनसंचयः” इत्यस्य श्लोकार्धस्य क आशयः ?
 अत्र विषये शृणुदेयानन्दस्य चरितं श्रावयत ।

द्वितीयः किरणः

२ उच्छ्वृत्तिद्विजः

अस्ति पुरा ब्रह्मसदने कुरुक्षेत्रे उच्छ्वृत्तिर्नाम द्विजः । स भार्यापुत्रस्तुषोपेत एकाय-
नगतोऽतिमानुषं तपस्तेपे । न तेन स्वजीविते द्रव्यं संचितं नापि तेनान्नस्यैव राशिराचितः ।
तपोधनः स तु शिलोच्छ्वृत्तिमास्थाय जीवनयात्रां निर्वहति स्म । परमुच्छ्वृत्त्यानिश्चितत्वा-
च्छिलोपजीवी स प्रायेण षष्ठ एव काले भोज्यमलभत । कदाचित्तु बहून् दिवसान् निराहार
एवात्यवाहयत् ।

अथ कदाचित् वर्षपूगान् देवो न ववर्ष । तस्मिन्ननावृष्टिकृते भीषणे दुर्भिक्षे एकदा
तेनोच्छ्वे स्वल्पका यवा विचिताः । तान् दलित्वा स सक्तूनकरोत् । परं यावद् यथाविधि
वर्हि हुत्वा सक्तून् भागशः संविभज्य ते भोक्तुमुपचक्रमिरे तावदेकः समुन्नतविरलास्थिपञ्जरो
धमनिसंततगात्रोऽतिथिरदृश्यत । उच्छ्वृत्तिस्तस्मै स्वागतं व्याहृत्य, अर्घ्यं पाद्यमासनं च
निवेद्य तस्यान्तिके अव्यवधानायां भूमावुपविश्य तस्मै बलिमन्त्रोपबृंहितान् सक्तून् न्यवेदयत् ।
अभ्यागतस्तु भृशं क्षुधित उच्छ्वृत्तेः श्रद्धापूतान् सक्तून् भुक्त्वापि नैव तुष्टिं जगाम । तं तथा
क्षुत्परिक्लान्तमवलोक्य तपोधनश्चिन्तातुरो बभूव ।

भर्तारमवसन्नमालोक्य भार्यावदत्—“नाथ, इतः सन्ति मम प्रत्यग्राः सक्तवः ।
निवेद्यन्तामभ्यागताय ।” परमुच्छ्वृत्तिस्तां, धर्महृदयादिव विनिर्गतां, क्षुत्परीतामालोक्य नैवादधे
मनस्तस्याः सक्तुषु, प्रोवाच च “कारुण्यजीविते, नैतदुपपन्नम् । भार्या हि गृहदीप्तयः साधुवृत्तैः
प्राणव्ययेनापि परिरक्षणीयाः । त्वं तु पुनः परिक्षामेक्षणा प्राणसंशयमापन्नासि । भद्रे, दयिताः
प्राणिनां दाराः । त्वं पुनर्मै उच्छ्वसितम् । नैवादद्यां तव सक्तून् ।” ततः सा साश्रुवर्षं
प्रार्थयामास—

पालनाद्धि पतिस्त्वं मे भर्तासि भरणान्मम ।

पुत्रप्रदानाद् वरदस्तस्मात् सक्तून् गृहाण मे ॥

एवमुक्तः स मुनिः “अव्यतिरिक्तास्यस्मच्छरीरात् । उपपन्नस्त्वय्ययमुदारो दयाभावः” इति
वदन् तस्याः सक्तूनुपोषितायातिथये प्रादात् । परं तान् भुक्त्वाप्ययं तुष्टिं नैवोपलेभे । अतिथि
क्षुधया स्वेष्टवङ्गेषु निलीयमानमिव दृष्ट्वोच्छ्वृत्तिः परितापमापेदे ।

पितरं कश्मलाविष्टमालक्ष्य पुत्रः स्वसक्तून् तस्य पुरो दधे । परमुच्छ्वृत्तिस्तान्
न प्रत्यभ्यनन्दत्, उवाच च—“पुत्रक, बहून् दिवसानुपोषितेन त्वयेमे सक्तव आसादिताः ।

मन्ये बालानां बलवती क्षुधा । अहं पुनः कालपक्वः उपवासे चाम्यस्तः । तन्नैवोत्सहे तव सक्तून् प्रतिग्रहीतुम् ।” पुत्रः प्रत्युवाच—

अपत्यमस्मि ते पुत्रस्त्राणात् पुत्रो हि विश्रुतः ।

आत्मा पुत्रः स्मृतस्तस्मात् आह्यात्मानमात्मना ॥

तस्यैतेन श्रुतिसुभगेन वचसा प्रीतहृदय उच्छ्वृत्तिस्तस्यापि सक्तून् बुभुक्षितायार्पयत् । परं स तान् स्वीकृत्यापि नैव स्म तुष्टिं वेदयति । अतिथिमत्पुत्रमवलोक्योच्छ्वृत्तिर्मूर्तेर्नैवाधिष्ठितो विषादेन किं कुर्यां किं वा न कुर्यामिति नाज्ञासीत् ।

गुरुं तथायस्यमानहृदयमालक्ष्य स्नुषा प्राह—“गुरुदेव, इतः सन्ति मे मृदुविशदाः सक्तवः । प्रणीयन्तामिमे तपोधनाय ।” उच्छ्वृत्तिस्तु तस्या इदं शीलसंभृतं वचो निशम्योपोषिताभ्या लोचनाभ्यां पिबन्निव तां, देहवतीमिव मुनिजनध्यानसंपदं, स्नुषामुवाच—“पुत्रि, क्षुधाविधुरासि, पुनरापन्नसत्त्वा च । न हि ते जीवितं संशयितमुत्सहे द्रष्टुम् ।” गुरुणेत्यं छन्दमाना स्नुषोवाच—

गुरोर्मम गुरुस्त्वं वै यतो दैवतदैवतम् ।

देवातिदेवस्तस्मात् त्वं सक्तूनादत्स्व मे त्रिभो ॥

एतदाकर्ण्य स मुनिः “भृशमन्तरमन्विष्यन्नपि नार्हं क्वचिदपि तव मिथ्यावृत्तिमलक्षयम् । तत् संपद्यतां ते छन्दः” इत्युक्त्वा तस्याः सक्तून्पि अतिथिदेवाय प्रादात् । तानशित्वा द्विजः संतोषभाषेदे उवाच च—

शुद्धेन तव दानेन न्यायोपात्तेन यत्नतः ।

यथाशक्ति विमुक्तेन प्रीतोऽस्मि द्विजसत्तम ॥

एवमुक्त्वा स उच्छ्वृत्तये स्वकीयं धर्मरूपं प्रदर्श्य तस्यानुपमां दानशीलतां तुलातीतां तपोवृत्तिं च भूयो भूयः स्तुवन् तं भार्यापुत्रस्नुषासहितं सशरीरं स्वर्गं प्रापयामास ।

अभ्यासः

१. समास-परिचयः—

एकायनगतः, समुन्नतविरलास्थिपञ्जरः, क्षुधाविधुरा, भार्यापुत्रस्नुषासहितः ।

२. रूप-परिचयः—

(क) पद्, विद्, भू, वच्, धा-धातूनां लटि ।

(ख) सक्तु, तपस्, दारा, अङ्ग, दिवस-शब्दानां द्वितीया, पञ्चमी, सप्तमीविभक्तिषु ।

भेद-विवेकः—

अवसन्नः—प्रसन्नः । व्ययः—आयः । आचितः—उपचितः ।

उपवृंहितम्—उपनिहितम् । अधिष्ठितः—अधिष्ठाता । दूनः—दीनः ।

प्रश्नाः—

(क) उच्छ्वृत्तिः किमिति शिलान् विवित्य जीवनयात्रां निर्वहति स्म ?

(ख) अम्यागतः त्रयाणां सक्तूनशित्वापि तुष्टिं कथं न लेभे ?

(ग) मूर्तेर्नैवाधिष्ठितो विषादेन, दयिताः प्राणिनां दाराः, इत्येतयोर्वक्तृखण्डयोः कोऽर्थः ?

(घ) 'भार्या हि गृहदीप्तयः' 'गृहरत्नानि बालकाः' इत्येते उक्ती आश्रित्य कथाद्वयं कथयत ।

(ङ) गुरोर्मम गुरुस्त्वं वै यतो दैवतदैवतम् ।

देवातिदेवस्तस्मात् त्वं सक्तूनादस्त्व मे विभो ॥

इत्यस्य पद्यस्य क आशयः ?

(च) अतिथिसेवायाः किं फलम् ? अत्र विषये रामशबरीसंवादं आदयत ।

(छ) पाठेऽस्मिन् तपस आतिथ्यस्य च गरिमा दिवृतः । तपसो माहात्म्यस्य विषये दधीचेरुदाहरणं आदयत ।

तृतीयः किरणः

३ भारते प्रजातन्त्रपद्धतिः

शासनस्य प्रजातन्त्रपद्धतिर्वेदेषु संकेतिता अवरग्रन्थेषु च बहुशश्चर्चिता । कामं प्राचीन-
काले राजतन्त्रपद्धतिरेव प्रायेण प्रचलितासीत् तथापि संस्कृतसाहित्ये पालिसाहित्ये च राज्ञां
निर्वाचनस्याप्युल्लेखो नातिविरलः ।

यथेदानीं केन्द्रस्थशासने, 'लोकसभा', 'राज्यसभा'चेति द्वे समिती प्रवर्तन्ते, यथा वा
राज्येषु 'विधानसभाः', 'विधानपरिषदश्च' प्रवर्तन्ते, तथैव प्राचीनभारते 'सभा', 'समिति'श्चेति
द्वे परिषदौ राज्यव्यवस्थां प्रवर्तयतः स्म । शासनस्य प्रजातन्त्रपद्धतिरेवास्माकं पूर्वजैर्मन्यो
रुचिकर्यासीदिति तु सभाया विशेषणं 'नरिष्ठा' इति शब्देनैव व्यज्यते । यतो हि अस्य
शब्दस्यायमर्थः—'न रिष्यते' इति, अर्थात् सभा-समितिप्रकल्पितं राज्यतन्त्रं न क्षयोन्मुखमपि तु
सर्वजनसौख्यकरं समस्तदेशस्य च समुदधावहम् ।

आसीत् पुराय दशोज्जेकषु लघुराज्येषु प्रविमक्त यषु बहूनि राज्यानि लोकतन्त्र
माश्रित्य ७ स्म अद्यतन्या कार्यं समा' इति
नाम्नाख्यातया, विधानपरिषदश्च कार्यं 'समिति'नाम्ना प्रसिद्धया परिषदा विधीयते स्म ।

प्रवर्तितायामप्येवंविधायां सभासमितिर्व्यवस्थायां देशे बहुशस्तु राजतन्त्रमेव प्रचलित-
मासीत् । परमस्मिन्नपि तन्त्रे राजानो निरङ्कुशा नैवासन्नपि तु ते तपःश्रुतान्वितानां विपश्चिता-
मनुमत्यैव शासनतन्त्रं वितन्वन्ति स्म । अत्र तु मिथिलाधिपो विदेहो जनकोऽप्योद्धाधिपति-
र्दशरथश्च निदर्शनम् ।

वैदिकयुगस्य गणराज्यानि जनराज्यानि वा अवरकाले जनपदसंज्ञामवापुः । अनेकान्
जनपदान् संहृत्य महाजनपदाः प्रकल्प्यन्ते स्म । मौर्यसाम्राज्यात् प्राक् समस्तो देशः षोडशसु
महाजनपदेषु प्रविभक्त आसीत् । एतान् जनपदान् विजित्य भागधा नृपतयः पृथुलमपोढविघ्न
साम्राज्यं स्थापयामासुः । ततश्च मौर्यगुप्तादिसाम्राज्यानि सहस्रवर्षपर्यन्तमविच्छेदेन प्रावर्तन्त ।
तदनन्तरं मिथः कलहेन काल्यमानानामुत्सन्नसत्त्वानां राज्ञां विप्लुते शासनतन्त्रे देशोऽयं परवश
गतः । सहस्रवर्षाधिकपारतन्त्र्यवेदनापरिदूनश्च व्यवसायपुरोजवस्य गान्धर्मेहात्मन उदग्रेण
तपसा, अतुलेनाध्यवसायेन, अनुपमेन सत्याचरणेन, असीमेन दाक्षिण्येन, दुर्दमेन निर्भयत्वेन
सप्तचत्वारिंशदधिकोऽविंशतिशततमस्य ख्रिस्ताब्दस्य अगस्तमासीयायां पञ्चदशतारिकाया
(१५-७-१६४७) स्वातन्त्र्यं प्रत्यपद्यत, पञ्चाशदधिकोऽविंशतिशततमस्य ख्रिस्ताब्दस्य जनवरी-
मासस्य षड्विंशतारिकायां प्रवर्तितेन नवसंविधानेन च शासनस्य लोकतन्त्रपद्धतिमलभत ।

अभिनवमिदं संविधानमस्मभ्यं संपूर्णप्रभुत्वसंपन्नं लोकतन्त्रात्मकं गणराज्यमुपानयत् ।
इदं प्रभुत्वं च संविधानेन देशस्य जनेषु प्रतिष्ठापितम् । एतदनुसारं सर्वेऽपि संप्रदायाः धर्माश्च
एकान्तेन समानाः, अतीत्य च प्रवर्तन्ते ते शासनतन्त्रस्य प्रतिरोधम् । अद्यतने भारते सर्वेऽपि
जनः स्वाभिमतं धर्ममनुगन्तुं स्वतन्त्रः ।

संविधानानुसारं देशस्य जनता निर्वाचनपद्धत्या यान् जनान् प्रतिनिधित्वेन वृणोति त
एव संहृत्य देशस्य शासनाय विधानान्युपकल्पयन्ति । जनतायाः केन्द्रस्थाः प्रतिनिधयो द्विधा
विभज्यन्ते । तेषामेको विभागः लोकसभेत्याख्यायते, अपरश्च राज्यसभेति । लोकसभाया
प्रमुखोऽध्यक्ष इति कथ्यते, राज्यसभायाश्च सभापतिः इति । एतयोर्द्वयोः सभयोर्लोकसभैव
गुरुतरा । एतयोर्द्वयोरेव देशस्य शासनतन्त्रं संविधानं चाधिष्ठितम् । केन्द्रस्थावेतौ विभागौ,
नानाराज्यानां विधानसभाः, विधानपरिषदश्च राष्ट्रपतिं वृण्वन्ति । राष्ट्रपतिश्च केन्द्रस्थयोर्द्वयो
समित्योर्बहुसंख्यस्य दलस्य नेतारं प्रधानमन्त्रिपदायाभिमन्त्रयते । प्रधानमन्त्री च शासन-

भारते प्रजातन्त्रपद्धतिः

व्यवस्थां सम्यक् प्रवर्तयितुं शासनस्य विविधान् विभागान् स्वाभिमतेषु पारिषदेषु प्रविभज्य केन्द्राधिष्ठितां देशस्य शासनव्यवस्थामादिशति ।

शासनसौकर्याय विविधानां प्रदेशानां समुदयाय च देशोऽयमनेकेषु प्रदेशेषु प्रविभक्तः । एते च प्रदेशा राज्यानि इत्युच्यन्ते । प्रदेशानां शासनं प्रादेशिक्योः 'विधानसभा', 'विधानपरिषद्' इति नाम्न्योः समित्योरधिष्ठितम् । मन्त्रिनिर्वाचनप्रकारस्तु केन्द्रानुग एव । भेदस्त्वयम्—केन्द्रसभयोः पारितानि विधानानि समस्तोऽपि देशे प्रवर्तन्ते, विधानसभाविधानपरिषदो पारितानि विधानानि तु राज्य एव प्रवर्तन्ते ।

राज्यशासनाध्यक्षो 'राज्यपाल' इत्याख्यायते । यथा केन्द्रे राष्ट्रपतिः प्रधानमन्त्रित्वाय दलनेतारं निमन्त्रयत्येवं राज्ये राज्यपालो मुख्यमन्त्रित्वाय पक्षनेतारमाह्वयति । मुख्यमन्त्री तु स्वाभिमतान् पारिषदान् मन्त्रित्वेन वृणीते ।

जनप्रतिनिधीनां वरणं प्रतिपञ्चवर्षं भवति तदैव च केन्द्रस्य मन्त्रिमण्डलं राज्यानां मन्त्रिमण्डलानि च प्रकल्प्यन्ते । किं तु यदि पञ्चवर्षावधितः पूर्वमेव बहुसंख्याकाः पारिषद्याः वर्तमाने मन्त्रिमण्डले अविश्वासं प्रवेदयन्ति तर्हि राष्ट्रपतिः राज्यपालो वा प्रवर्तमानं मन्त्रिमण्डलं प्रत्यादिश्याभिनवस्य मन्त्रिमण्डलस्य संघटनाय पक्षान्तरस्य नेतारमाह्वयति यस्य प्रतिनिधि-समित्योर्मतबाहुल्यं भवति ।

एवं प्रवर्तमाना प्रजातन्त्रपद्धतिः लोकसंग्रहाय भवति । नहीयं व्यवस्था जनविशेषाणां हिताय, वर्गविशेषाणां सौख्याय, धर्मविशेषस्य वा समर्थनाय प्रयत्नते, अपितु सर्वेषामेव लोकानां समुदयाय, सर्वेषामपि वर्गाणामभ्युदयाय, सर्वेषामपि धर्माणां सामनस्याय च कल्पते ।

अभ्यासः

प्रश्नाः—

१. प्रजातन्त्रराजतन्त्रपद्धत्योः को भेदः ?
२. अस्माकं पूर्वजन्म्यः प्रजातन्त्रपद्धतिः रुचिकर्यासीदित्यत्र किं प्रमाणम् ?
३. पुरा अस्मिन् देशे प्रजातन्त्रपद्धतिरपि प्रचलितासीदित्यत्र किं प्रमाणम् ?
४. लोकसभा-राज्यसभयोः को भेदः ? विधानसभाविधानपरिषदोश्च को विशेषः ?
५. राज्यपालस्य राज्ये किं स्थानम् ?
६. प्रजातन्त्रपद्धतेः के गुणाः ?
७. राजतन्त्रपद्धतिरपि निरङ्कुशा नासीदित्यत्र किं प्रमाणम् ?
८. के प्रदेशाः अस्य देशस्य ?

४ देवशुनी सरमा

पुरा पणयो नाम केचिदसुरा देवानां गावचारयन्ति स्म । अथैकदा लोभोपहतचेतसस्ते वनान्ताभिर्वर्तमाना धेनूरर्धपथ एव बन्दिग्राहं गृहीत्वा रसानास्या तद्धाः पारे गिरिकन्दराया न्यरुधन् ।

एतेन क्षोभमापन्ना देवाः सुपर्णमूचुः—“वत्स सुपर्ण, पापाशयैः पणिभिरस्माक गावोऽपहृताः । तद् गच्छ सत्वरम्, ता अन्विष्य प्रत्याहर ।”

पवनजवः सुपर्णो निमेषमात्रेणैव तत् पदमवाप यत्र पणिभिर्देवानां पयस्विन्यो निगूहिता आसन् । तस्मै स्वागतं व्याहृत्य पणयोऽब्रुवन्—“भद्र सुपर्ण, स्वस्ति भवते । दूरादायातः श्रीमान् । पिवत्वेतत् पयः, अदनात्वेतन्नवनीतम्, स्वीकरोत्वेतद् दधि” इति । सुपर्णोऽपि लोभा-विष्टस्तत् सर्वं स्वीचकार । अथ पणयोऽब्रुवन्—“उपच्छन्दितः खलु श्रीमानस्माभिरुचितेना-तिथ्येन । दक्षितश्च भवतास्माकमुपहारे प्रणयः । भ्रातः, न निवेदनीयोऽयं वृत्तान्तः शक्राय” इति । “एवमस्तु” इति सुपर्णस्तेभ्यः प्रतिशुश्राव ।

प्रत्यागतं सुपर्णं देवाः अपृच्छन्—“अपि दृष्टा नो गावः ?” सुपर्णः प्रत्यभाषत—“सर्वत्रान्विष्टाः परं दृष्टिपथं नोपगताः ।” प्रणिधानेन सर्वं ज्ञात्वा कुपितः शक्रस्तस्य ग्रीवाम-पीडयदशपच्च तम्—“धिक् पामर, अमङ्गलं ते जीवितं भवतु ।”

ततो देवाः सरमामादिदिशुः—“जाते, विश्वासभाजनमस्यस्माकम् । नैवास्त्यपरस्ये-दृशी देशकालज्ञता । को वापरोऽस्मास्वेवं निर्व्याजभक्तिः । तत् प्रयतस्वापहतानां धेनू-नामन्वेषणे । नैवाकृतार्था प्रत्यागमिष्यसीत्यस्त्यस्माकं दूढो विश्वासः ।” एवमादिष्टा सरमा नचिरादेव रसामापेदे, तामुत्तीर्य च पणीनां दुर्गं प्रविवेश ।

सरमां दृष्ट्वा पणय ऊचुः—“आगम्यतां स्वसः, अपि कुशलं ते ? इदं दुग्धम्, इदं नवनीतम्, इतो दधि । क्रियतामत्र प्रणयः । अत्रावस्थानेन वनमिदं सनाथीक्रियताम् ।”

तेषामुपहारं तिरस्कुर्वती सरमा प्रत्युवाच—“युष्माकमेव भवत्वेतत् प्रलोभनम् । गोकामाहमत्रागतास्मि । तदुपाहरत ताः । नो चेदिन्द्रो युष्मान् हत्वा ता मोचयिष्यति ।”

पणयः प्रत्यबोचन्—सरमे, को नाम महामूर्ख एता धेनूर्युद्धेन विना विसृजेत् ? पश्य, तिग्मान्यस्माकमायुधानि । अस्त्येतादृशो योद्धा जगति य एतानि सहेत ? तन्निवर्तस्व, गास्तु नैव दास्यामः ।”

देवशुनी सरमा

एवमुक्ता सरमा सरोषमवदत्—ध्वंसतां वो भ्रातृत्वं स्वसृत्वं च । गोकामाहम-
त्रायाता । यदि यूयं देवानां गा न विसृजथ, तर्हि देवा युष्मान् हत्वा ता मोचयिष्यन्ति । नूनं
भवेदयं वो निर्बन्धः क्षयोदयः ।”

एवमुक्त्वा सरमा देवान् प्रत्याववृते । तां देवा अपृच्छन्—“सरमे, कच्चिद् दृष्टा-
स्त्वया नो गावः ?” सरमावदत्—“अथ किम् ? देवपादानां पयस्विन्यः पणिभी रसायाः पारे
गिरिकन्दरायां निरुद्धा विषीदन्ति ।” तच्छ्रुत्वेन्द्रस्तामभ्यनन्दत्—“साधु, सरमे, साधु ।
अनुष्ठितस्त्वया गुरुणामादेशः । एतेन तवानित्येन चरितेन नितरां संतुष्यामः । शुभं ते
भूयात् ।”

तस्या एव सरमाया वंशजा इमे सारमेयाः अद्यापि लोकानां विश्वासभाजनं सन्ति ।

अभ्यासः

१. समास-परिचयः—

पवनजवः, लोभोपहतचेतसः, गोकामा, गिरिकन्दरा ।

२. रूप-परिचयः—

(क) आयुध, गो, स्वसृ, पणि, दधि-शब्दानां प्रथमा, तृतीया, षष्ठी, सप्तमी-विभक्तिषु ।

(ख) वच्, ग्रह, ब्रू, प्रच्छ, गम्, तृ-धातूनां लटि लिटि च ।

३. अनूद्यन्तां मातृभाषायाम्—

(क) उपच्छन्दितः खलु श्रीमानस्माभिरुचितेनातिथ्येन ।

(ख) दर्शितश्च भवतास्माकमुपहारे प्रणयः ।

(ग) क्रियतामत्र प्रणयः ।

(घ) वनमिदं सनाथीक्रियताम् ।

(ङ) ध्वंसतां वो भ्रातृत्वं स्वसृत्वं च ।

४. प्रश्नाः—

(क) सरमायामागतायां पणयः किं प्रोचुः ?

(ख) पणिभिर्देवानां गाः किमिति अपहृताः ?

(ग) सारमेय इत्यस्य का व्युत्पत्तिः ?

(घ) भवते सारमेया रोचन्ते न वा ?

५ शकुन्तलायाः प्रस्थानम्

(ततः प्रविशति स्नानोत्तीर्णः कण्वः ।)

कण्वः—(विचिन्त्य)

यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदयं संस्पृष्टमुत्कण्ठया
कण्ठः स्तम्भितब्राह्मणवृत्तिकलुषश्चिन्ताजडं दर्शनम् ।
वैकल्यं मम तावदीदृशमिदं स्नेहादरण्याकसः
पीडयन्ते गृहिणः कथं नु तनयाविस्लेषदुःखैर्नवैः ॥

(इति परिक्रामति)

शकुन्तला—(सञ्जीडम्) तात, वन्दे ।

कण्वः—वत्से, सम्भ्राजं सुतमवाप्नुहि । इतः सद्योहुताग्नीन् प्रदक्षिणीकृ
(सर्वे परिक्रामन्ति ।)

कण्वः—प्रतिष्ठस्वेदानीम् । (सदृष्टिक्षेपम्) क्व ते शार्ङ्गरवमिश्राः ।

शिष्यः—(प्रविश्य) भगवन्, इमे स्मः ।

कण्वः—भगिन्यास्ते मार्गमादेशय ।

शार्ङ्गरवः—इत इतो भवती ।

(सर्वे परिक्रामन्ति ।)

कण्वः—भोः भोः संनिहितास्तपोवनतरवः—

पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या
नादत्ते प्रियमण्डनापि भवतां स्नेहेन या पल्लवम् ।
आद्ये वः कुसुमप्रसूतिसमये यस्या भवत्युत्सवः
सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम् ॥

शकुन्तला—(जनान्तिकम्) प्रियंवदे, नन्दार्यपुत्रदर्शनोत्सुकाया अप्याश्र
दुःखेन मे चरणौ पुरतः प्रवर्तते ।

प्रियंवदा—न केवलं तपोवनविरहकातरा सख्येव । त्वयोपस्थितवियोग
समवस्था । प्रेक्षस्व तावत्

उद्गीर्णदर्भकवला मृग्यः परित्यक्तनर्तना मयूराः ।

अपसृतपाण्डुपत्रा मुञ्चन्त्यश्रूणीव लताः ॥

शकुन्तला—(स्मृत्वा) तात, लताभगिनीं वनज्योत्स्नां तावदामन्त्रयिष्ये ।

कण्वः—अवैमि ते तस्यां सौहार्दम् । इयं तावद् दक्षिणेन ।

शकुन्तला—वनज्योत्स्ने, आम्रसंगतापि मां प्रत्यालिङ्ग इतो गताभिः शाखाबाहुभिः । अद्य प्रभृति द्वारवर्तिनी ते भविष्यामि । (सख्यौ प्रति) एषा द्वयोर्युवयोर्हस्ते निक्षेपः ।

सख्यौ—अयं जनः कस्य हस्ते समर्पितः ? (इति बाष्पं विसृजतः)

कण्वः—अनसूये, प्रियंवदे, अलं रुदितेन, ननु भवतीभ्यामेव शकुन्तला स्थिरीकर्तव्या ।

शकुन्तला—तात, एषा उदजपर्यन्तचारिणी गर्भमन्थरा मृगवधूर्यदा सुखप्रसवा भवति तदा मे कमपि प्रियनिवेदयितारं विसर्जयिष्यसि । मा इदं विस्मरिष्यसि ।

कण्वः—वत्से, नेदं विस्मरिष्यामः ।

शकुन्तला—(गतिभङ्गं रूपयित्वा) को नु खल्वेष निवसने मे सज्जति ? (इति परावर्तते ।)

कण्वः—वत्से—

यस्य त्वया व्रणविरोपणमिडगुदीनां
तैलं न्यषिच्यत मुखे कुशसूचिविद्धे ।
श्यामाकमुष्टिपरिवर्धितको जहाति
सोऽयं न पुत्रकृतकः पदवीं मृगस्ते ॥

शकुन्तला—वत्स, किं सहवासपरित्यागिनीं मामनुसरसि ? अचिरप्रसूतोपरतया जनन्या विन यथा मया वर्धितोऽसि, तथा इदानीमपि मया विरहितं त्वां तातश्चिन्तयिष्यति तन्निवर्तस्व ।

(इति रुदती प्रस्थिता ।)

शार्ङ्गारवः—भगवन्, ओदकान्तात् स्निग्धो जनोऽनुगन्तव्य इति श्रूयते । तदिदं सरस्तीरम् अत्र संदिश्य प्रतिगन्तुमर्हसि ।

कण्वः—वत्से, त्वमिदानीमनुशासनीयासि । सा त्वमितः पतिकुलं प्राप्य—

शुश्रूषस्व गुरुन् कुरु प्रियसखीवृत्तिं सपत्नीजने
भर्तुर्विप्रकृतापि रोषणतया मा स्म प्रतीपं गमः ।
भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भाग्येष्वनुत्सेकिनी
यान्त्येवं गृहिणीपदं युवतयो वामाः कुलस्याघयः ॥

कथं वा गौतमी मन्यते ?

गौतमी—एतावान् बधूजनस्योपदेशः । जाते, एतत् सर्वमवधारय ।

संस्कृतोदयः

कण्वः—वत्से, परिष्वजस्व मां सखीजनं च ।

शकुन्तला—तात, इत एव किं प्रियसख्यौ निवर्तिष्येते ?

कण्वः—वत्से, इमे अपि प्रदेये । न युक्तमनयोस्तत्र गन्तुम् । त्वया सह गौतमी यास्यति ।

शकुन्तला—(पितरमाश्लिष्य) कथमिदानीं तातस्याङ्गात्परिभ्रष्टा मलयतटोन्मूलिता चन्दन-
लतेव देशान्तरे जीवितं धारयिष्ये ?

कण्वः—वत्से, किमेवं कातरासि ? यदिच्छामि ते तदस्तु ।

(शकुन्तला पितुः पादयोः पतति ।)

शकुन्तला—(सख्यामुपेत्य) द्वे अपि मां सममेव परिष्वजेथाम् ।

(सख्यौ तथा कुस्तः ।)

शार्ङ्गरेवः—दूरमधिरूढः सविता । त्वरतामत्रभवती ।

कण्वः—(सनिःश्वासम्) गच्छ, शिवास्ते पन्थानः सन्तु ।

(निष्क्रान्ता शकुन्तला सहयायिनश्च ।)

अभ्यासः

१. संधि-परिचयः—

इत इतो भवती, भवत्युत्सवः, सरस्तीरम्, ओदकान्तम्, यान्त्येवम्, सेयम् ।

२. समास-परिचयः—

स्तम्भितबाष्पवृत्तिकलुषः, अरण्याकसः, उद्गोर्णदभंकवलाः, कुशसूचिविद्धे, चिन्ताजडम्, तनया-
विश्लेषदुःखैः ।

३. अनूद्यन्ताम्—

(क) लताभगिनीं वनज्योत्स्नां तावदामन्त्रयिष्ये ।

(ख) एषा युवयोर्हस्ते निक्षेपः ।

(ग) को नु खल्वेष निवसने मे सज्जते ?

(घ) ओदकान्तं स्निग्धो जनोऽनुगन्तव्यः ।

४. प्रश्नाः—

(क) कालिदासः कविकुलगुरुरासीत् । गुरुणा तस्य विषये किमपि श्रावणीयम् ।

(ख) शकुन्तला द्रुपन्तस्यान्तिके किमिति गच्छति ?

(ग) कण्वेन शकुन्तला कस्मात् कारणात् संवाचिता ?

(घ) अपि दृष्टो भवता कश्चिदाश्रमः ?

(ङ) यदि भवतोऽपि स्वसास्ति, तर्हि दृष्टः किं भवता तस्याः पतिगृहप्रस्थानप्रसङ्गः ?

षष्ठः किरणः

६ पुण्यकर्मा शिविः

अस्ति राजा शिविर्नाम दीनानाथविपन्नशरणः सर्वभूतानुकम्पकः सकलार्थिजनसंपादित-
मनोरथः । तस्यातुलया तपोमेघान्वितया दानशीलतया यशस्त्रिदिवमासुरोह । अथ
कदाचिदाखण्डलश्चिन्तयामास—नास्ति दाता शिविना तुल्यः । तत् किमस्य लक्ष्यं कियद्
वास्य सत्त्वम् इति जिज्ञासया धर्ममामन्त्र्य स्वयं कपोतोऽभवत् । धर्मश्च विहगामिषा-
स्वादलालसः श्येनो भूत्वा कपोतमभ्यपतत् ।

कपोतस्तु तं महान्तमकाण्ड एव प्राणहरमप्रतीकारमुपप्लवमालोक्य मरणभयात्
सन्नसत्त्वो विषादशून्यामश्रुजललुलितां दृशमितस्ततो दिक्षु विक्षिपन्नास्थानगतं राजानं दृष्ट्वा
करुणं रसंस्तस्योरुप्रदेशमासाद्य निभृतं न्यलीयत, कृपणं चावोचत्—“राजन्, शरणमापन्नोऽस्मि ।
परित्रायस्व मामेतस्माच्छ्येनात् ।” अथ श्येनोऽपि राज्ञः पुरतः प्रपतन्नुच्चैरुवाच—“राजन्,
मुञ्च मुञ्चैनं क्षुधापरीतस्य मे भक्ष्यम् ।” कपोत आह—“देव, गाढमभ्यदितोऽस्म्यनेन
श्येनेन । शरणागतस्य मे परित्राणं कर्तुमर्हसि । स्वशरीराप्यपि शरणागतरक्षायै त्यजन्ति साधवो
न पुनः शरणागतम् ।” श्येनोऽब्रवीत्—“राजन्, नूनं सकलमनोरथदातासि विश्रुतः । तत्
किमिति मां मदीयाद् भोज्याद् व्यपरोपयसि ? नूनं प्राणसंशयमापन्नोऽस्मि ।”

असावपि राजा उदीर्णकारुण्यः कथमेतदिति संभ्रान्तो दोलाख्ण्ड इव परिप्लवनेत्रं
सान्त्वयञ्छ्येनमाह—“पक्षिराट्, त्वत्तो भीतः प्राणगृध्नुरयं मत्सकाशसनुप्राप्तः । नूनं
कापुरुषाचीर्णं एष पन्था यच्छरणागतपरित्यागः । श्रूयते हि—

मोघमन्नं विन्दते ह्यप्रचेताः स्वर्गाल्लोकाद् भ्रश्यति नष्टचेष्टः ।

भीतं प्रपन्नं प्रददाति शत्रवे न तस्य हव्यं प्रतिगृह्णन्ति देवाः ॥

तदहं त्वदाहारार्थं द्यागं, वराहं, मृगं, महिषं वा घातयामि ।” श्येन आह—“राजन्, कामं वयं
जात्या पक्षिणस्तथापि नैव परहतपिशितभुजः । अपि च—

श्येनाः कपोतान् खादन्ति स्थितिरेषा सनातनी ।

राजाह—“पक्षिराट्, अङ्गीक्रियतां समैतत् स्कीतं राज्यमन्यद् वा यत् किमपि ते रोचते ।
आचक्ष्व मे तत् यस्य करणेनेमं पक्षिणं वर्जयेः । सहर्षं करिष्यामि तत् । नूनमात्थितमस्मि
विख्यातः । नैव त्यक्ष्ये शरणागतं कपोतम् ।”

श्येन. प्रत्युवाच—“राजन्, यद्येष एव ते निर्वन्धः, तर्हि कपोतमात्रं स्वमांसमुत्कृतं देहि ।” राजोवाच—

अनुग्रहमिमं मन्ये श्येन यन्माभिभाषसे ।

तस्मात्तेऽद्य प्रदास्यामि स्वमांसं तुलया धृतम् ॥

इत्युक्त्वा कपोतं तुलामारोपयामास । कक्षां च तत्समां कर्तुं स्वशरीरान्मांसमुत्कृत्यारोपयामास । परं तन्मांसं भारिकेण कपोतेन समं न भवत्येव । ततः—

ध्रियमाणस्तु तुलया कपोतो व्यतिरिच्यते ।

पुनश्चोत्कृत्य मांसानि राजा प्रादादचिन्तयन् ॥

न भवत्येव तन्मांसं कपोतेन समं धृतम् ।

तत उत्कृत्तमांसोऽसावाहरोह स्वयं तुलाम् ॥

तस्मिन् क्षणे दिवि देवानां दुन्दुभयः प्रणेदुः, पुण्यगन्धः समीरणश्च प्रववौ । ‘साधु साधु’ इति दशस्वपि दिक्षु अशरीरिण्यो वाचो विचेरुः । अत्रान्तरे धर्मपाकशासनौ प्रकटितरूपौ राजानमाहतुः—

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ राजन्य जिज्ञासेयं कृता त्वयि ।

विद्वः सर्वमभिप्रायं तव धर्मसुतस्य तु ॥

तद् भवतु ते यथापूर्वमिदमुत्कृत्तमांसं शरीरं, जुषतां च भवानायुष्प्रमाणमारोग्यम् । अन्यच्च—

यत्ते मांसानि गात्रेभ्य उत्कृतानि विशापते ।

एषा ते भास्वरी कीर्तिर्लोकानभिभविष्यति ॥

यावत्लोके मनुष्यास्त्वां कथयिष्यन्ति पार्थिव ।

तावत् कीर्तिश्च लोकाश्च स्थास्यन्ति तव शाश्वताः ॥

अभ्यासः

१. संधि-परिचयः—

यशस्त्रिदिवम्, प्रभातसमय एव, प्रोज्ज्वैस्वाच, असावपि, विक्षिपन्नास्थानगतम्, आपन्नोऽस्ति कापुरुषाचीर्णः, त्वदाहारार्थम् ।

२. समास-परिचयः—

सकलार्थिजनसंपादितमनोरथः, विषादशून्याम्, शरणागतरक्षायै, उदीर्णकारुण्यः, कापुरुषाचीर्णं परहृतपिशितभुजः ।

सर्वदमनः.

३. रूप-परिचयः—

- (क) साधु, प्रपतन्, गृध्नु, प्रचेतस्, पक्षिन्, दुन्दुभि-शब्दानां प्रथमा-तृतीया-पञ्चमीविभक्तिषु ।
(ख) ली, वच्, आप्, ग्रह्, भुज्, कृत्-धातूनां लटि, लिटि, लोटि, लङि च ।

४. प्रश्नाः—

- (क) धर्मेण कस्मै प्रयोजनाय शिबिः परीक्षितः ?
(ख) कपोतः क आसीत् इयेनश्च कः ?
(ग) 'तत् किमिति मां भोज्याद् व्यपरोपयसि' केनोक्तमिदं, कश्चास्यार्थः ?
(घ) 'तथापि नैव परहतपिणितभुजः' केनोक्तमिदं, कश्चास्यार्थः ?
(ङ) शिबिना स्वमांसान्युत्कृत्य किमिति प्रदत्तानि ?
अपि जानाति भवान् कंचिदव्यमप्येतादृशं महात्मानम् ? कर्णस्योदाहरणमुपस्थाप्यताम् ।
(च) कोऽर्थ एषां शब्दानाम्—
आलण्डलः, तुला, कक्षा, सन्नसत्त्वः, अम्यदितः, अध्रुजललुलिताम्, निभृतम्, प्राणगृध्नुः ।

सप्तमः किरणः

७ सर्वदमनः

(ततः प्रविशति तपस्विनीभ्यां सह बालः ।)

बालः—जृम्भस्व सिंह, दन्तांस्ते गणयिष्यामि ।

प्रथमा—अविनीत, किं नोऽपत्यनिर्विशेषाणि सत्त्वानि विप्रकरोषि ? हन्त, वर्धते ते संरम्भः । स्थाने खलु ऋषिजनेन 'सर्वदमन' इति कृतं ते नामधेयम् ।

द्वितीया—एषा खलु केसरिणी त्वां लङ्घयिष्यति यद्येतस्याः पुत्रकं न मुञ्चसि ?

बालः—(सस्मितम्) अहो, बलीयः खलु भीतोऽस्मि । (इत्यघरं दर्शयति)

प्रथमा—वत्स, एनं बालमृगेन्द्रं मुञ्च । अपरं ते क्रीडनकं दास्यामि ।

बालः—कुत्र ? देहि तत् । (इति हस्तं प्रसारयति ।)

द्वितीया—सुव्रते, न शक्य एष वाङ्मात्रेण विरमयितुम् । गच्छ त्वम् । मदीय उटजे वर्णचित्रितो मृत्तिकामयूरस्तिष्ठति । तमस्योपहर ।

प्रथमा—तथा । (इति निष्क्रान्ता ।)

बालः—अनेनैव तावत् क्रीडिष्यामि । (इति तापसीं विलोक्य हसति ।)

राजा—स्पृहयामि खलु दुर्ललितायास्मै ।

तापसी—भवतु । न मामयं गणयति । (पार्श्वमवलोकयति) कोऽत्र ऋषि-
कुमाराणाम् ? (राजानमवलोक्य) भद्रमुख, एहि तावत् । मोक्षयानेन
दुर्मोचहस्तग्रहेण डिम्भकेन वाध्यमानं बालमृगेन्द्रम् ।

राजा—(उपगम्य सस्मितम्) अयि भो महर्षिपुत्र, किमित्येवमाश्रममयादाविरुद्ध
माचरसि ?

तापसी—भद्रमुख, न खल्वयमृषिकुमारः ।

राजा—(बालमुपलालयन्) न चेन्मुनिकुमारोऽयमथ कोऽस्य व्यपदेशः ।

तापसी—पुरुवंशः ।

राजा—(आत्मगतम्) कथमेकान्वयो मम ?

(प्रकाशम्) न पुनरात्मगत्या मानुषाणामेष विषयः ।

तापसी—यथा भद्रमुखो भणति । अप्सरःसंबन्धेनैतस्य जनन्यत्र देवगुरोस्तपोवने
प्रसूता ।

राजा—अथ सा तत्रभवती किमाख्यस्य राजर्षेः पत्नी ?

तापसी—कस्तस्य धर्मदारपरित्यागिनो नाम संकीर्तयितुं चिन्तयिष्यति ?

राजा—(स्वगतम्) इयं कथा मामेव लक्ष्मीकरोति । यदि तावदस्य शिशोर्मतिरं
नामतः पृच्छेयम् । अथवा अनार्यः परदारव्यवहारः ।

तापसी—(प्रविश्य मृन्मयूरहस्ता)

सर्वदमन, शकुन्तलावण्यं प्रेक्षस्व ।

बालः—(सदृष्टिक्षेपम्) कुत्र वा मे अम्बा ?

उभे—नामसादृश्येन वञ्चितो मातृवत्सलः ।

द्वितीया—वत्स, अस्य मृत्तिकामयूरस्य रम्यत्वं पश्येति भणितोऽसि ।

राजा—(आत्मगतम्) किं वा शकुन्तलेत्यस्य मातुराख्या ? अथवा सन्ति पुनर्नामधेय-
सादृश्यानि ।

बालः—आर्यके, रोचते महामेष भद्रमयूरः । (इति क्रीडनकमादत्ते ।)

प्रथमा—(विलोक्य सोद्वेगम्) अहो रक्षाकरण्डकमस्य मणिबन्धे न दृश्यते ।

राजा—अलमावेगेन । नन्विदमस्य सिंहशावविमर्दात् परिभ्रष्टम् ।

सवदमन.

उभे—मा खलु मा खलु । कथं गृहीतमनेन । (इति विस्मयादुरोनिहितहस्ते परस्परमवलोकयतः ।)

राजा—किमर्थं प्रतिषिद्धाः स्मः ।

प्रथमा—शृणोतु महाराजः । एषापराजिता नामौषधिरस्य जातकर्मसमये भगवता मारीचेन दत्ता । एतां किल मातापितरावात्मानं च वर्जयित्वापरो भूमिपतितां न गृह्णाति ।

राजा—अथ गृह्णाति ?

प्रथमा—ततस्तं सर्पो भूत्वा दशति ।

राजा—भवतीभ्यां कदाचिदस्याः प्रत्यक्षीकृता विक्रिया ?

उभे—अनेकशः ।

राजा—(सहर्षम् । आत्मगतम्) कथमिव संपूर्णमपि मे मनोरथं नाभिनन्दामि ।
(इति बालं परिष्वजते ।)

द्वितीया—सुव्रते, एहि । इमं वृत्तान्तं नियमव्याप्तयै शकुन्तलायै निवेदयावः ।
(इति निष्क्रान्ते ।)

बालः—मुञ्च माम् । अम्बायाः सकाशं गमिष्यामि ।

राजा—पुत्रक, मया सहैव मातरमभिनन्दिष्यसि ।

अभ्यासः

१. समास-परिचयः—

बालमृगेन्द्रम्, दुर्मोचहस्तग्रहेण, मृत्तिकामयूरः, सिंहशावविमर्दात्, उरोनिहितहस्ते, भूमिपतिता ।

२. अर्थ-परिचयः—

उटजे, वर्णचित्रितः, दुर्मोचहस्तग्रहेण, एकान्वयः, शकुन्तलावप्यम्, सिंहशावविमर्दात्, जातकर्म, विक्रिया, सकाशम् ।

३. शोधयत—

(क) मातासकाशं गमिष्यामि ।

(ख) रोचते मामेष मयूरः ।

(ग) शृणु महाराजः ।

(घ) राजर्षेपत्नी ।

(ङ) अलमावेगात् ।

संस्कृतोदयः

४. प्रयोग-परिवर्तनम्—

- (क) एषा मारीचेन दत्ता ।
- (ख) अहं त्वया प्रतिषिद्धः ।
- (ग) अनेन पुस्तकं गृहीतम् ।
- (घ) भवतीभ्यां प्रत्यक्षीकृतास्या विक्रिया ।

५. प्रश्नाः—

- (क) सर्वदमनः कस्य पुत्र आसीत् ? सर्वदमन इति नाम्नः किं मूलम् ?
- (ख) शकुन्तला कस्याश्रमे न्यवसत् ?
- (ग) सर्वदमनः सिंहश्रावं किं कथयति ? सर्वदमनस्य शक्तिं वीक्ष्य कस्तस्मै स्पृहयति ?
- (घ) अपराजितानाम्स्या ओषधेः कः प्रभाव आसीत् ?
- (ङ) दुष्यन्तो वार्तालापक्रमेण शकुन्तलां कथमभिजानाति ?
- (च) 'शकुन्तलावण्यम्' इत्यनेन पदेन सर्वदमनः कथं गृह्णाति ?
- (छ) 'अभिज्ञानशकुन्तलम्' इत्यस्य कोऽर्थः ?

६. अनुवृत्तम्—

- (क) अहो बलीयः खलु भीतोऽस्मि ।
- (ख) स्पृहयामि खलु दुर्ललितायास्मै ।
- (ग) अथवा अनार्यः खलु परदारव्यवहारः ।

अष्टमः किरणः

८ दानवीरः कर्णः

कर्णः—शल्यराज, यावद्रथमारोहावः ।

शल्यः—वाढम् ।

(उभौ रथारोहणं नाटयतः ।)

कर्णः—शल्यराज, यत्रासावर्जुनस्तत्रैव नीयतां मम रथः ।

(नेपथ्ये)

भोः कर्ण, सहत्तरां भिक्षां याचे ।

कर्णः—(आकर्ष्य) अये वीर्यवान् शब्दः । आहूयतां स विप्रः ।

न, न । अहमेवाह्वयामि । भगवन्, इत इतः ।

(ततः प्रविशति ब्राह्मणरूपेण शक्रः ।)

शक्रः—(कर्णमुपगम्य) भोः कर्ण, महत्तरां भिक्षां याचे ।

कर्णः—दृढं प्रीतोऽस्मि भगवन्,

यातः कृतार्थगणनामहमद्य लोके

राजेन्द्रमौलिमणिरञ्जितपादपद्मः ।

विप्रेन्द्रपादरजसा तु पवित्रमौलिः

कर्णो भवन्तमहमेष नमस्करोमि ॥

शक्रः—(आत्मगतम्) किं नु खलु मया वक्तव्यम् । यदि दीर्घायुर्भवेति वक्ष्ये, दीर्घायुर्भविष्यति । यदि न वक्ष्ये, मूढ इति मां परिभवति । तस्मादुभयं परिहृत्य किं नु खलु वक्ष्यामि ? भवतु, दृष्टम् । (प्रकाशम्) भोः कर्ण, सूर्य इव, चन्द्र इव, हिमवानिव, सागर इव तिष्ठतु ते यशः ।

कर्णः—भगवन्, किं न वक्तव्यम् 'दीर्घायुर्भव' इति ? अथवा एतदेव शोभनम् ।

कुतः—

धर्मो हि यत्नैः पुरुषेण साध्यो

भुजङ्गजिह्वाचपला नृपश्रियः ।

तस्मात् प्रजापालनमात्रबुद्ध्या

हतेषु देहेषु गुणा धरन्ते ॥

भगवन्, किमिच्छसि ? किमहं ददामि ?

शक्रः—महत्तरां भिक्षां याचे ।

कर्णः—महत्तरां भिक्षां भवते प्रदास्ये । श्रूयतां भद्विभवः—

गुणवदभृतकल्पक्षीरधाराभिर्वापि

द्विजवर, रुचितं ते तुप्तवत्सानुयात्रम् ।

तरुणमधिकमर्थिप्रार्थनीयं पवित्रं

विहितकनकशृङ्गं गोसहस्रं ददामि ॥

शक्रः—गोसहस्रमिति । मुहूर्तकं क्षीरं पिबामि । नेच्छामि, कर्ण, नेच्छामि ।

कर्ण — किं नेच्छति भवान् ? अन्यदपि श्रूयताम्

रवितुरगसमानं साधनं राजलक्ष्म्याः

सकलनृपतिमान्यं भान्यकम्बोजजातम् ।

सुगुणमनिलवेगं युद्धदृष्टापदानं

सपदि बहु सहस्रं वाजिनां ते ददामि ॥

शक्रः—अश्व इति । मूढतर्कमारोहामि । नेच्छामि, कर्ण, नेच्छामि

कर्णः—किं नेच्छति भवान् ? अन्यदपि श्रूयताम्—

मदमसृणकपोलं षट्पदैः सेव्यमानं

गिरिवरनिचयाभं मेघगम्भीरघोषम् ।

सितनखदशनानां वारणानामनेकं

रिपुसमरविमर्दं वृन्दमेतद् ददामि ॥

शक्रः—गज इति मूढतर्कमारोहामि । नेच्छामि, कर्ण, नेच्छामि ।

कर्णः—किं नेच्छति भवान् ? अन्यदपि श्रूयताम्, अपर्याप्तं कनकं दद

शक्रः—गृहीत्वा गच्छामि । (किञ्चिद् गत्वा) नेच्छामि, कर्ण, नेच्छामि

कर्णः—तेन हि जित्वा पृथिवीं ददामि ।

शक्रः—पृथिव्या किं करिष्यामि ?

कर्णः—तेन ह्यग्निष्टोमफलं ददामि ।

शक्रः—अग्निष्टोमफलेन किं कार्यम् ?

कर्णः—तेन हि मच्छिरो ददामि ।

शक्रः—अविधा । अविधा ।

कर्णः—न भेतव्यं, न भेतव्यम् । प्रसीदतु भवान् ! अन्यदपि श्रूयताम्—

अङ्गैः सहैव जनितां मम देहरक्षा

देवामुरैरपि न भेद्यमिदं सहास्रैः ।

देयं तथापि कवचं सह कुण्डलाम्बां

प्रीत्या मया भगवते रुचितं यदि स्यात् ॥

शक्रः—(सहर्षम्) ददातु, ददातु ।

कर्णः—(आत्मगतम्) एष एवास्य कामः । किं तु खल्वनेककपटबुद्धेः कृ

दानवीर. कर्णः

सोऽपि भवतु । धिक्, अयुक्तमनुशोचितुम् । नास्ति संशयः । (प्रकाशम्)
गृह्यताम् ।

शल्यः—अङ्गराज, न दातव्यम्, न दातव्यम् ।

कर्णः—शल्यराज, अलसत् वारयितुम् । पश्य—

शिक्षा क्षयं गच्छति कालपर्ययात्

सुबद्धमूला निपतन्ति पादपाः ।

जलं जलस्थानगतं च शुष्यति ।

हुतं च दत्तं च तथैव तिष्ठति ॥

तस्माद् गृह्यताम् । (निकृत्य ददाति ।)

शक्रः—(गृहीत्वा आत्मगतम्) हन्त, गृहीते एते । पूर्वमेवार्जुनविजयार्थं सर्व-
देवैर्यत् समर्थितं तदिदानीं मयानुष्ठितम् । तस्मादहमप्यैरावतमारुह्यार्जुन-
कर्णयोर्युद्धं पश्यामि ।

(निष्क्रान्तः ।)

शल्यः—भो अङ्गराज, वञ्चितः खलु भवान् ।

कर्णः—केन ?

शल्यः—शक्रेण ।

कर्णः—न खलु । शक्रः खलु मया वञ्चितः । कुतः—

अनेकयज्ञाहुतितपितो द्विजैः

किरीटिभान् दानवसंघमर्दनः ।

सुरद्विपास्फालनकर्कशाङ्गुलि-

मया कृतार्थः खलु पाकशासनः ॥

(प्रविश्य ब्राह्मणरूपेण)

देवदूतः—भोः कर्ण, कवचकुण्डलग्रहणाज्जनितपश्चात्तापेन पुरंदरेणानुगृहीतोऽसि ।

पाण्डवेष्वेकपुरुषवधार्थममोघमस्त्रं विमला नाम शक्तिरियं प्रतिगृह्यताम् ।

कर्णः—धिक्, दत्तस्य न प्रतिगृह्णामि ।

देवदूतः—ननु ब्राह्मणवचनाद् गृह्यताम् ।

कर्णः—ब्राह्मणवचनमिति । न मया तदतिक्रान्तपूर्वम् । कदा लभेय ?

देवदूतः—यदा स्मरसि तदा लभस्व ।

कर्णः—बाढम् । अनुगृहीतोऽस्मि । प्रतिनिवर्ततां भवान् ।
 देवदूतः—बाढम् । (निष्क्रान्तः) ।
 कर्णः—शल्यराज, यावद् रथमारोहावः ।
 शल्यः—बाढम् ।

(रथारोहणं नाटयतः ।)

अभ्यासः

१. संधि-परिचयः—

रथारोहणम्, यन्त्रासावर्जुनः, दीर्घायुर्भव, अत्यदपि, देवासुरैरपि ।

२. समास-परिचयः—

तृप्तवत्सानुयात्रम्, मेघगम्भीरघोषम्, सुरद्विपास्फालनकर्कशाङ्गुलिः, दानवसंघमर्दनः ।

३. अर्थ-परिचयः—

पाकशासनः, कालपर्ययः, विहितकनकशृङ्गम्, मदमसृणकपोलम्, रिपुसमरविमर्दम्,
 भुजङ्गजिह्वाचपला ।

४. शोधयन्ताम्—

- (क) भिक्षां भवन्तं दास्यामि ।
- (ख) मूढ इति मम परिभवति ।
- (ग) तत्रैव नय मम रथः ।

५. प्रयोग-परिवर्तनम्—

- (क) ग्राह्यतां स विप्रः ।
- (ख) किं भया वक्तव्यम् ?
- (ग) अहं पृथिवीं ददामि ?
- (घ) किं नेच्छति भवान् ?
- (ङ) शक्रः खलु मया वञ्चितः ।

६. प्रश्नाः—

- (क) शक्रस्य वचनमाकर्ण्य कर्णेन किं तर्कितम् ?
- (ख) शक्रः कर्णाय 'दीर्घायुर्भव' इति आशीर्वचनं किमिति न ददाति ?
- (ग) शक्रः कर्णाय किं प्रयच्छति । तस्य च कः प्रभावः ?
- (घ) शक्रः कथं वञ्चितोऽभूत् ?

हर्षो वत्सलस्य पितुः स्मरति

- (ङ) कर्णस्य चरित्रे किं तद् वैशिष्ट्यं यद् भवते रोचते ?
(च) कर्णस्यार्जुनेन सह वैरं किमाधारमासीत् ?
(छ) कवचं कुण्डले च शक्या वित्तीयं कर्णः किमौदार्यं प्रदर्शितवान् ?

नवमः किरणः

६ हर्षो वत्सलस्य पितुः स्मरति

देवोऽपि हर्षो धरण्यामुपविष्ट एव तां निशीथिनीं सराजको जजागार । अजनि चास्य चेतसि—ताते दूरीभूते संप्रत्येतावान् खलु जीवलोकः । लोकस्य भग्नाः पन्थानः, मनोरथानां खिलीभूतानि भूतिस्थानानि, स्थगितान्यानन्दस्य द्वाराणि, सुप्ता सत्यवादिता, लुप्ता लोकयात्रा, विलीना बाहुशालिता, प्रलीना प्रियालापिता, समाप्ता समरशौण्डता, ध्वस्ता परगुणप्रीतिः, विश्रान्ता विश्वासभूमयः, निरुपयोगानि शास्त्राणि, निरवलम्बना विक्रमैकरसता, कथावशेषा विशेषज्ञता । ददतु जना जलाञ्जलिमौर्जित्याय, प्रतिपद्यतां प्रव्रज्यां प्रजापालता, बध्नातु वैधव्यवेणीं वरमनुष्यता, समाश्रयतु राज्यश्रीराश्रमपदम्, परिधत्तां धवले वाससी वसुमती, वहतु वल्कले विलासिता, तपस्यतु तपोवनेषु तेजस्विता, प्रावृणोतु चीवरे वीरता । क्व गम्यतां पुनस्तस्य कृते कृतज्ञतया, क्व पुनः प्राप्स्यति तादृशान् महापुरुषनिर्माणपरमाणून् परमेष्ठो । शून्याः संबृत्ता दश दिशो गुणानाम्, जगज्जातमन्धकारमयं धर्मस्य, निष्फलमधुना जन्म शस्त्रोपजीविनाम् । अपि नाम स्वप्नेऽपि दृश्यते दीर्घरक्तनयनं पुनस्तन्मुखसरोजम् । लोकान्तेरेऽपि पुत्रेत्यालपतः श्रूयते सा सुधारसं समुद्गिरन्ती मध्यमानक्षीरसागरोद्गारगम्भीरा भारती इति एतानि चान्यानि च चिन्तयत एवास्य कथमपि सा क्षयमियाय यामिनी ।

अभ्यासः

१. समास-परिचयः—

विक्रमैकरसता, महापुरुषनिर्माणपरमाणवः, दीर्घरक्तनयनः, मध्यमानक्षीरसागरोद्गारगम्भीरा, कथावशेषा ।

२. अर्थ-परिचयः—

समरशौण्डता, खिलीभूतानि भूतिस्थानानि, और्जित्यम्, वसुमती, प्रव्रज्या, शस्त्रोपजीविनः, भारती यामिनी ।

- (क) द्वाराणि
 (ख) सुप्ता सत्यवादिता । प्रलीना प्रियालापिता ।
 (ग) समाप्ता समरशौण्डता ।
 (घ) निरवलम्बना विक्रमैकरसता ।
 (ङ) कथावशेषा विशेषज्ञता ।
 (च) ददतु जना जलाञ्जलिमूर्जित्याय ।
 (छ) समाश्रयतु राज्यलक्ष्मीराश्रमपदम् ।
 (ज) परिधत्तां धवले वाससी वसुमती ।
 (झ) प्रावृणोतु चीवरे वीरता ।
 (ञ) जगज्जातमन्धकारमयं धर्मस्य ।

४. प्रश्नाः—

- (क) कोऽयं हर्षो राजा ? कश्चास्य समयः ?
 (ख) अपि श्रुतं भवता बाणभट्टस्य नाम ?
 (ग) 'हर्षचरितम्' कस्य कवेः कृतिः ?
 (घ) हर्षस्य समये बौद्धधर्मस्य प्रचार आसीन्न वा ?

दशमः किरणः

१० राजा प्रकृतिरञ्जनात्

(ततः प्रविशत्युपविष्टो रामः सीता च)

रामः—देवि वैदेहि, समाश्वसिहि । ते हि गुरवो न शक्नुवन्ति विहातुमस्मान् ।

किं त्वनुष्ठाननित्यत्वं स्वातन्त्र्यमपकर्षति ।

संकटा ह्याहिताग्नीनां प्रत्यवायैर्गृहस्थता ॥

सीता—जानामि, आर्यपुत्र, जानामि । किंतु संतापकारिणो बन्धुजनविप्रयोगा
 भवन्ति ।

रामः—एवमेतत् । एते हि हृदयमर्मच्छिदः संसारभावा येभ्यो बीभत्समानाः
 संत्यज्य सर्वान् कामानरण्ये विश्राम्यन्ति मनीषिणः ।

राजा प्रकृतिरञ्जनात्

कञ्चुकी—(प्रविश्य) रामभद्र, (इत्यर्धोक्ते साशङ्कम्) महाराज,

रामः—(सस्मितम्) आर्य, ननु 'रामभद्र' इत्येव मां प्रत्युपचारः शोभते तात-
परिजनस्य । तद्यथाभ्यस्तमभिधीयताम् ।

कञ्चुकी—देव, ऋष्यशृङ्गाश्रमादष्टावक्रः संप्राप्तः ।

सीता—आर्य, ततः किं विलम्ब्यते ?

रामः—त्वरितं प्रवेशय ।

(कञ्चुकी निष्क्रान्तः ।)

(प्रविश्य)

अष्टावक्रः—स्वस्ति वाम् ।

रामः—भगवन्, अभिवादये । इत आस्यताम् ।

सीता—भगवन्, नमस्ते । अपि कुशलं सजामातृकस्य गुरुजनस्यार्यायाः
शान्तायाश्च ?

रामः—अपि निर्विघ्नः सोमपीथी भगवान् ऋष्यशृङ्ग आर्या च शान्ता ?

सीता—अस्मान् वा स्मरति ?

अष्टावक्रः—(उपविश्य) अथ किम् ? देवि, कुलगुरुर्भगवान् वसिष्ठस्त्वामिदमाह—

विश्वंभरा भगवती भवतीमसूत

राजा प्रजापतिसमो जनकः पिता ते ।

तेषां वधूस्त्वमसि नन्दिनि पार्थिवानां

येषां कुलेषु सविता च गुरुर्वयं च ॥

तत् किमन्यदाशास्महे ? केवलं वीरप्रसवा भूयाः ।

रामः—अनुगृहीताः स्मः ।

लौकिकानां हि साधूनामर्थं वागनुवर्तते ।

ऋषीणां पुनराद्यानां वाचमर्थोज्जुधावति ॥

अष्टावक्रः—इदं च भगवत्यानुरुन्धत्या शान्तया च भूयोभूयः संदिष्टम् । यः कश्चिद्

गर्भदोहदो भवत्यस्याः सोऽवश्यमचिरात्संपादयितव्य इति ।

रामः—क्रियते यदेषा कथयति ।

अष्टावक्रः—ननान्दुः पत्या च देव्याः संदिष्टमृष्यशृङ्गेण । वत्से, कठोरगर्भेति

नानीतासि वत्सोऽपि रामभद्रस्त्वद्विनोदार्थमेव स्थापितः । तत् पुत्र-
पूर्णोत्सङ्गामायुष्मतीं द्रक्ष्याम इति ।

रामः—(सहर्षलज्जास्मितम्) तथास्तु । भगवता वसिष्ठेन न किञ्चिदा-
दिष्टोऽस्मि ?

अष्टावक्रः—श्रूयताम्—

जामातृयज्ञेन वयं निरुद्धा-

स्त्वं बाल एवासि नवं च राज्यम् ।

युक्तः प्रजानामनुरञ्जने स्या-

स्तस्माद्यशो यत्परमं धनं वः ॥

रामः—यथा समादिशति भगवान् मैत्रावरुणिः ।

स्नेहं दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि ।

आराधनाय लोकस्य मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा ॥

सीता—अत एव राघवकुलधुरंधर आर्यपुत्रः ।

रामः—कः कोऽत्र भोः ? विश्राम्यतामष्टावक्रः ।

(इति निष्क्रान्तः ।)

अभ्यासः

१. अर्थ-परिचयः—

आहिताग्नीनाम्, बीभत्समानाः, उपचारः, सोमपीथी, वीरप्रसवा, गर्भदोहदः, सौख्यम् ।

२. प्रयोग-परिवर्तनम्—

(क) जामातृयज्ञेन वयं निरुद्धाः ।

(ख) अर्थं वागनुवर्तते ।

(ग) मया क्रियते यदेषा कथयति ।

(घ) त्वरितं प्रवेशयैनम् ।

(ङ) रामेण रावणो हतः ।

३. प्रश्नाः—

(क) आहिताग्नीनां गृहस्थता किमिति विघ्नबहुला ?

(ख) मनीषिणः कस्मात् कारणादरण्ये विश्राम्यन्ति ?

शुकनासोपदेशः

- (ग) प्रजारञ्जनविषये रामस्य को विचारः ?
- (घ) वसिष्ठेन रामाय कः संदेशो दत्तः ?
- (ङ) “भगवान् मैत्रावरुणिः” इत्यस्य कोऽर्थः ?
- (च) अष्टावक्रस्य किं वैशिष्ट्यमासीत् ?

एकादशः किरणः

११ शुकनासोपदेशः

वत्स चन्द्रापीड, गर्भेश्वरत्वमभिनवयौवनत्वमप्रतिभरूपत्वममानुषशक्तित्वं चेति महतीयं खल्वनर्थपरंपरा । अविनयानामेकैकमप्येषामायतनं किमुत संवदायः । यौवनारम्भे च प्रायः शास्त्रजलप्रक्षालननिर्मलापि कालुष्यमुपयाति बुद्धिः । इन्द्रियहरिणहारिणी च सततमति-दुरन्तेयमुपभोगमृगतृष्णिका । नवयौवनकषायितात्मनश्च सलिलानीव तान्येव विषयस्वरूपाण्यास्वादमानानि मधुरतराण्यापतन्ति मनसः ।

भवादृशा एव भवन्ति भाजनमुपदेशानाम् । अपगतमले हि मनसि स्फटिकमणाविव रजनिकरगभस्तयो विशन्ति सुखमुपदेशगुणाः । गुरुवचनममलमपि सलिलमिव महदुपजनयति श्रवणस्थितं शूलमभव्यस्य । इतरस्य तु किरिण इव शङ्खाभरणमाननशोभामुपजनयति । हरति च सकलमतिमलिनमहान्धकारमिव दोषजातं प्रदोषसमयनिशाकर इव गुरुपदेशः । अयमेव चानास्वादितविषयरसस्य ते काल उपदेशस्य । कुसुमशरप्रहारजर्जरिते हि हृदये जलमिव गलत्युपदिष्टम् ।

गुरुपदेशश्च नाम पुरुषाणामखिलमलप्रक्षालनक्षममजलं स्नानम्, अनुपजातपलितादिवैरूप्यमजरं वृद्धत्वम्, अनारोपितमेदोदोषं गुरूकरणम्, असुवर्णविरचनमग्राम्यं कर्णाभरणम्, अतीतज्योतिरालोकः, नोद्वेगकरः प्रजागरः । विशेषेण तु राज्ञाम् । विरला हि तेषामुपदेष्टारः ।

आलोकयतु तावत् कल्याणाभिनिवेशी लक्ष्मीमेव प्रथमम् । इयं हि लब्धापि खलु दुःखेन परिपाल्यते । न परिचयं रक्षति । नाभिजनमीक्षते । न रूपमालोकते । न कुलक्रममनुवर्तते । न शीलं पश्यति । न वैदग्ध्यं गणयति । न श्रुतमाकर्णयति । न सत्यमनुबुध्यते । न लक्षणं प्रमाणीकरोति । गन्धर्वनगरलेखेव पश्यत एव नश्यति ।

एवविधया चानया दुराचारया कथमपि दैववशेन परिगृहीता विक्लवीभवन्ति राजान । सर्वाविनयाधिष्ठानतां च गच्छन्ति । मिथ्यामाहात्म्यगर्वनिर्भराश्च न प्रणमन्ति देवताभ्यः, न पूजयन्ति द्विजातीन्, न मानयन्ति मान्यान्, नार्चयन्त्यर्चनीयान्, नाभिवादयन्त्यभिवादनाहान्, नाभ्युत्तिष्ठन्ति गुरुन् । जरावैकल्यप्रलपितमिति पश्यन्ति वृद्धजनोपदेशम् । आत्मप्रज्ञापरिभव इत्यसूयन्ति सचिवोपदेशाय । कुप्यन्ति हितवादिने । सर्वथा तमभिनन्दन्ति, तमालपन्ति, तं पार्श्वे कुर्वन्ति, तं संवर्धयन्ति, तेन सह सुखमवतिष्ठन्ते, तस्मै ददति, तं मित्रतामुपनयन्ति, तस्य वचनं शृण्वन्ति, तं वर्धयन्ति, तं बहु मन्यन्ते, तमाप्ततामापादयन्ति योऽहर्निशमनवरतमुपरिचिताञ्जलिर्विगतान्यकर्तव्यः स्तौति, यो वा माहात्म्यमुद्भावयति ।

तदेवंप्राये राज्यतन्त्रे अस्मिन् महामोहकारिणि च यौवने कुमार, तथा प्रयतेथा यथा नोपहस्यसे जनैः, न निन्द्यसे साधुभिः, न धिक्क्रियसे गुरुभिः, नोपालभ्यसे सुहृद्भिः, न शोच्यसे विद्वद्भिः, यथा च न प्रकाश्यसे विटैः, न प्रतार्यसे कुशलैः, नावलुप्यसे सेवकवृक्कैः, न वञ्च्यसे धूर्तैः, न प्रलोभ्यसे वनिताभिः, न विडम्ब्यसे लक्ष्म्या, न नर्त्यसे मदेन, नावलुप्यसे विषयैः, न विकृष्यसे रागेण, नापह्लियसे सुखेन । कामं भवान् प्रकृत्यैव धीरः, पित्रा च महता प्रयत्नेन समारोपितसंस्कारः । किंतु तरलहृदयमप्रतिबुद्धं च मदयन्ति धनानि । तथापि भवद्गुणसंतोषो मामेवं मुखरीकृतवान् । इदमेव च पुनः पुनरभिधीयसे । यतो विद्वांसमपि, सचेतनमपि, महासत्त्वमपि, अभिजातमपि, धीरमपि, प्रयत्नवन्तमपि पुरुषमियं दुर्विनीता खलीकरोति लक्ष्मीरिति । सर्वथा पित्रा क्रियमाणमनुभवतु भवान् यौवराज्याभिषेकमङ्गलम् । कुलक्रमागतामुद्बुधं पूर्वपुरुषैरूढां धुरम् । अवनमय द्विषतां शिरांसि । उन्नमय बन्धुवर्गम् । अभिषेकानन्तरं च प्रारब्धदिग्विजयः परिभ्रमन् विजितामपि तव पित्रा सप्तद्वीपभूषणां पुनर्विजयस्व वसुंधराम् । अयं च ते कालः प्रतापमारोपयितुम् । आरूढप्रतापो हि राजा त्रैलोक्यदर्शीव सिद्धादेशो भवति इत्येतावदभिधायोपशशाम शुकनासः ।

अभ्यासः

१. समास-परिचयः—

विगतान्यकर्तव्यः, सेवकवृक्कैः, सप्तद्वीपभूषणाम्, आरूढप्रतापः, उपरिचिताञ्जलिः, अनास्वादित-विषयरसः, समारोपितसंस्कारः ।

२. भेद-विवेकः—

अभिषेकः—अवसेकः । उपदेशः—अपदेशः । श्रवणम्—श्रावणम् । अतीतः—प्रतीतः ।

आचारः—अपचारः । अभिजातः—अनुजातः । विटः—भटः । धुरम्—धाराम् ।

सदाचारः

३. प्रश्नाः—

- (क) गुरूपदेशः कस्य शूलं जनयति ? किमिति च ?
- (ख) गुरूपदेशस्य के गुणाः ?
- (ग) लक्ष्म्याः लक्ष्मीवतां च के दोषा उद्भाविताः महाकविना वाणेन ?
- (घ) धनानि कं मदयन्ति ?
- (ङ) अभिषेकादनन्तरं दिग्विजयसमारम्भः किमित्युपदिष्टः ?

द्वादशः किरणः

१२ सदाचारः

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः ।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम् ॥१॥
वित्तं बन्धुर्वयः कर्म विद्या भवति पञ्चमी ।
एतानि मान्यस्थानानि गरीयो यद्यदुत्तरम् ॥२॥
यं मातापितरौ बलेशं सहेते संभवे नृणाम् ।
न तस्य निष्कृतिः शक्या कर्तुं वर्षशतैरपि ॥३॥
तयोर्नित्यं प्रियं कुर्यादाचार्यस्य च सर्वदा ।
तेष्वेषु त्रिषु तुष्टेषु तपः सर्वं समाप्यते ॥४॥
संतोषं परमास्थाय सुखार्थी संयतो भवेत् ।
संतोषमूलं हि सुखं दुःखमूलं विपर्ययः ॥५॥
नात्मानमवमन्येत पूर्वाभिरसमृद्धिभिः ।
आमृत्योः श्रियमन्विच्छेन्नैनां मन्येत दुर्लभाम् ॥६॥
सत्यं ब्रूयात्प्रियं ब्रूयाच्च ब्रूयात्सत्यमप्रियम् ।
प्रियं च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः ॥७॥
सर्वं परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम् ।
एतद्विद्यात्समासेन लक्षणं सुखदुःखयोः ॥८॥

यत्कर्म कुर्वतोऽस्य स्यात्परितोषोऽन्तरात्मनः ।
 तत्प्रयत्नेन कुर्वीत विपरीतं तु वर्जयेत् ॥६॥
 दृष्टिपूर्तं न्यसेत्पादं वस्त्रपूर्तं जलं पिबेत् ।
 सत्यपूर्तां वदेद्वाचं मनःपूर्तं समाचरेत् ॥१०॥
 स्वानि कर्माणि कुर्वाणा द्वारे सन्तोऽपि मानवाः ।
 प्रिया भवन्ति लोकस्य स्वे स्वे कर्मण्यवस्थिताः ॥११॥
 यत्कर्म कृत्वा कुर्वन्श्च करिष्यंश्चैव लज्जते ।
 तज्जयेयं विदुषा सर्वं तामसं गुणलक्षणम् ॥१२॥
 यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः ।
 यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तित्राफलाः क्रियाः ॥१३॥
 इन्द्रियाणां विचरतां विषयेष्वपहारिषु ।
 संयमे यत्नमातिष्ठेद्विद्वान् यन्तेव वाजिनाम् ॥१४॥
 न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ।
 हविषा कृष्णवर्त्मव भूय एवाभिवर्धते ॥१५॥
 धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
 धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दक्षकं धर्मलक्षणम् ॥१६॥
 धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः ।
 तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो मा नो धर्मो हतो बधीत् ॥१७॥
 दुराचारो हि पुरुषो लोके भवति निन्दितः ।
 दुःखभागी च सततं व्याधितोऽल्पायुरेव च ॥१८॥
 सर्वलक्षणहीनोऽपि यः सदाचारवान् नरः ।
 श्रद्धधानोऽनसूयश्च शतं वर्षाणि जीवति ॥१९॥

अभ्यासः

—

- (क) 'आ मृत्योः श्रियमन्विच्छेत्'—किं फलं श्रीसंचयस्य ?
 'अजरामरवत् प्राज्ञो विद्यामर्थं च चिन्तयेत्' इत्यपि स्मर्यतामस्मिन् प्रसङ्गे
 (ख) 'सर्वं परवशं दुःखम्' । आत्मसंयमोऽपि पारवश्यमेव । किमात्मसंयमोऽपि
 (ग) 'सत्यपूर्तां वदेद्वाचं मनःपूर्तं समाचरेत्' इति अस्य श्लोकार्धस्य क आशयः

राम-भरत संवादः

- (घ) धर्मस्य किं लक्षणम् ?
- (ङ) 'दुराचारो हि पुरुषो लोके भवति निन्दितः'; अस्मिन् प्रसङ्गे रावणस्य कथां श्रावयत ।
- (च) 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः' इति अस्य श्लोकार्थस्य क आशयः ?
- (छ) 'धर्म एव हतो हन्ति'; इतीयमुक्तिः रावणे दुर्योधने च चरितार्थनीया ।
- (ज) इन्द्रियनिग्रहस्य किं फलम् ?

त्रयोदशः किरणः

१३ राम-भरत संवादः

रजन्यां सुप्रभातायां भ्रातरस्ते सुहृद्वृताः ।
मन्दाकिन्यां हुतं जप्यं कृत्वा राममुपागमन् ॥१॥
तूष्णीं ते समुपासीता न कश्चित् किंचिदब्रवीत् ।
भरतस्तु सुहृन्मध्ये रामं वचनमब्रवीत् ॥२॥
सान्त्विता मामिका माता दत्तं राज्यमिदं मम ।
तद् ददामि तवैवाहं भुङ्क्ष्व राज्यमकण्टकम् ॥३॥
महतेवाम्बुवेगेन भिन्नः सेतुर्जलागमे ।
दुरावारं त्वदन्येत राज्यखण्डमिदं महत् ॥४॥
गतिं खर इवाश्वस्य तार्क्ष्यस्येव पतत्रिणः ।
अनुगन्तुं न शक्तिर्मे गतिं तव महीपते ॥५॥
सुजीवं नित्यशस्तस्य यः परैरुपजीव्यते ।
राम तेन तु दुर्जीवं यः परानुपजीवति ॥६॥
श्रेणयस्त्वां महाराज पश्यन्त्वग्राश्च सर्वशः ।
प्रतपन्तमिवादित्यं राज्ये स्थितमरिदम ॥७॥
तवानुयाने काकुत्स्थ भत्ता नर्दन्तु कुञ्जराः ।
अन्तःपुरगता नार्यो तन्दन्तु सुसमाहिताः ॥८॥
तस्य साध्वित्यमन्यन्त नागरा विविधा जनाः ।
भरतस्य वचः श्रुत्वा रामं प्रत्यनुयाचतः ॥९॥

तमव दुःखित प्रक्ष्य विलपन्त यशस्विनम्
 रामः कृतात्मा भरत सत्पराय सत्पराय ॥१०॥
 नात्मनः कामकारोऽस्ति पुरुषोऽयमनीश्वरः ।
 इतश्चेतरतश्चैनं कृतान्तः परिकर्षति ॥११॥
 सर्वे क्षयान्ता निचयाः पतनान्ताः समुच्छ्रयाः ।
 संयोगा विप्रयोगान्ता मरणान्तं च जीवितम् ॥१२॥
 यथा फलानां पक्वानां नान्यत्र पतनाद् भयम् ।
 एवं नरस्य जातस्य नान्यत्र मरणाद् भयम् ॥१३॥
 यथागारं दृढस्थूणं जीर्णं भूत्वावसीदति ।
 तथावसीदन्ति नरा जरामृत्युवशं गताः ॥१४॥
 अहोरात्राणि गच्छन्ति सर्वेषां प्राणिनामिह ।
 आयूंषि क्षपयन्त्याशु ग्रीष्मे जलमिवांशवः ॥१५॥
 आत्मानमनुशोच त्वं किमन्यमनुशोचसि ।
 आयुस्ते हीयते यस्य स्थितस्य च गतस्य च ॥१६॥
 सहैव मृत्युर्व्रजति सह मृत्युर्निषीदति ।
 गत्वा सुदीर्घमध्वानं सह मृत्युर्निवर्तते ॥१७॥
 गात्रेषु बलयः प्राप्ताः श्वेताश्चैव शिरोरुहाः ।
 जरया पुरुषो जीर्णः किं हि कृत्वा प्रभावयेत् ॥१८॥
 नन्दन्त्युदित आदित्ये नन्दन्त्यस्तमिते रवौ ।
 आत्मनो नाबबुध्यन्ते मनुष्या जीवितक्षयम् ॥१९॥
 हृष्यन्त्यृतुमुखं दृष्ट्वा नवं नवमिहागतम् ।
 ऋतूनां परिवर्तेन प्राणिनां प्राणसंक्षयः ॥२०॥
 यथा काष्ठं च काष्ठं च समेयातां महार्णवे ।
 समेत्य च व्यपेयातां कालमासाद्य कंचन ॥२१॥
 एवं भार्याश्च पुत्राश्च ज्ञातयश्च वसूनि च ।
 समेत्य व्यवधावन्ति ध्रुवो ह्येषां विनाभवः ॥२२॥
 नात्र कश्चिद् यथाभावं प्राणी समभिवर्तते ।
 तेन तस्मिन्न सामर्थ्यं प्रेतस्यास्त्यनुशोचतः ॥२३॥

यथा हि सार्थं गच्छन्तं ब्रूयात् कश्चित् पथि स्थितः ।
 अहमप्यागमिष्यामि पृष्ठतो भवतामिति ॥२४॥
 एवं पूर्वर्गतो मार्गः पितृपैतामहो ध्रुवः ।
 तमापन्नः कथं शोचेद्यस्य नास्ति व्यतिक्रमः ॥२५॥
 वयसः पतमानस्य स्रोतसो वानिर्वर्तिनः ।
 आत्मा सुखे नियोक्तव्यः सुखभाजः प्रजाः स्मृताः ॥२६॥
 धर्मात्मा स शुभैः कृत्स्नैः क्रतुभिश्चाप्तदक्षिणैः ।
 धूतपापो गतः स्वर्गं पिता नः पृथिवीपतिः ॥२७॥
 भृत्यानां भरणात् सम्यक् प्रजानां परिपालनात् ।
 अर्थदानाच्च धर्मेण पिता नस्त्रिदिवं गतः ॥२८॥
 इष्ट्वा बहुविधैर्यज्ञैर्भोगांश्चावाप्य पुष्कलान् ।
 उत्तमं चायुरासाद्य स्वर्गतः पृथिवीपतिः ॥२९॥
 स जीर्णं मानुषं देहं परित्यज्य पिता हि नः ।
 दैवीमृद्धिमनुप्राप्तो ब्रह्मलोकविहारिणीम् ॥३०॥
 तं तु नैवंविधं कश्चित् प्राज्ञः शोचितुमर्हति ।
 त्वद्विधो मद्विधश्चापि श्रुतवान् बुद्धिमत्तरः ॥३१॥
 एवं बहुविधाः शोका विलापरुदिते तथा ।
 वर्जनीया हि धीरेण सर्वाविस्थासु धीमता ॥३२॥
 स स्वस्थो भव मा शोचीयत्वा चावस तां पुरीम् ।
 तथा पित्रा नियुक्तोऽसि वशिना वदतांवर ॥३३॥
 यत्राहमपि तेनैव नियुक्तः पुण्यकर्मणा ।
 तत्रैवाहं करिष्यामि पितुरार्यस्य शासनम् ॥३४॥
 न मया शासनं तस्य त्यक्तुं न्याय्यमरिदम् ।
 स त्वयापि सदा मान्यः स वै बन्धुः स नः पिता ॥३५॥

अभ्यासः

१. समास-परिचयः—

पतनान्ताः, दृढस्थूलम्, जरामृत्युवशम्, प्राणसंक्षयः, आप्तदक्षिणः, ब्रह्मलोकविहारिणीम् ।

२ अर्थ-परिचय

याव्यम्, ऋद्धिः, त्रिदिवम्, प्रेतः, स्वर्गतः, परिवर्तः, बलयः, शिरोरुहाः, पितृपैतामहः, निशोक्तव्यः, उपजीव्यते, क्षयान्ता निवयाः, कामकारः ।

३. प्रश्नाः—

- (क) भरतः किमर्थं राममनुनयति ?
- (ख) “यः परैरुपजीव्यते” अथवा “यः परानुपजीवति” एतयोर्मध्ये कस्य जीवनं धन्यम् ?
- (ग) जीवनस्य नस्वरतामालोच्य भरतो रामं किमभिधित्सति ?
- (घ) प्रजानां रक्षणं कथं पुण्याय कल्पते ?
- (ङ) रामो भरतं कथमवबोधयति ? संक्षेपेण कथयत ।
- (च) “यथागारं दृढस्थूणं जीर्णं भूत्वावसीदति” इत्यस्य क आशयः ?
- (छ) रामस्य मते पिता नानुशोच्यः । किं भवान् स्वीकरोत्येतत् ?
- (ज) रामः पितुः शासनं किमिति शिरसि करोति ?

चतुर्दशः किरणः

१४ भीमदुर्योधनयोर्गदायुद्धम्

अभवच्च तयोर्युद्धं तुमुलं रोमहर्षणम् ।
जिगीषतोर्युधान्योन्यमिन्द्रप्रह्लादयोरिव ॥१॥
रुधिरोक्षितसर्वाङ्गी गदाहस्तौ मनस्विनौ ।
ददृशाते महात्मानौ पुष्पिताविव किशुकौ ॥२॥
अपारवीर्यौ संप्रेक्ष्य प्रगृहीतगदावुभौ ।
विस्मयं परमं जग्मुर्देवगन्धर्वदानवाः ॥३॥
तौ परस्परमासाद्य यत्तावन्योन्यरक्षणे ।
मार्जाराविव भक्षार्थं ततक्षाते मुहुर्मुहुः ॥४॥
तौ दर्शयन्तौ समरे युद्धक्रीडां समन्ततः ।
गदाभ्यां सहसान्योन्यमाजघ्नतुररिदमौ ॥५॥
तौ परस्परमासाद्य दंष्ट्राभ्यां द्विरदौ यथा ।
अशोभेतां महाराज शोणितेन परिप्लुतौ ॥६॥

भीमदुर्योधनयोगंदायुद्धम्

एवं तदभवद् युद्धं घोररूपमसंवृतम् ।
 परिवृत्तेऽहनि क्रूरं वृत्रवासवयोरिव ॥७॥
 आधुन्वन्तौ गदे घोरे चन्दनागरुषिते ।
 वैरस्यान्तं परीप्सन्तौ रणे क्रुद्धाविवान्तकौ ॥८॥
 अन्योन्यं तौ जिघांसन्तौ प्रवीरौ पुरुषर्षभौ ।
 युयुधाते गरुत्मन्तौ यथा नागामिषैषिणौ ॥९॥
 मण्डलानि विचित्राणि चरतोर्नृपभीमयोः ।
 गदासंपातजास्तत्र प्रजज्ञुः पावकाचिषः ॥१०॥
 तस्मिंस्तदा संप्रहारे दारुणे संकुले भृशम् ।
 उभावपि परिश्रान्तौ युध्यमानावर्दिमौ ॥११॥
 तौ मूर्हतं समारवस्य पुनरेव परंतपौ ।
 अभ्यहारयतां क्रुद्धौ प्रगृह्य महती गदे ॥१२॥
 व्यायामप्रव्रुतौ तौ तु वृषभाक्षौ तरस्विनौ ।
 अन्योन्यं जघ्नतुर्वीरौ पङ्क्त्यौ महिषाविव ॥१३॥
 ततो मूर्हतंमारवस्य दुर्योधनमवस्थितम् ।
 वेगेनाभ्यद्रवद् राजन् भीमसेनः प्रतापवान् ॥१४॥
 तमापतन्तं संप्रेक्ष्य संरब्धममितौजसम् ।
 मोघमस्य प्रहारं तं चिकीर्षुर्भरतर्षभ ॥१५॥
 अवस्थाने मतिं कृत्वा पुत्रस्तव महातपाः ।
 इयेषोत्पतितु राजश्छलयिष्यन् वृकोदरम् ॥१६॥
 अबुध्यद् भीमसेनस्तद् राजस्तस्य चिकीर्षितम् ।
 अथास्य समभिद्रुत्य समुत्क्रम्य च सिंहवत् ॥१७॥
 सृत्या वञ्चयतो राजन् पुनरेवोत्पतिष्यतः ।
 ऊरुभ्यां प्राहिणोद् राजन् गदां वेगेन पाण्डवः ॥१८॥
 सा वज्रनिष्पेषसमा प्रहिता भीमकर्मणा ।
 ऊरू दुर्योधनस्याथ वभञ्ज प्रियदर्शनौ ॥१९॥
 स पपात नरव्याघ्रो वसुधामनुनादयन् ।
 भग्नोरुर्भीमसेनेन पुत्रस्तव महीपते ॥२०॥

अभ्यासः

१. समास-परिचयः—

गदानिर्घातिसंज्ञादः, चन्द्रनागररूपिते, व्यायामप्रद्वतौ, नागामिषैषिणौ, भीमकर्मा, प्रियदर्शनः, वृकोदरः, अमितौजाः ।

२. रूप-परिचयः—

(क) प्रचेतस्, अमितौजस्, भीमकर्मन्, चिकीर्षु, जिघांसन्, प्रतापिन्-शब्दानां प्रथमा-तृतीया-पञ्चमी-विभक्तिषु ।

(ख) हन्, श्रम्, स्था, गम्, द्रु, हि-धातूनां लटि, लिटि, लोटि च ।

३. अर्थ-परिचयः—

आधुन्वन्तौ, परीप्सन्तौ, जिघांसन्तौ, गच्छन्तौ, मृधे, तरस्विनौ, अमितौजाः, अरिदमः, समुत्क्रम्य, मोघं चिकीर्षुः, परंतपौ, आजघ्नतुः ।

४. प्रश्नाः—

- (क) भीमदुर्योधनयोर्दुर्योधनः कृतविद्यतर आसीत् । तर्हि स भीमेन कथं निपातितः ?
- (ख) भीमदुर्योधनयोर्गदामुद्धं कुत्र कदा चाभवत् ?
- (ग) रुधिराप्लुतगात्रौ तौ कथमशोभेताम् ?
- (घ) गदामुद्धवर्णनं कः कं श्रावयति ?
- (ङ) भीमदुर्योधनयोर्महाभारते किं विशिष्टं महत्त्वम् ?
- (च) दुर्योधनः पापी सन्नपि धृतराष्ट्रस्य प्रियतमः किमित्यासीत् ?

पञ्चदशः किरणः

१५ विष्णोः स्तुतिः

प्रणिपत्य सुरास्तस्मै शमयित्रे सुरद्विषाम् ।

अथैनं तुष्टुवुः स्तुत्यमवाङ्मनसगोचरम् ॥१॥

नमो विश्वसृजे पूर्वं विश्वं तदनु विभूते ।

अथ विश्वस्य संहर्त्रे तुभ्यं त्रेधा स्थितात्मने ॥२॥

अमेयो मितलोकस्त्वमनर्थी प्रार्थनावहः ।

अजितो जिष्णुरत्यन्तमव्यक्तो व्यक्तकारणम् ॥३॥

विष्णो स्तुति

हृदयस्थमनासन्नमकामं त्वां तपस्विनम् ।
 दयालुमनघस्पृष्टं पुराणमजरं विदुः ॥४॥
 सर्वज्ञस्त्वमविज्ञातः सर्वयोनिस्त्वमात्मभूः ।
 सर्वप्रभुरनीशस्त्वमेकस्त्वं सर्वरूपभाक् ॥५॥
 चतुर्वर्गफलं ज्ञानं कालावस्थाश्चतुर्युगाः ॥
 चतुर्वर्णमयो लोकस्त्वत्तः सर्वं चतुर्मुखात् ॥६॥
 अभ्यासनिगृहीतेन मनसा हृदयाश्रयम् ।
 ज्योतिर्मयं विचिन्वन्ति योगिनस्त्वां विमुक्तये ॥७॥
 अजस्य गृह्णतो जन्म निरीहस्य हतद्विषः ।
 स्वपतो जागरुकस्य याथार्थ्यं वेद कस्तव ॥८॥
 शब्दादीन्विषयान्भोक्तुं चरितुं दुश्चरं तपः ।
 पर्याप्तोऽसि प्रजाः पातुमौदासीन्येन वर्तितुम् ॥९॥
 बहुधाप्यागमैर्भिन्नाः पन्थानः सिद्धिहेतवः ।
 त्वय्येव निपतन्त्योघाः जाह्नवीया इवार्णवे ॥१०॥
 त्वय्यावेशितचित्तानां त्वत्समर्पितकर्मणाम् ।
 गतिस्त्वं वीतरागाणामभूयःसंनिवृत्तये ॥११॥
 केवलं स्मरणेनैव पुनासि पुरुषं यतः ।
 अनेन वृत्तघः शेषा निवेदितफलास्त्वयि ॥१२॥
 उदधेरिव रत्नानि तेजांसीव विवस्वतः ।
 स्तुतिभ्यो व्यतिरिच्यन्ते दूराणि चरितानि ते ॥१३॥
 अनवाप्तमवाप्तव्यं न ते किंचन विद्यते ।
 लोकानुग्रह एवैको हेतुस्ते जन्मकर्मणोः ॥१४॥
 महिमानं यदुत्कीर्त्य तव संह्रियते वचः ।
 श्रमेण तदशक्त्या वा न गुणानामियत्तया ॥१५॥

अभ्यासः

१. अर्थ-परिचयः—

- (क) 'अनर्थी प्रार्थनावहः', 'अजितो जिष्णुरत्यन्तम्', 'अजस्य गृह्णतो जन्म', 'स्वपतो जागरुकस्य' ।
 (ख) त्वय्यावेशितचित्तानाम् . . .

- (ग) लोकानुग्रह एवैको हेतुस्ते जन्मकर्मणोः ।
 (घ) स्तुतिभ्यो व्यतिरिच्यन्ते दूराणि चरितानि ते ॥

२. प्रश्नाः—

- (क) विश्वं कः सृजति, बिभर्ति, संहरति च ?
 (ख) कस्मिन् हि परस्परविरोधिनो गुणा वर्तन्ते, के च ते ?
 (ग) मनः कथं निगृह्यते ? योगिनः केनोपायेन ज्योतिर्मयमीश्वरं विचिन्वन्ति ?
 (घ) का नाम अभूयःसंनिवृत्तिः ?
 (ङ) विविधागमैर्निदिष्टाः पन्थानो नरं कुत्र नयन्ति ?
 (च) कस्य महिमा स्तोतुं न शक्यते ।
 (छ) अवाङ्मनसगोचरः कः ?

षोडशः किरणः

१६ इन्द्रार्जुनयोः संवादः

अथामर्षात्रिसर्गाच्च जितेन्द्रियतया तथा ।
 आजगामाश्रमं जिष्णोः प्रतीतः पाकशासनः ॥१॥
 मुनिरूपोऽनुरूपेण सूनुना ददृशे पुरः ।
 द्राघीयसा वयोऽतीतः परिक्रान्तः किलाध्वना ॥२॥
 जटानां कीर्णया केशैः संहत्या परितः सितैः ।
 पृक्तयेन्दुकरैरहः पर्यन्त इव संध्यया ॥३॥
 गूढोऽपि वपुषा राजन् धाम्ना लोकाभिभाविना ।
 ग्रंशुमानिव तन्वभ्रपटलच्छन्नविग्रहः ॥४॥
 जरतीमपि बिभ्राणस्तनुमप्राकृताकृतिः
 चकाराक्रान्तलक्ष्मीकः ससाध्वसमिवाश्रमम् ॥५॥
 अभितस्तं पृथासूनुः स्नेहेन परितस्तरे ।
 अविज्ञातेऽपि बन्धौ हि बलात्प्रह्लादते मनः ॥६॥

इन्द्राजुनयो सवाद.

आतिथेयीमथासाद्य सुतादपचिर्ति हरिः ।
विश्रम्य विष्टरे नाम व्याजहारेति भारतीम् ॥७॥
त्वया साधु समारम्भ नवे वयसि यत्तपः ।
ह्रियते विषयैः प्रायो वर्षीयानपि सादृशः ॥८॥
श्रेयसीं तव संप्राप्ता गुणसंपदमाकृतिः ।
सुलभा रम्यता लोके दुर्लभं हि गुणार्जनम् ॥९॥
शरदम्बुधरच्छाया गत्वयो यौवनश्रियः ।
आपातरम्या विषयाः पर्यन्तपरितापिनः ॥१०॥
अन्तकः पर्यवस्थाता जन्मिनः संततापदः ।
इति त्याज्ये भवे भव्यो मुक्तावृत्तिष्ठते जनः ॥११॥
चित्तवानसि कल्याणी यत्त्वां मतिरुपस्थिता ।
विरुद्धः केवलं वेषः संदेहयति मे मनः ॥१२॥
युयुत्सुनेव कवचं किमामुक्तमिदं त्वया ।
तपस्विनो हि वसते केवलाजिनवत्कले ॥१३॥
भयंकरः प्राणभृतां मृत्योर्भुज इवापरः ।
असिस्तव तपःस्थस्य न समर्थयते शमम् ॥१४॥
जयमत्रभवान्नूनमरातिष्वभिलाषुकः ।
क्रोधलक्ष्म क्षमावन्तः क्वायुधं क्व तपोधनाः ॥१५॥
मूलं दोषस्य हिसादेरर्थकामौ स्म मा पुषः ।
तौ हि तत्त्वावबोधस्य दुरुच्छेदावुपप्लवौ ॥१६॥
अभिद्रोहेण भूतानामर्जयन् गत्वरीः श्रियः ।
उदन्वानिव सिन्धूनामापदामेति पात्रताम् ॥१७॥
नान्तरज्ञाः श्रियो जातु प्रियैरासां न भूयते ।
आसक्तास्तास्वमी मूढा वामशीला हि जन्तवः ॥१८॥
तदा रम्याण्यरम्याणि प्रियाः शल्यं तदासत्रः ।
तदैकाकी सबन्धुः सन्निष्टेन रहितो यदा ॥१९॥
युक्तः प्रमाद्यसि हितादपेतः परितप्यसे ।
यदि नेष्टात्मनः पीडा मा सञ्जि भवता जने ॥२०॥

विजहीहि रणोत्साहं मा तपः साधु नीनशः ।
 उच्छेदं जन्मनः कर्तुमेधि शान्तस्तपोधन ॥२१॥
 जीयन्तां दुर्जया देहे रिपवश्चक्षुरादयः ।
 जितेषु ननु लोकोऽयं तेषु कृत्स्नस्त्वया जितः ॥२२॥
 विविक्तेऽस्मिन्नगे भूयः प्लाविते जह्नुकन्यया ।
 प्रत्यासीदति मुक्तिस्त्वां पुरा मा भूरुदायुधः ॥२३॥
 व्याहृत्य मरुतां पत्याविति वाचमवस्थिते ।
 वचः प्रश्रयगम्भीरमथोवाच कपिध्वजः ॥२४॥
 न ज्ञातं तात यत्नस्य पौर्वापर्यममुष्य ते ।
 शासितुं येन मां धर्मं मुनिभिस्तुल्यमिच्छसि ॥२५॥
 श्रेयसोऽप्यस्य ते तात वचसो नास्मि भाजनम् ।
 नभसः स्फुटतारस्य रात्रेरिव विपर्ययः ॥२६॥
 क्षत्रियस्तनयः पाण्डोरहं पार्थो धनंजयः ।
 स्थितः प्रास्तस्य दायार्दैर्भ्रातृज्येष्ठस्य शासने ॥२७॥
 कृष्णद्वैपायनादेशाद् विभर्मि व्रतमीदृशम् ।
 भृशमाराधने यतः स्वाराध्यस्य मरुत्वतः ॥२८॥
 दुरक्षान्दीव्यता राज्ञा राज्यमात्मा वयं वधूः ।
 नीतानि पणतां नूनमीदृशी भवितव्यता ॥२९॥
 सोढवाप्तो दशामन्त्र्यां ज्यायानेव गुणप्रियः ।
 मुलभो हि द्विषां भङ्गो दुर्लभा सत्स्ववाच्यता ॥३०॥
 धार्तराष्ट्रैः सह प्रीतिर्वैरमस्मास्वसूयत ।
 असन्मैत्री हि दोषाय कूलच्छायेव सेविता ॥३१॥
 अवधूयारिभिर्नीता हरिणैस्तुल्यवृत्तिताम् ।
 अन्योन्यस्यापि जिह्मीमः किं पुनः सहवासिनाम् ॥३२॥
 तावदाश्रीयते लक्ष्म्या तावदस्य स्थिरं यशः ।
 पुरुषस्तावदेवासौ यावन्मानान्न हीयते ॥३३॥
 गुरून् कुर्वन्ति ते वन्द्यानन्वर्था तैर्वसुंधरा ।
 येषां यशांसि शुम्भाणि ह्येपयन्तीन्दुमण्डलम् ॥३४॥

इन्द्राजुनयो सवाद

न सुखं प्रार्थये नार्थमुदन्वद्वीचिचञ्चलम् ।
नानित्यताशनेस्वस्यन् विविक्तं ब्रह्मणः पदम् ॥३५॥
वंशलक्ष्मीमनुद्धृत्य समुच्छेदेन विद्विषाम् ।
निर्वाणमपि मन्येऽहमन्तरायं जयश्रियः ॥३६॥
अनिर्जयेन द्विषतां यस्यामर्षः प्रशाम्यति ।
पुरुषोक्तिः कथं तस्मिन् ब्रूहि त्वं हि तपोधन ॥३७॥
स्वधर्ममनुसन्धन्ते नातिक्रममरातिभिः ।
पलायन्ते कृतध्वंसा नाहवान् मानशालिनः ॥३८॥
विच्छिन्नाभ्रविलायं वा विलीये नगमूर्धनि ।
आराध्य वा सहस्राक्षमयशःशल्यमुद्धरे ॥३९॥

अभ्यासः

१. समास-परिचयः—

जितेन्द्रियः, गुणसंपत्, तपोधनः, प्रश्रयगम्भीरम्, स्फुटितारम्, कृष्णद्वैपायनादेशात्, इन्दुमण्डलम्, विच्छिन्नाभ्रविलायम्, सहस्राक्षः ।

२. अर्थ-परिचयः—

अमर्षः, अयशःशल्यम्, जिह्मीयः, विविक्तम्, दुरक्षान्, दीव्यता, प्रास्तः, कृत्स्नः, कपिध्वजः, नभः, वर्षीयान्, व्याजहार ।

३. रूप-परिचयः—

(क) वर्षीयस्, नभस्, वयस्, श्रेयस्-शब्दानां प्रथमा-तृतीया-सप्तमीविभक्तिषु ।
(ख) वस्, जा, वच्, वद्, रुध्, शम्-धातूनां लटि, लिटि, लोटि च ।

४. प्रश्नाः—

(क) हिमगिरौ तपस्तपस्यवर्जुनः किमिति शस्त्राण्यधारयत् ?
(ख) अरिभित्त्यवकृतस्यापि अमर्षशून्यस्य नरस्य विषये अर्जुनस्य के विचाराः ?
(ग) मानिनां विषयेऽर्जुनस्य कानि खलूर्जस्विवचनानि ?
(घ) विजहीहि रणोत्साहं मा तपः साधु नीनशः ।
उच्छेदं जन्मनः कर्तुमेधि शान्तस्तपोधन ॥
क आशयोऽस्य दलोकस्य ? किमिति अर्जुनेन न स्वीकृतमेतत् ?

(४) गुरुन् कुर्वन्ति ते वक्ष्यामन्वर्था तैर्वसुधरा ।
येषां यसांसि शुभाणि ह्येप्यन्तीन्दुमण्डलम् ॥
अप्येतदभिमतं भवतः ?

सप्तदशः किरणः

१७ जवाहरलालस्येच्छापत्रम्

मदीयदेशस्य जनता, अत्रत्या भगिन्यो आतरश्च मयि एतावत् प्रेम, इयन्तं च स्नेहं प्रदर्शितवन्तो यदहं यावच्छक्तिं प्रयतमानोऽपि अस्याणीयसोऽप्यंशस्य निष्कृतिं कर्तुं नालम् । प्रेम हि नाम तदनर्थं वस्तु यस्य प्रतिकरो विचारस्याप्यगोचरः । नियतमस्मिन् जगति बहवो जना भावितात्मान इति, प्रभविष्णव इति वा बहुमानमलभन्त अभ्यर्चिता वा अभवन्; परं भारतीयैर्जनैः कनिष्ठैर्ज्येष्ठैः, धनिकैर्निर्धनैः, सर्वधर्मानुगैर्भ्रातृभिर्भगिनीभिश्च मयि एतावान्-भिस्नेहो वितीर्णो यदयमविषयो वर्णनस्य । बलवदवनतश्चाहमस्य भारेण । आशंसे यदहमात्मनो जीवितस्यावशिष्टासु समासु स्वदेशवासिनां शुश्रूषाभिरतो भूत्वा तेषामस्याभिष्वङ्गस्याहो भवेयम् ।

अगणितानां सुहृदां सहकारिणां च मयि इतोऽप्यधिकतरा उपकृतयः । नूनं गुरुषु समारम्भेषु वयं संहिता एवातिष्ठाम, सर्वेषु समुद्योगेषु एकीभूय प्रायतिष्ठमहि, तानि तानि च कार्याणि संहता एवाकार्ष्म । स्वाभाविकमिदं यद् दुरुपपादेषु समारम्भेषु साफल्यमुपनमेद-साफल्यं वाप्यनुपतेत् । परं तेषु सर्वेषु वयं सफलताजनिते उल्लासे असाफल्यकृते अवसादे च सुसंहता एवातिष्ठाम ।

इच्छाम्यहं, मनसा चेदं कामये यदुपरते मयि मन्निमित्तं नैकमपि (निवापादि) कृत्यमनुष्ठीयेत् । न ह्यस्ति म एतादृशेष्वनुष्ठानेष्वदरः । केवलं परंपरेति तेषामनुपालनं तु वञ्चनामात्रम् ।

मनीषितं च ममेदं यत्प्रायणोत्तरं मम शरीरं भस्मीक्रियेत । विदेशे मयि दिष्टभावं गते तु ममौर्ध्वदेहिकं तत्रैव निर्वर्त्य ममास्थीनि प्रयागं प्राप्येरन् । तेषां मुष्टिमात्रं गङ्गायां विसृज्येत, तेषां भूयसोऽंशस्य किं क्रियेतेति तु नचिरादावेदयामि । न जातु तेषामणिष्ठोऽपि लवो-नुशेषणीयोऽनुरक्षितव्यो वा ।

गङ्गायामस्थिविसर्जनेच्छाया मूले, मन्मतानुसारं नैवास्ति कश्चिद् धार्मिको विचारः, न चाप्यस्ति काचिद् धार्मिकी भावना । बाल्यादेव प्रयागोपान्ते प्रवहन्त्यां गङ्गायां यमुनाया चास्ति मे गरीयानभिनिवेशः । यथा यथाहं वृद्धिमुपगतस्तथा तथैवायमभिनिवेशोऽप्युप-
च्रितिमायातः । नूनमालोकितोऽत्र मया रमणीयानामन्तः । प्रैक्षिष्यहं भूयोभूयः ऋतूनां परिक्रमेण साकमनयोः परिवर्तमाना भावभङ्गीः, असकृद् व्यभावयं तमितिहासं, ताश्च परंपराः, ताश्च पुराणकथाः, तानि च गीतानि, तानि चाख्यानकानि यानि युगानुयुगं ताभ्यामवसक्तानि तयोः प्रवहन्तीनामपां चात्मभूतानि ।

गङ्गा तु सविशेषं भारतीया सरित्, बलवदुत्कण्ठितश्चास्यां भारतीयो लोकः । नियतमुपगूहन्त्येतां भारतस्य जातीयाः स्मृतयः, तस्याशाः, तस्याशङ्काः, तस्य विजयोदाहरणानि, तस्य जयाः, पराजयाश्च ।

ध्रुवमियं गङ्गा प्रतीकमस्ति भारतीयायाः सनातनसंस्कृतेः सभ्यतायाश्च—अनारतं परिवर्तमाना, सततं प्रवहन्ती, परं सदा सैव गङ्गा । स्मारयतीयं मां प्रालेयाद्रेहिमाच्छन्नानि शिखराणि, तस्य गहना उपत्यका येष्वस्म्यहं गाढमनुरक्तः, तस्योपकण्ठे प्रसृतानि स्फूर्तानि क्षेत्राणि येषु मे जीवितं चरितं चाभिषक्तम्—गङ्गा, आरुणे आलोके उत्समयमाना, प्रोच्छलन्ती, सायंतने तमसोऽवतारे च म्लानिमुपयाता, श्यामायमाना, रहस्यनिचिता च, हेमन्ते तनुप्रवाहा मन्थरस्तिमितप्रसरा धारावशेषा, वर्षासु पुनर्जीवला, सुविपुला, अर्णव इव पृथुपीनवक्षाः, समुद्र इव प्रध्वंसनं प्रवेदयन्ती । अस्तीयं मत्कृते भारतीयानामतीतस्य स्मृतेश्च प्रतीकम्—अभि-
प्रवहन्ती वर्तमानं प्रपतिष्यन्ती चानागत (—काल—)सागरम् । कामं निरस्ता मया भूयस्यः प्राचीनपरंपराः, अपोहिताः पुरातनरूढयः, आकुलाकुलश्चाहं यद्यं देश एताः शृङ्खला उद्वर्तयेद् यास्वयं निगडितः परिहृष्टश्चावसीदति, याश्चात्रत्यान् लोकान् मिथो विघटयन्ति, परिदुन्वन्ति, प्रतिरुन्धन्ति त्रैषां शारीरिकमात्मिकं च समुदयम् । यद्यप्यहमिदं भूयिष्ठमभिकामये तथापि न जात्वभिलषामि आत्मानमेताभ्यः पुराणपरंपराभ्यः एकान्तेन व्यपनेतुम् । ध्रुवमस्ति मे बलीयानभिमानोऽस्मिन् स्फीते रिक्ते यदस्माकमासीदस्ति चाद्यापि । दृढं चैतदवैम्यहं यदन्यजनवदहमपि अस्या अविच्छिन्नायाः शृङ्खलाया एको बन्धः या प्रतिसर्पति भारतेतिहासस्य स्मृत्यगोचरमुषःकालम् । नाहमुत्सहे इमां खण्डयितुम् । अङ्ग, अस्तीयं मे परमः श्रेष्ठिः । इयमेव च मम प्रेरणानां प्रभवः । मम तस्या अभिकाङ्क्षायाः साक्षित्वेन भारतीयसंस्कृति-
रिक्ताय ममान्तिमप्रणतिरूपेण चेदमभ्यर्थये यन्मम भस्मतो मुष्टिप्रमाणं प्रयागे गङ्गायां प्रवाह्येत येनेदं भारतस्य परिमण्डनं (हिन्द-)महासागरमभिसरेत् ।

भस्मनोऽवशेषस्य किं क्रियेत? आशंसे यदिदं व्योमयानेनोच्चैरुन्नीय कणशस्तेषु क्षेत्रेषु विकीर्येत येषु पांसुपरुषा भारतीयाः कृषका नक्तंदिवा प्रयस्यन्ति येनेदं भारतस्य रजसा मृदा च समुन्मिथ्य तस्यैवाभिन्नमङ्गं संजायेत ।

अभ्यासः

१. अर्थ-परिचयः—

प्रभविष्णवः, समासु, अभिष्वङ्गः, समारम्भः, विष्टभावः, अवसादः, सुसंहताः, उपरतः, और्ध्वदेहिकम्, तचिरात्, अभिनिवेशः, व्यभावयम्, अवसक्तम्, उपकण्ठे, जीवला, अपोहिताः, परिदुन्वन्ति ।

२. प्रश्नाः—

- (क) भवान् जवाहरलालस्येच्छापत्रे किं वैशिष्ट्यं पश्यति?
- (ख) को विचारो गङ्गायमुनयोर्विषये जवाहरलालस्य?
- (ग) संहतेर्विषये जवाहरलालस्य के विचाराः?
- (घ) और्ध्वदेहिकेभ्योऽनुष्ठानेभ्योऽयं किमिति उपरतः?
- (ङ) प्राचीनानां परंपराणां विषये अस्य विपश्चितः को विचारः?
- (च) यद्यनेनापाकृताः प्राचीनरूढयस्तर्हि किमित्यग्रमेकान्तेन ता न तिरस्करोति?
- (छ) आधुनिकभारते जवाहरलालस्य किं महत्त्वम्?
- (ज) जवाहरलालस्य जीवनं संक्षेपेण आचयतु ।

भास्करी

प्रथमः उन्मेषः

प्रथमः किरणः

आचार्यः वेदाध्यापक, गुरु; a teacher. आ+√चर्+ण्यत् । देखो—
उपनीय तु यः शिष्यं वेदमध्यापयेद् द्विजः ।
सकल्पं सरहस्यं च तमाचार्यं प्रचक्षते ॥
मनु० II. 140.

ब्रह्मचारी ब्रह्म वेदः, तदध्ययनार्थं व्रतमपि ब्रह्म, तच्चरतीति; वेद पढ़ने के व्रत वाला;
a student, a celibate.

असत्: असत्=न+सत्; मिथ्या; unreal.

तमसः तमस्=अन्धकार, अज्ञान; darkness, ignorance.

ज्योतिस् प्रकाश; light.; रूप—ज्योतिः ज्योतिषी ज्योतींषि ।

अनुशास् अनु+√शास्=शिक्षा देना; to instruct, to teach.

स्वाध्यायः स्वमध्ययनं, स्वस्य (वेदस्य)अध्ययनं वा; धर्मग्रन्थ अथवा वेद का अध्ययन;
study of the sacred texts of the Vedas.

प्रसवितव्यस् प्र+√मद्=आलस्य करना, ध्यान न देना; to be negligent. प्रमादार्थक
धातुओं के साथ पञ्चमी विभक्ति होती है : धर्मात् प्रमाद्यति ।

पन्थाः पथिन्; मार्ग; way. तु०—पान्थः=पन्थानं नित्यं गच्छति; a traveller.
रूप—पन्थाः पन्थानौ पन्थानः ।

मातृदेवः माता है देवता जिसका (बहुव्रीहि), माता को देव के समान पूजने वाला;
adoring mother like a god.

द्वितीयः किरणः

वर्त्मनि वर्त्मन्=मार्ग, रास्ता; way, road. रूप—वर्त्म, वर्त्मनी, वर्त्मानि ।

परिश्रान्तः परि+श्रम्+त, थका हुआ; tired. तुलना करो—परिश्रान्तः ।

धनुष्काण्डम्	धनुष और तीर a bow and an arrow
आतपन	आ+√तप्+अ; गरमी, धूप; heat, sunshine.
निर्भरनिद्रासुखिना	निर्भरया निद्रया सुखी; गहरी नींद से सुखी; happy with deep sleep.
व्यादानम्	वि+आ+√दा; खोलना; to open. मुखव्यादानम्=मुंह खोलना। तु०—मुखं व्याददाति=मुंह खोलता है।
असहिष्णुः	न+सहिष्णुः; जलने वाला; envious. तु०—आजिष्णुः; रोचिष्णुः; प्रभविष्णुः।
व्यापादितः	मारा गया; killed; वि+आ+√पद्+त, णिजन्त।
पुरीषोत्सर्गम्	पुरीषस्य उत्सर्गः; वीट फेंकना; the voiding of excrement.
दुर्जनसंसर्गम्	दुर्जन की सौहृदत; the company of the wicked.
अहोरात्रम्	अह्नि च रात्रौ च (द्वन्द्व); दिनरात; day and night. तु० अहर्दिवम्= अह्नि च दिवा च; रात्रिदिवम्=रात्रौ च दिवा च। अहश्च रात्रिश्चाहोरात्रः।

तृतीयः किरणः

प्रत्यहम्	प्रति+अहन्=अहः अहः प्रति; daily, day by day. तु०—प्रत्यर्थम्।
अन्योन्यम्	परस्पर; one another, each other.
आमन्त्र्य	आ+√मन्त्र्=परामर्श करना, विचार करना; to converse, to deli- berate. तु०—निमन्त्रणम्=invitation.
उपकल्पितम्	उप+√क्लृप्+त; भेजा गया, निश्चित; allotted, assigned.
विनीतिः	विनय; modesty.
उपरोधः	उप+√रुध्; रुकावट, बाधा, विलम्ब; impediment, detention, obstruction. तु०—अवरोधः and अवरोधि गौर्गोपालेन।

भास्करी

अपराधः	अप+√राध्, राध् 'संसिद्धौ'; offence, fault, mistake. तु०— अपराधः—अपराधं कृतवान्
समयः	सम्+√इ+अ, √इ 'गतौ'; समज्ञौता, प्रतिज्ञा; agreement, promise.
विदशन	वि+√दश्, शक्न्त; पीसता हुआ; biting.
दर्पध्मातः	दर्पेणाभिमानेनाध्मातः; धमण्ड में चूर, अभिमान से फूला हुआ; puffed up with pride.
मदोन्मत्तः	मदेन उन्मत्तः, उद्+√मद्+त; धमण्ड में चूर; intoxicated with pride.

चतुर्थः किरणः

सुहृद्	सु+हृद्, मित्र; a friend, cordial. सु सुष्ठु समीचीनं हृदयं यस्य; (तुलना करो—हुहृद्)
भात्रयन्तः	√भू+णिच्+शतृ; आदर करता हुआ; cherishing.
स्मयमानाः	√स्मि, आत्मनेपदे शानच्; मुस्कराता हुआ; smiling.
उत्थानमनसः	उत्थाने मनो यस्य, उद्+स्था; उत्थान अर्थात् उत्साह में है मन जिसका, उत्थानमनाः, (प्रचेतस् की तरह); diligent, ambitious.
निरामयाः	आमयरहित, नीरोग, निष्पाप; free from disease.
कर्मारामाः	कर्म+आरामः; कर्म में है प्रसन्नता जिसकी; delighting in work.
विरोधः	वि+√रुध्+अ; बाधा; रोक; hindrance, suppression.
भूतिमन्तः	भूतिमान्=समृद्धिवाला, समृद्ध; prosperous, happy.
तपोनिष्ठाः	तपसि निष्ठा यस्य; तपस्या में है लगन जिसकी, तपस्या में रत; busy with penance.

संस्कृतोदय

पञ्चमः किरणः

कृतघ्नः	कृतं हत्तीति; किये को न माननेवाला; ungrateful; विप०—कृतज्ञः ।
अटवी	वन; forest.
उदजः	पर्णशाला; झोंपड़ी, कुटिया; a hut, a cottage.
शवकः	शवः; पशु का बच्चा; the young of an animal.
जातकारुण्यः	पैदा हो गई है करुणा जिसमें (बहुत्रीहि), दयाद्रै; moved with pity.
मूषकनिर्विशेषम्	मूषकात् निर्विशेषम्; मूषक से अभिन्न; without distinction from a rat.
बलिष्ठः	बली, बलीयान्, बलिष्ठः; अत्यन्त बलवान्; very strong.
सव्यथः	व्यथया सहितः, दुःख के साथ; with agony, with anxiety. तु०— अव्यथः=न व्यथा यस्य सः ।
चिकीर्षितम्	√कृ+सन्, चिकीर्षा=करने की इच्छा; अभीष्ट, अभिप्राय; desire, intention, design.
श्लाघ्यपदम्	श्लाघ्यं पदम्=स्थानम्; उच्च स्थान; commendable position, high status.
उपचक्रमे	उप+√कृ=उपक्रमते; तैयारी करना, प्रयत्न करना; to set about, begin. तु०—परचक्रमते ।

षष्ठः किरणः

पर्वतराजः	पर्वतानां राजा; पर्वतों में श्रेष्ठ; lord of the mountains, the Himālayas.
मानदण्डः	मीयतेऽनेनेति मानम्, मानार्थो दण्डः; मानदण्डः; नापने का डण्डा; a measuring rod.
श्रेष्ठः	अत्यन्त प्रशस्त; तुलना करो—प्रशस्त्य, श्रेयस्, श्रेष्ठ; the best.

भास्करी

आच्छादयति	आ+√छद्+त; ढके हुए; covered.
हिमः	बर्फ; snow. तु०—हिम्यः पर्वतः=हिमवानित्यर्थः।
मेखला	कटिबन्ध; पर्वत की ढलान; girdle, the slope of a mountain.
अद्य	अस्मिन्नहनि; today.
नक्तम्	रात को, रात में; at night, by night.
स्वामिन्	स्वमस्येति. धनवाच्यत्र स्वशब्दः; धनवान्; rich.
अधुना	अस्मिन् काले; now. तु०—इदानीम्=अस्मिन् काले।
पादपः	पादेन पिवति; पेड़, वृक्ष; a tree.
कियान्	किं परिमाणमस्य; how much.
गुल्मः	कुञ्ज, झाड़ी; a cluster of trees, a thicket.
कस्तूरीमृगः	कस्तूरी वाला मृग; the musk-deer.
आह्लादनम्	आह्लादयतीति, आ+√ह्लाद्; आनन्ददायक, मनोरम; gladdening, delighting.
अनुतीरम्	तीरस्य अनु (अव्ययीभाव); तीर के बराबर-बराबर; तु०—अनुगङ्गां वाराणसी; गङ्गा के बराबर-बराबर; along the bank.
धूतकल्मषः	धूतं कल्मषं यस्मात् सः, पापरहित; free from sin, who has shaken off his sins.
प्रभवः	प्र+√भू, प्रसूतिः, कारण; उत्पत्ति-स्थान, स्रोत; origin.
विविक्तम्	वि+विच्+त; एकांत, शून्य; lonely, detached.
धरणी	√धृ 'धारण करती', धरतीति; धरती; the earth.
सनातनः	सदातनः, भगवान् शिव, प्रथमदेवता; eternal, the primaeval being, Śiva.

संस्कृतोदय

तिग्मतेजा तिग्मतेज यस्य स तिग्म $\sqrt{\text{तिज}}$ to sharpen तान् ज्योति वाना
of resplendent lustre

भूरिदक्षिणैः अधिक दक्षिणा वाले; attended with rich presents.

ऋभिः ऋनु=यज्ञ; sacrifice.

सप्तमः किरणः

मनोहारि मनः हर्तीति, प्रिय, रुचिकर, अनुकूल; agreeable, pleasing.

विभूतिः संपत्ति, वैभव, शक्ति; riches, greatness.

आर्जवम् ऋजोभावः, ऋजुता; straightforwardness.

आपद् (स्त्री०) आ+ $\sqrt{\text{पद्}}$, आपद्यते इति; आ पड़ने वाली, विपत्ति,
दुर्भाग्य, कठिनाई; a calamity, misfortune, danger.

निस्पृहः निर्गता स्पृहा यत्मात् अथवा निष्क्रान्तः स्पृहायाः, स्पृहारहितः, इच्छारहित;
जिसे कोई चाह न हो; free from desire, indifferent, disinterested.

ऋते विना; without.

केवलाघः केवल+अघः, कोरा पापी; all-guilt. केवलम्=कृत्स्नम्।

केवलादी केवल अर्थात् अकेला खाने वाला; eating by oneself alone. केवल=
एक। तु० औदारिकः a glutton.

अष्टमः किरणः

दम्पती जाया च पतिश्च, पति-पत्नी; couple, husband and wife.

अपत्यम् वच्चा, संतान; offspring, child, progeny.

संततिः सम्+ $\sqrt{\text{तन्}}$ +ति; संतान, वच्चा; offspring, progeny.

भृत्यः नियोज्य, कर्मकर, (भर्तव्यः); सेवक; आश्रित जन; a servant, a
dependent.

भास्करी

विषधरः	विषम् धरतीति; विषवाला, साँप; a snake.
विग्रहः	लड़ना, झगड़ना; quarrel, fight.
आसन्नः	आ+√सद्+त, (तु०—आपन्न) ; निकटस्थ, पास का; adjacent, adjoining.
कनकसूत्रम्	कनकनिर्मितं सूत्रम्; सोने का हार, सोने की माला; a golden necklace.
दुषद्	पत्थर, शिला; a stone, rock.

तवमः किरणः

अनर्थः	त+अर्थः, विपत्तिः; कठिनाई, परेशानी; a reverse, calamity, misfortune.
पीनपृथुलः	पीनश्च पृथुलश्च; मांसल और भारी-भरकम; fleshy and huge.
मासचतुष्टयम्	मासानां चतुष्टयम्; चार महीने; for a period of four months.
करिन्	करोज्यास्तीति; हाथी; an elephant. तु०—कुञ्ज-रः, हस्ती (कुञ्जशब्देन हस्तिहनुच्यते) ।
वञ्चकः	धूर्तः; धोखेवाज, (√वञ्च् 'टेढा चलना') ; deceitful; crafty. तु०—वक्रः चन्द्रमाः ।
संपन्नः	सम्+√पद्+त (तु० विपन्न) ; समृद्ध; perfect, endowed with.
अभिषेकः	अभि+√सिच्; राजगद्दी पर बिठाना; anointing, crowning.
व्याधः	विध्यतीति, √व्यध् 'वीधना', बहेलिया; a hunter. तु०—मृगयुः
अत्येति	अति+√इ=निकल जाना, बीत जाना; to pass, past, go away
गाढम्	√गाह्+त; अत्यन्त; excessively, extremely, closely.
यथाजोषम्	√जुष् 'please'; इच्छा के अनुसार; according to one's wish.

संस्कृतोदय.

संनद्धः	सम्+√नह्+त, (तु०—बद्ध) ; तैयार, तत्पर ; ready, prepared.
आदेशय	आ+√दिश्=दिखाना, संकेत करना ; point out, show.
महापङ्क्तः	महाश्चासौ पङ्क्तश्च ; गहरा कीचड़, दलदल ; thick mud, mire.
महोत्सेधः	महान् उत्सेधः यस्य सः, उद्+सिष् ; अधिक ऊँचाई वाला, विशालकाय ; possessing great height, excessively huge.
राज्यम्	राज्ञो भावः कर्म वा, यक् प्रत्ययः, राजकर्म, गद्दी ; kingship, rule, kingdom.
अवासीवत् = अव-असीदत्	अव+सद् गिरना, डूबना ; to sink down, fail.
विप्लुतः	वि+√प्लु+त ; डूबा हुआ, फँसा हुआ ; drowned, drifted about, submerged.
उत्तारः	उद्+√तृ ; पार कराने वाला, बचाने वाला ; redeemer, saviour.
उच्छ्रूनाक्षः	उच्छ्रूने अक्षिणी यस्य ; उद्+√श्रि+त ; फूल गई हैं आँखें जिसकी ; with eyes dilated.
विप्रलब्धः	वि+प्र+√लभ्+त ; छगा गया, वञ्चित ; cheated, injured. तु०—विप्रलुब्ध=allured, deceived.
उत्कृत्य	उद्+√कृत्+त्यप् ; काटकर ; cutting to pieces.

वशमः किरणः

धाराधरः	धाराणां धरः, √धृ ; बादल ; a cloud, holder of streams.
दिवसकरः	दिवसं करोतीति, सूर्यः ; the sun.
निदानम्	कारण ; cause, reason.
खगोलतत्त्वविशारदाः	खगोलस्य तत्त्वे विशारदाः ; आकाश का ज्ञान रखने वाले ; astronomers.
कपिशः	भूरा ; brown, reddish-brown.

भास्करी

चित्रः	√चित्+र; जो एकदम दीख पड़े, बहुरंगा ; of variegated colour ; तु०—विचित्र=wonderful.
दिनकरमण्डलम्	दिनकरस्य मण्डलम्; सूर्य का गोल घेरा ; the circular orb of the sun.
वर्तुलत्वम्	√वृत् 'घूमना', गोलपन, गोल होना; being round.

एकादशः किरणः

महारिपुः	महांश्चासौ रिपुश्च; बड़ा शत्रु; great enemy.
पुरुषकारः	पुरुषस्य करणम्, परिश्रम, पुरुषोचित कर्म; human effort, manly act.
दैवम्	देवेन कृतम्, भाग्य; fate, destiny.
अवसादयेत्	अव+√सद्+णिच्; हतोत्साह करना, नष्ट करना; to render down-hearted, to ruin.
व्यवसायिनाम्	वि+अव+√सो 'प्रयत्न करना'; उत्साही, परिश्रमी, लगनवाला; energetic, industrious, diligent.
उद्यमेन	उद्+√यम्=उद्यम करना; उद्यच्छेत्=उद्यम करे; तु०—उद्यच्छति वेदम्='वेद को जानने का यत्न करता है।'
अपर्वणि	न+पर्वणि; बुरे जोड़ में; in a bad joint.

द्वादशः किरणः

व्याधः	वि+व्यतीति; √व्यध् 'मारना'; तु०—मृगयुः=मृगान् यातीति।
छिन्नद्रुमः	छिन्नश्चासौ द्रुमश्च; कटा हुआ पेड़ (√छिद्+त); a cut-down tree.
व्याधिः	वि+आ+√धा; बीमारी; disease. तु०—आधिः=मानसिक बीमारी।
पादास्फालनम्	पादस्य पादयोर्वा आस्फालनम्; पैर की चोट; striking of feet.
जरज्जम्बुकः	जरंश्चासौ जम्बुकश्च, जरत्+जम्बुकः, √जृ+अतृन् (भूतार्थे)=जीर्णः, बूढ़ा सियार; old jackal.

संस्कृतोदय

पिशितार्थी	पिशित+अर्थी, पिशितमर्थयते इति, मांस के लिए लालायित, मांस चाहने वाला; seeking or desirous of flesh.
अपगतासुः	अपगताः असवः यस्मात्, प्राणहीन; lifeless, dead.
दिष्ट्या	सौभाग्य से, संयोगवशः; fortunately, luckily.
प्रभूतम्	प्र+√भू+त, अधिक, प्रचुर; much, abundant.
अतिरिच्यते	अति+√रिच्=बढ़कर होना; to surpass, excel, be superior to.
धनुर्गुणः	धनुषो गुणः; धनुष् की डोरी; string or chord of a bow.
बुभुक्षा	√भुज्+सन्; खाने की इच्छा; desire of eating, hunger.
कोदण्डः	धनुष्; a bow.
स्तायुबन्धनम्	स्तायोः बन्धनम्; ताँत का बन्धन; the binding (or string) of sinew.

त्रयोदशः किरणः

सहसा	सहस् का तृतीयान्त क्रिया-विशेषण; तु०—रभसा, तरसा; अचानक, बिना विचारे, जल्दी से; rashly, inconsiderately.
उपसर्पन्	उप+√सृप्=समीप जाना, पास आना; to approach, move towards, draw near.
अवधार्य	अव+√धृ=निश्चित करना, समझना; to determine, to understand.
सुस्थः	सु+√स्था, सुष्ठु तिष्ठतीति, सुरक्षित; सही-सलामत; well, sitting well, existing safely. तु०—स्वस्थः; समस्थः ।
विमृश्यकारिन्	विमृश्य कर्तुं शीलं यस्य; सोच-विचार कर कार्य करने वाला, विवेकी; acting after due consideration.
गुणलुब्धः	लुभ्+त; गुणों से आकृष्ट; attracted by virtues or merits.



भास्करी

चतुर्दशः किरणः

प्रजापतिः	ब्रह्मा; जीवों का स्वामी; Lord Brahmā, the Lord of creatures.
अवसीयेत	अवसानं प्राप्नुयात्, समाप्त हो जाय; may come to an end.
उत्क्रान्तः	उद्+√कृम्+त, (तु०—निष्क्रान्तः), निकला हुआ, चला गया; gone forth, departed.
प्रोष्य	प्र+√वस्+ल्यप्; बाहर रहकर; having gone away, having been absent.
अधिष्ठाता	अधि+√स्था+तु, प्रमुख, सर्वोपरि, शासक; superintendent, chief, ruler.
विधेयः	वि+धा+य, नियोज्यः कर्मसु; आश्रित, सेवक, अधीन; dependent, servant.

पञ्चदशः किरणः

अजरामरवत्	अजर+अमर+वत्; अजर=not subject to old age; अमर=not subject to death; अजर और अमर के समान; like one ever young and immortal.
अहार्यत्वात्	न+हार्यत्वम् (√हृ); चुराने या छीनने योग्य न होना; not to be stolen.
अनर्घत्वात्	अनर्घम्=अमूल्यम्; अमूल्य, अमोल; invaluable, priceless;
प्रतिपत्तये	प्रति+√पद्+ति; ज्ञान, उपलब्धि; acquisition.
संशयोच्छेदि	संशय+उच्छेदि, संशयस्योच्छेत्तु=उत्+√छिद् 'काटना'; संदेह को दूर करने वाला; destroying doubt, dispeller of doubt.
परोक्षार्थस्य	परोक्षः अर्थः, परोक्षम्=अक्ष्णः परम्; beyond the range of sight; गूढ़ अर्थवाला, रहस्य; having a secret meaning.

संस्कृतोदयः

षोडशः किरणः

तृषार्तः	तृषया आर्तः (√आ+ऋ+त); प्यास से व्याकुल, प्यासा; suffering from thirst, thirsty.
आर्तः	आ+√ऋ+त; दुःखी, afflicted.
युगपद्	एक साथ, एक ही समय, साथ-साथ; simultaneously, all at once, at the same time.
अतिरभसपादपाताहतिभिः	अतिरभसानां पादपातानामाहतिभिः; बहुत तेज पौर पड़ने की चोटों से; by the injury caused by the fall of the exceedingly rapid steps.
लूनम्	√लू+त; काटा गया; cut.
प्रकरः	प्र+√कृ; ढेरी, राशि; heap, collection.
गोमणः	गवां गणः, बैलों का समूह; the flock of bullocks.
अवमदितः	अव+√मुद्+त; णिजन्त; पीसा गया, दबाया गया; crushed, pounded.
विपासा	√पा+सन्, पातुमिच्छा; पीने की इच्छा; thirst.
नियतम्	नि+√यम् त, (क्रियावि०); निश्चय ही; अवश्य ही; surely, certainly.
उदस्येत्	उद्+√अस्; नष्ट होना, फेंक दिया जाना; to destroy.
विषण्णमनस्	विषण्णं मनो यस्य सः, (वि+सद्+त), दुःखी, निराश; dejected, sorrowful, sad.
डिम्भलीलया	डिम्भस्य लीला, डिम्भ=a young child; शिशु की क्रीडा, बच्चे का तमाशा; अनायास, a child's play, easily.
द्रावयामि	√दु 'भागना', णिजन्त, भगाना; to cause to run away.
भुजंगमः	भुजं कुटिलं गच्छतीति; सर्प, साँप; पन्नग (=पदा न गच्छतीति); उरग (=उरसा गच्छतीति); a snake.



भास्करी

अनुष्ठिते	अनु + √स्था + त; कृते सति; किये जाने पर।
प्रैषः	प्र + एष; आज्ञा, आदेश; command, direction.
शशाङ्कः	शसः अङ्के यस्य सः, चन्द्रमा; the moon.
अनतिक्रमणीयः	न + अतिक्रमणीयः; न तोड़ा जाने योग्य; अनुलङ्घनीय; inviolable, not to be transgressed.
अपचरिष्यति	अप + √चर् = गलती करना; to act wrongly.
परिसरः	परि + सृ = to follow round; आसपास का प्रदेश, परिधि; borders, environs, neighbourhood.
मृत्पिण्डमतिः	मृदः पिण्डः मृत्पिण्डः, तद्वत् मतिर्यस्य सः, मूर्ख, बुद्धिहीन, जड़बुद्धि; blockhead, fool.

सप्तदशः किरणः

श्रौदार्यम्	उदारस्य भावः, उदारता, महत्ता, दयाशीलता; generosity, magnanimity.
बोधिसत्त्वः	बोधि (ज्ञानम्) सत्त्वं (सारः) यस्य सः बोधि + सत्त्वः, बुद्ध; परमज्ञान की प्राप्ति में लगा हुआ; Buddhist saint, Buddha, one who is on the way to attaining perfect knowledge.
अभिजाते	अभि + √जन् + त; कुलीन, उच्च; noble, of noble descent.
जातकर्म	जातस्य कर्म; बच्चे के जन्म पर किया जाने वाला संस्कार; ceremony performed after the birth of a child.
प्रकृतिमेषाधित्वात्	प्रकृत्या मेषाधित्वम्; स्वभाव से ही प्रतिभासंपन्नता, जन्म से ही तीक्ष्ण बुद्धि से युक्त होना; being possessed of intelligence by nature.
पारदृष्टवा	पारं दृष्टवान्; √दृश् + क्वनिप्; जिसने पार देख लिया है, विद्वान्, पूर्ण ज्ञाता, किसी विषय का मर्मज्ञ; perfect master. तु० अनूचानः = वेदस्यानुवचनं कृतवान्।

संस्कृतोदयः

प्रव्रज्य	प्र+√व्रज्, बाहर जाना, यात्रा करना, चले जाना। तु० परि+व्रज्, परिव्राट्=परित्यज्य सर्वं व्रजतीति।
व्यालः	वि+आ+√वृ 'गतौ', सर्पः; a snake.
निवृत्तपरस्परद्रोहाः	निवृत्तः परस्परं द्रोहो येषाम्; दूर हो गया है आपसी बैर जिनका; having abandoned mutual enmity.
परिग्रहः	परिवार, सेवक इत्यादि, कुटुम्बी लोग; retinue, members of family, the household. तु० "पत्नीपरिजनादानमूलशापाः परिग्रहाः" इति हलायुधः।
अन्तेवासिता	शिष्यत्वम्, शिष्यत्व; अनुयायी होना, the state of pupilage.
सत्यसंगरः	सत्यः संगरो यस्य; (सम्+√गृ) सत्य वचनवाला, प्रतिज्ञा का पालन करने वाला; true to promise, veracious.
पर्वतदरीनिकुञ्जान्	पर्वतानां दर्यश्च निकुञ्जाश्च तान्; पर्वत की गुफाएँ और लताकुञ्ज; the caves or valleys of the mountain and the bowers.
गिरिगह्वरे	गिरेः गह्वरे; पर्वत की गुफा में; in the cave of the mountain.
प्रत्यग्रप्रसूतियन्त्रणाकशिता	प्रत्यग्रा प्रसूतिः, तस्याः यन्त्रणया कुशलां प्रापिता; प्रत्यग्रा=हाल की, recent; प्रसूतिः=जन्म, delivery. यन्त्रणा—पीडा; pain, trouble; हाल की प्रसव-पीडा से सताई गई; afflicted with the trouble caused by recent delivery.
कष्टम्	√कष्+त, दुःखं तत्कारणं च, कषितमन्यत्; trouble.
परिक्षामेक्षणा	परिक्षामे ईक्षणे यस्याः, क्षाम=√क्षै 'क्षये'+क्त; कमजोर हो गई हैं आखें जिसकी; of emaciated look or sight.
त्वगस्थिमात्रम्	त्वक्+अस्थि एव त्वगस्थिमात्रम्; चमड़ी एव हड्डियों का ढाँचा; अत्यन्त दुबली, जिसके शरीर पर मांस न रह गया हो; possessing merely skin and bones, a bag of bones, quite emaciated.
अद्रिराट्	अद्रिषु राजते इति; पर्वतों में श्रेष्ठ, बड़ा पहाड़; the great mountain, lord among the mountains. रूप—अद्रिराट्, अद्रिराजौ, अद्रिराजः।

भास्करी

संसारपर्ययः	संसारस्य पर्ययः, संसार की परिवर्तनशीलता; change of the world.
तनयः	√तन् 'विस्तार,' पुत्र; a son.
मृग	मृगयते; खोजना, ढूँढना; to seek, to search for. तु० मृगयुः= मृगान् यातीति, व्याधः; a hunter.
विवक्ष्णः	विवक्ष्ण इति; बुद्धिमान्, विद्वान्, चतुर; wise, learned, circumspect. तु० सुप्रव्यः=सुप्रवक्ष्ण इति ।
अशुचि	न+शुचि, अपवित्र; impure.
तटप्रपातोत्क्रान्तजीवितेन	तटात् प्रपातः, तेन उत्क्रान्तं जीवितं यस्मात् तेन; तट से गिरकर छूट गया है जीवित जिसका; devoid of life on account of a fall from the bank.
उत्क्रान्तजीवितम्	उत्क्रान्तं जीवितं यस्मात् तत्, निर्जीव; मरा हुआ, प्राणहीन; lifeless, devoid of life.
क्षुन्निवारणम्	क्षुधः निवारणम्; सूख का निवारण; quenching hunger.
विस्मापयन्	वि+√स्मि, णिजन्त; विस्मयं प्रापयन्; विस्मय में डालता हुआ; causing to be surprised, surprising. तु० दापयति, जापयति ।
समुपजातसाध्वसा	समुपजातं साध्वसं यस्याः सा, भयभीत, चकित; being alarmed.
वैशसम्	वि+√शस्, विशसन्; हत्या, वध, नाश; destruction, slaughter.
प्राहिणोत्	प्र+अहिणोत्, √हि=to impel; रूप, हिनोति, हिनुतः, हिन्वन्ति
कर्मातिशयः	कर्मणः अतिशयः, महान् कार्य, अनूठा कर्म; great deed, excellent work.
प्रवृद्धशोकावेगः	प्रवृद्धः शोकस्य आवेगो यस्य; अत्यन्त शोकाकुल, बहुत अधिक दुःखी; deeply pained, greatly aggrieved.
व्यसनानुरः	व्यसनेन आतुरः, दुःखित, तकलीफ में पड़ा हुआ; overtaken by calamity, distressed.

संस्कृतोदय

अप्रमेयसत्त्वः

न प्रमेय सत्त्वं यस्य; अज्ञेय शक्तिवाला, अलौकिक गुणवाला, possessing unbounded powers or virtues.

तु० प्रमाण=प्रमा-साधन; प्रमेय=प्रमाका विषय; प्रमिति=ज्ञान ।

अष्टादशः किरणः

प्रावृट्

प्रवर्षतीति; प्र+√वृष्+क्विप्; वर्षा ऋतु, the rainy season.

विकसत्सरोजा

विकसन्ति सरोजानि यस्यां सा; खिले हुए कमलों से युक्त; with blooming lotuses.

सितमूर्तिः

सिता मूर्तिर्यस्य; सफेद मूर्तिवाला, श्वेत वर्णका; of white appearance.

सूर्याशुतप्तानि

सूर्यस्य अंशुभिः तप्तानि; सूर्य की किरणों से तपे हुए; heated by the rays of the sun.

बह्वालम्बममत्वेन

बहु-आलम्बे ममत्वम् तेन, बहु+आलम्ब-ममत्वम्; अनेक साधनों में ममता; excessive attachment with the means (of life).

अवबोधः

अव+√बुध्+अ; ज्ञान, तत्त्वज्ञान, जागना; knowledge, perception, waking.

व्योम्नि

व्योमन्=आकाश; sky; तु०--नामन्, धामन् ।

अखण्डमण्डलः

अखण्डम्=न खण्डम्, अखण्डं मण्डलयस्य; पूर्णमण्डल वाला; of complete disc, of undivided orb.

क्षेत्रपुत्रादिरूढम्

क्षेत्रपुत्रादिषु रूढम्; धन और पुत्र आदि में जड़ा हुआ; rooted in property and sons.

यतिः

√यम्+ति; संयम करने वाला, संन्यासी, विरक्त, वैरागी; an ascetic.

सुमेधसाम्

सु+मेधसाम्; सुमेधस्=सुष्ठु मेधाः यस्य सः, बुद्धिमान्, ज्ञानी; intelligent, wise, having a good understanding.

तोयदः

तोयं ददाति इति; जल देने वाला, बादल; a cloud.

भास्करी

तारापतिः	ताराणां पतिः, चन्द्रमा; the moon.
अहंमानोद्भवम्	अहंकार से उत्पन्न; caused by or born of self-conceit.

एकोनविंशः किरणः

वाष्पयानेन	भाफ से चलने वाली गाड़ी, रेलगाड़ी; vehicle driven by steam-engine, railway-train.
अनायासम्	न+आयासम्, आयासं विना; आसानी से, बिना कठिनाई के, जल्दी से; easily, without difficulty, readily. तु०—दुःखम्, सुखम् ।
विमानेन	वायुयान, हवाई जहाज; an aeroplane.
वितारेण	बेतार का तार; wireless.
नगानास्	न गच्छतीति, पर्वत; पहाड़; a mountain.
नेदिष्ठान्	अत्यन्त निकट, निकटतम; nearest, very near । तु०—अन्तिक, नेदीयस्, नेदिष्ठ; बाढ—साधीयस् ।
दूरदर्शनेन	टेलीविजन, दूरदर्शन; television-set.
विस्मयावहः	विस्मयमावहतीति; आश्चर्यजनक, अचम्भा उत्पन्न करने वाला; wonderful, causing wonder.
गरिमा	महत्ता, गुरोर्भावाः, वैभव, महत्त्व; greatness, glory, importance, achievement. तु०—महिमा, तनिमा, लघिमा ।
अनलधूलिनिकरम्	अनलस्य धूलैनिकरः तम्; अग्निकणों का समूह, आगकी धूल; the stream of particles of fire.
निदाघे	नितरां दहतीति; गर्मी, ग्रीष्म, गर्मी का मौसम; the summer, the hot season ; तु०—दीर्घाहा निदाघः=दीर्घाणि अहानि यस्मिन् ।
वातानुकूलनयन्त्रेण	हवा को आवश्यकतानुसार गर्म या ठंडा बनाने वाला यन्त्र, शीत और ताप नियन्त्रित करने वाला यन्त्र; air-conditioner.

संस्कृतोदय

प्रतिभानस्य	प्रति+√भा+त्युट्, बुद्धिमत्ता, प्रतिभा; बुद्धि की प्रखरता; intellect, understanding.
विपश्चित्	विद्वान्, बुद्धिमान्; learned, wise.
मूर्धन्येभ्यः	मूर्धनि भवः, शीर्षण्यः, प्रमुख, महान्, श्रेष्ठ; chief, eminent, being on the head.

विशः किरणः

शुभम्	√शुभ्; शोभन, मङ्गल, कल्याण, auspicious. तु०—शुभ्+र ।
वासनासरित्	वासना एव सरित्; इच्छारूपी नदी; the stream of desires or fancies.
उत्साहः	उद्+√सह्+अ; उद्यमः, साहस, परिश्रम, तत्परता; courage, effort, exertion.
विषयाणाम्	वि+√षि 'बन्धने'; बाँधने वाला, इन्द्रियों द्वारा ग्रहण की जाने वाली वस्तु, सांसारिक वस्तु; an object of sense, worldly object.
संहतिः	सम्+√हन्+ति; to unite closely; समुदाय, संग, मेल; collection, assemblage, union. तु०—संधानः ।
दानोपभोगरहिताः	दानं च उपभोगश्च, ताम्यां रहिताः; दान और उपयोग में न आने वाले; devoid of giving and enjoying.
लोहकारभस्त्रा	लोहकारस्य भस्त्रा; भस्त्रा=a bellows; लोहार की धौकनी; the bellows of a blacksmith.
लोकोत्तराणाम्	लोकादुत्तराणाम्, असाधारण, अलौकिक; extraordinary, uncommon.
सम्यञ्चः	संगतमञ्चतीति सम्यङ्=समि+√अञ्च्; साथ चलने वाले, एक होकर चलने वाले; united, uniform, agreeable. तु०—सध्यङ्, सध्यञ्चौ, सध्यञ्चः ।
सव्रताः	समानव्रताः; एकव्रताः, समान व्रतवाले; taking the same vow.
भद्रया	तृतीयान्त क्रियाविशेषण; भली प्रकार; properly, well.

भास्करी

युक्ताहारविहारस्य	युक्तौ आहारविहारौ यस्य; उचित आहार-विहार वाला; having proper food and relaxation or pleasure.
इज्या	यागः, √यज्, यज्ञ; a sacrifice, तु०—इष्टि ।
आत्मौपम्येन	आत्मन औपम्येन, उपमाया; उपमाया भाव औपम्यम्; अपनी ही उपमा से; by the analogy of one's own self.
परदाराः	दारयन्तीति दाराः, बहुवचन मे; परस्त्री, दूसरे पुरुष की पत्नी; another's wife.
कौन्तेय	कुन्त्याः पुत्र; कुन्ती के पुत्र (हे अर्जुन); the son of Kuntī (here Arjuna).
नीरुजस्य	निष्क्रान्तो रुजाया नीरुजः, नीरोग, स्वस्थ; जिसकी बीमारी जा चुकी है; free from sickness, healthy. तु०—निष्कौशाम्बिः ।
दाक्ष्यम्	दक्षस्य भावः, दक्ष=चतुर, तु०—dexterous; चतुर, चतुराई, कौशल, निपुणता; skill, dexterity, cleverness.
नयः	नीति; √नी 'ले चलना'; course of conduct, way of life.
दैवसमाश्रिताः	दैवे समाश्रिताः; भाग्य पर आश्रित, भाग्य के अधीन; dependent on fate.
शय्यामरणम्	शय्यायां मरणम्; बिस्तरे पर मृत्यु, खाट की मौत; death on bed, dying abed.
ऋतुन्	√कृ; यज्ञ; a sacrifice.
आर्यवृत्तानाम्	आर्य वृत्तं (चरितं) येषाम्; सदाचारी, श्रेष्ठ आचरणवाला; virtuous, good, pious.
सत्यसंधानाम्	सत्य+संधः, सत्ये संधा येषाम्; सम्+√धा; वचन का पालन करने वाले; true to word, faithful to promise. तु०—सत्यसंगरः, शब्द संगिरते प्रतिजानीत इत्यर्थः ।
ऋतुयाजिनाम्	ऋतुभिर्यष्टुं शीलं येषाम्; यज्ञ करने वाले; those who offer sacrifices.

संस्कृतोदयः

अवभृथः	यज्ञ की समाप्ति के समय का स्नान; bathing at the end of sacrifice, purificatory rite.
त्रिविष्टपे	स्वर्ग, इन्द्रलोक; the heaven, the world of Indra.

एकविंशः किरणः

उद्धृता	उद्+हृ=उबारना, बचाना, उपर उठाना, रक्षा करना; to save, to deliver, to raise up.
आत्मसंयमपथः	आत्मनः संयमस्य पन्थाः; the way of controlling self.
विपद्गतम्	विपदि आपदि गतम् पतितम्; मुसीबत में पड़े हुए को; fallen in trouble.
अहितम्	√हिस् का लुङ् लकार; killed.
सद्युतिः	सद्+द्युतिः; शुभ्र प्रकाश वाला; possessed of noble light.
सत्याग्रहपाशयन्त्रिताः	सत्याग्रहस्य पाशैर्यन्त्रिताः; सत्याग्रह के पाशों से यन्त्रित; controlled by the weapon of सत्याग्रह।
हिसितहिस्रवृत्तयः	हिसिता हिंसा वृत्तिर्येषाम्; नष्ट कर दी है हिंस्रवृत्ति जिनकी; तु०— नम्+रः, कम्+रः, स्मे+रः। हिंस्रः=हिनस्तीति.
अकिञ्चनम्	नास्ति किञ्चन यस्याः; जिसके पास कुछ न हो, धनहीन; without anything, destitute.
भामिनी	स्त्री; √भाम् 'क्रुद्ध होना'; भामिन् 'क्रोधी'; यहाँ द्रौपदी; an angry woman, a woman.
आर्यसंप्रदायः	आर्यः (ऋषीणाम् अयम्) संप्रदायः; वैदिक धर्म, सनातन हिन्दू धर्म; Vedic religion, the religion proclaimed by the seers.

द्वितीयः उन्मेषः

प्रथमः किरणः

बहुशाखः	बहुः शाखाः यस्य सः; अनेक शाखाओं या भेदों वाला; having many branches or ramifications.
धर्मपथः	धर्मस्य पन्थाः; धर्म का मार्ग, धर्मानुसार कार्य का मार्ग; the way of virtue, virtuous course of conduct. वि०—उत्पथः, कापथः ।
अनुष्ठेयतमम्	अतिशयेन अनुष्ठातुं योग्यम्; सर्वाधिक करने योग्य; to be performed most.
प्रेत्य	प्र+√इ+ल्यप्, मर कर; after death.
गरीयस्	गुरु, गरीयस्, गरिष्ठ; बहु, भूयस्, भूयिष्ठ । अधिक महत्त्वपूर्ण; more important.
बहुमता	बहु इष्टा; √मन्+त; very dear.
अनभ्यनुज्ञातः	न+अभि+अनु+√ज्ञा+त; विना अनुज्ञा के, असंमत; not authorised, unapproved.
आश्रमाः	ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास ये चार आश्रम ।
अथो वेदाः	ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद ।
गार्हपत्यः	गृहपतिना नित्यं संयुक्तः; घर में गृहस्थ द्वारा रखी गई पवित्र अग्नि; the fire, perpetually maintained by a householder.
दक्षिणाग्निः	दक्षिण की ओर रखी गई पवित्र अग्नि; the sacred fire placed southward.
अग्नित्रेता	अग्नीनां त्रेता; अग्नित्रयी; triad of fires.
आहवनीयः	आहूयते यस्मिन्; यज्ञ में पूर्व दिशा में रखी गई अग्नि; गार्हपत्य अग्नि से उद्धृत पवित्र यज्ञिय अग्नि; the eastern fire, the consecrated fire taken from a householder's fire.

संस्कृतोदयः

ब्रह्मलोकम्	ब्रह्मणः लोकम्; ब्रह्मा के लोकको; the world of Brahmā.
सम्यक्	समि-√अव्यञ्; तपुंसक लिङ्ग, क्रियाविशेषण; भली प्रकार; correctly, properly.
आदृताः	आ-√दृ+त; honoured, respected.
अप्रमाद्यन्	न+प्र-√मद्, शत्रुन्त; अवहेलना न करता हुआ, ध्यान देता हुआ, आलस्य न करता हुआ; not ignoring, being careful.
परंतप	परान् तापयतीति; शत्रुको परास्त करने वाला, वीर, विजेता; subduing one's enemies, a hero, a conqueror; तु० द्विषंतपः ।
अफलाः	निष्फलाः, न फलं यासाम् ताः; vain, fruitless.
अवगाहन्ते	अव-√गाह्=स्नान करना, डुबकी लगाना, प्रवेश करना; to bathe one-self in, to plunge into. भूत—अवगाढः ।
सेतुः	√सि, दो तटों को जोड़ने वाला, पुल, बाँध; a bridge, a dam.
दुष्करम्	दुःखेन करणीयम्; difficult to execute. विप—सुकरम् ।

द्वितीयः किरणः

लोकमातरः	लोकानां मातरः; लोकों की रक्षा करने वाली, पालन करने वाली; supporters of people; लोकमातृ an epithet of Lakṣmī also.
जलधिः	जलानि धीयन्ते यस्मिन्; समुद्र; the ocean. तु० समुद्रिया नद्यः—समुद्रे भवा इत्यर्थः ।
सरित्पतिः	सरितां नदीनां पतिः; नदियों का पति, समुद्र; ocean.
अवतारान्	√तृ 'पार करना,' घाट; descent, a landing-place, bathing-place.
सोपानक्रमेण	सोपानानां क्रमेण; सीढ़ियों की आनुपूर्वी या अनुक्रम से; a flight of steps.



भास्करी

उदाररमणोयः	उदाररश्च रमणीयश्च; महान् और सुन्दर; grand and lovely.
देवनदः	देवानां नदः, पवित्र नदी, बड़ी नदी; a holy river, great river.
अन्तर्हिता	अन्तर्+√धा+त; छिपी हुई, बीच में समाई; concealed, placed between.
ब्रह्मार्गतः	सरस्वती और दृषद्वती नदी के बीच का प्रदेश; the region between the rivers Sarasvati and Dr̥ṣadvati; तु० आर्यावर्तः ।
भूरिदक्षिणैः	भूरि दक्षिणा यस्मिन् यज्ञे; बड़ी दक्षिणाओं वाले; अधिक दान से युक्त; attended or accompanied with rich gifts.
पुण्याख्यः	पुण्य इत्याख्या यस्य; पुण्य-नामक; by name पुण्य.
निर्वृत्तिस्थानम्	निर्वृतेः स्थानम्; आनन्द का स्थान; a place of happiness.
पुनाता	√पू 'पवित्रकरता'. पुनाति, पुनीते; पवित्र बनाती हुई; making pure, purifying. तु०-पवन ।
भागीरथी	गङ्गा नदी, भगीरथ द्वारा लाई गई; the river Ganges, brought by the king Bhagiratha.
मुमुक्षुः	√मुक्षु, सन्नत; मुमुक्षु=मोक्ष की इच्छा वाले; desirous of liberation or final emancipation.
प्रसन्नपावनेषु	प्रसन्नं च पावनं च तेषु; प्र+√सद्+त; शुद्ध और पवित्र; pure and pious.
देवयजने	देवानां यजनम्; देवताओं के यज्ञ का स्थान; sacrificial place.
उपतिष्ठते	उपरिलब्धति; मिलती है; meets.
तीर्थराजः	तीर्थानां राजा; तीर्थों का राजा; the best of the holy places.
मोक्षद्वारम्	मोक्ष या मुक्ति का द्वार; gate of emancipation.
नानायाज्ञचित्ता	नानायाज्ञैश्चिता; अनेक यज्ञों से छाई हुई; the place of numerous sacrifices.

संस्कृतोदय

पितृदेवार्चनम्	पितरश्च देवाश्च पितृदेवाः, तेषाम् अर्चनम्; पितरों एवं देवताओं की पूजा; worship of the manes and gods.
पुण्यसलिला	पुण्यं सलिलं यस्याः सा; पवित्र जल वाली; of sacred water.
प्रत्यक्प्रसृता:	प्रत्यक् स्रोतो यस्याः; विपरीत धारा वाली, पश्चिम को बहने वाली; flowing in the opposite direction, flowing westwards.
पुण्यश्लोकः	पुण्यः श्लोकः यस्य; √श्रु 'सुनता', प्रसिद्ध, जिसका नाम लेना शुभ हो; of good fame.
अक्षयाम्बा:	अक्षयमम्भो यस्य सः; नहीं क्षीण होता है जल जिसका; possessing inexhaustible waters.
सिन्धुसत्तमा:	सिन्धु (स्त्री०) = river, नदी; सबसे बड़ी नदियाँ; the best of the rivers.

तृतीयः किरणः

प्रतिच्छन्नः	प्रति √छद् + त; छिपा हुआ; concealed, disguised.
वनोद्देशे	वनस्थाने, वनप्रदेश में; उद् + √दिश्; वन का एक प्रदेश; a place in a forest.
क्षुधाविष्टः	क्षुधया आविष्टः; भूख से पीड़ित, भूखा; afflicted by hunger, hungry.
सारमेयाः	सरमाया अपत्यम् सारमेयः; कुत्ता; dog, offspring of सरमा
अभिद्रुत्य	अभि + √द्रु + ल्यप्; √द्रु 'भागना', तरफ भागकर, धावा बोलकर; running towards.
प्रस्कन्ध	प्र + √स्कन्द् ल्यप्; कूदकर, ऊपर आकर; having leapt towards, having fallen upon.
प्रकीर्णहरिणे	प्रकीर्णाः हरिणाः यस्मिन्; √कृ; बिखरे हैं हरिण जिसमें; with deer scattered about.



भास्करी

निपुणसंवृतः	निपुणं संवृतः; अच्छी तरह ढका हुआ, पूरी तरह छिपा हुआ; skilfully covered, completely concealed.
काननम्	देखिये 'अटवी' ।
नीलकञ्चुकम्	नीलः कञ्चुको यस्य; नीले आवरण वाला; having a blue garb.
श्वापदाः	जंगली जानवर, शिकारी जानवर; beasts of prey, wild beasts.
वीर्यपरित्राताः	वीर्येण परित्राताः, बल द्वारा सुरक्षित; defended by the prowess; तु०—त्राण ।
निरातङ्कः	निर्गतः आतङ्कः येभ्यः; विना भय के, निश्चिन्त, निर्भय; free from fear, comfortable.
अमात्यपदवी	अमात्यस्य पदवी; मन्त्री का पद, परामर्शदाता का स्थान; the post of a minister or counsellor. अमात्य=अमा+त्य=of the same house.
शय्यापालत्वम्	शय्यापालने नियुक्तः, शय्यापालः; शयनकक्ष का चौकीदार; the guardian of bed-chamber. तु०—द्वारपालः; छत्रधरः (यत्र च नियुक्तस्तत्र चोपसंख्यानम् on. P. 3 .2.1)
कदर्थोक्त्य	कुत्सितोऽर्थः कदर्थः, तत्कृत्वा; तुच्छ बनाकर; having made useless, having condemned.
गलहस्तिकया	गला पकड़ कर, गर्दन में हाथ लगा कर; seizing by the neck, collaring, तु०—अर्धचन्द्रिकां दत्त्वा निःसारितः ।
वशानुगाः	वशमनुगच्छन्तीति; इच्छा के अधीन, विनीत, आज्ञाकारी; obedient to the will, submissive.
भुजिष्येभ्यः	दास, सेवक; a slave, servant; तु०—भृत्य, विधेय ।
विप्रकर्षात्	वि+प्र+√कृष्, दूरात्; दूर से; from a distance; तु० आरात्, अभ्यर्णम् ।
वाश्यमानाः	√वाशु 'शब्द करना'; वाश्यते; चिल्लाते हुए, आवाज करते हुए; howling, crying.

संस्कृतोदयः

पुलकिततनुः	पुलकिता तनुर्यस्य; खुशी से फूला हुआ; रोमाञ्चित शरीर वाला; with body thrilled with joy, having the hairs on the body erect.
आनन्दाश्रुपरिपूर्णनयनः	आनन्दाश्रुभिः परिपूर्णं नयनं यस्य; खुशी के आँसुओं से छलछलाते नेत्र वाला; with eyes filled with tears of joy.
उद्ग्रीवः	उदस्ता ग्रीवा यस्य; ऊपर को गर्दन किये हुए; with neck uplifted. तु०—उत्पुच्छः पुच्छमुदस्तं यस्य ।
छद्मगूढः	छद्मना गूढः; रूप बदलकर छिपा हुआ; hidden in disguise.
अवाङ्मुखः	अवाक् मुखं यस्य; अव+√अञ्च्; सिर नीचा किये हुए; with mouth turned downwards; तु०—पराक्, अवाक् ।
उपक्रममाणः	उप+√क्रम्+शानच् (आत्मनेपद); तैयारी करता हुआ; about to make; तु०—उपक्रममाणः—पराक्रममाणः; ऋचि क्रमते बुद्धिः अप्रतिहतेत्यर्थः ।
विशकलीकृतः	विविधं शकलीकृतः (अशकलं शकलं करोतीति शकलीकरोति); शकल=टुकड़ा, a portion, टुकड़े-टुकड़े किया गया; thoroughly cut into pieces. तु०—शकल=टुकड़ा—सकल=संपूर्ण ।

चतुर्थः किरणः

कुम्भीधान्यः	यस्य कुम्भ्यामेव धान्यम्; घड़े में ही है धान्य जिसका; with corn limited to a pot only.
भिक्षार्जितैः	भिक्षया अर्जितैः; भीख माँगकर कमाए हुए; earned by begging.
नागदन्ते	दीवार में लगी हुई खूँटी पर; on a peg or bracket projecting from a wall.
तुन्दपरिमृजः	तुन्दं परिमार्ष्टीति तुन्दपरिमृजोऽलसः; पेट पर हाथ फेरने वाला; an indolent person.
दुर्भिक्षम्	दुर्+भिक्षम्, भिक्षाया ऋद्धेरभावः दुर्भिक्षम्; अकाल, अन्न की कमी, भुखमरी; the scarcity of provisions. तु०—सुभिक्षः संपन्नपानीयो बहुमाल्यफलो देशः ।

भास्करी

अजाद्वयम्	वकरियों का एक जोड़ा; a pair of she-goats.
महिषी	भैंस; a she-buffalo; तु०—महिषी=पटरानी ।
वडवा	घोड़ी; a mare.
चतुःशालम्	चतस्रः शालाः यस्य; चार कोठों से घिरा हुआ; a square enclosed by four wings.
रूपसंपन्नाम्	रूपेण संपन्नाम्; सुन्दर, रूपवती, सुन्दर रूपवाली; beautiful, of charming appearance.
जानुचलनयोग्ये	जानुभ्यां चलन तस्मिन् योग्ये; घुटनों से चलने लायक; able to move with the knees.
उत्सङ्गः	गोद; lap.
अनागतवतीम्	अनागतवस्तुविषयिणीम्; नहीं आई हुई; pertaining to what has not yet occurred.

पञ्चमः किरणः

शारीरनियमम्	शरीरस्य नियमः तम्; शारीरिक नियम, व्यवहार; the training of body, conduct.
हायनैः	जहाति भावानिति हायनो वर्षम्, जिहीते प्राप्नोतीति वा; √हा+ल्युट्; वर्ष, साल; a year.
अनूचानः	वेदस्यानुवचनं कृतवान्; विद्वान्, वेदाध्ययन में लीन; devoted to study, learned; तु०—पारदृष्ट्वा ।
अग्निहोत्रफलाः	अग्निहोत्रं फलं येषाम्; अग्निहोत्र है फल जिनका; having sacrifice as their fruit.
दानभुक्तफलम्	√दा+त, √भुज्+त, दानं च भुक्तं च दानभुक्ते, ते एव फलं यस्य; दान और भोग रूपी फल देने वाला; having gift and enjoyment as its fruit.

संस्कृतोदयः

प्रेमपुत्रफलाः	प्रेम पुत्राश्च फलं यासाम्; प्रेम तथा पुत्र रूपी फल वाली, प्रेम और पुत्र देने वाली; having love and sons as fruits.
शीलवृत्तफलम्	शील और आचार है फल जिसका; having character and practice as its fruits.
व्ययगमौ	व्ययश्च आगमश्च; वि+√इ+अ; आ+√गम्+अ; खर्च और आमदनी; expenditure and income.
प्राज्ञः	प्रकर्षेण जानातीति प्राज्ञः; प्राज्ञ एव प्राज्ञः; बुद्धिमान्, विद्वान्, चतुर, विवेकी; wise, intelligent, circumspect.
अद्यथः	न व्यथा यस्य; कष्ट से अयुक्त, धैर्यवान्, कष्ट से विचलित न होने वाला; free from pain, steady.
उत्थानवान्	उद्+√स्था+वत्; उद्योगी; industrious.
व्याधिः	वि+आ+√धा; रोग, कष्ट, पीडा; ailment, sickness, anxiety; तु०—आधिः 'मानसिक बीमारी'।
प्रत्ययः	प्रति+√इ+अ; प्रत्ययनम्; विश्वास, ज्ञान; confidence, reliance, knowledge.
व्यवसायवान्	वि+अव+√सो+अ; व्यवसायः=उद्योगः, परिश्रमी, प्रयत्नशील, उद्यम में लगा हुआ; industrious, energetic.

षष्ठः किरणः

धन्विनाम्	धन्विन्=धनुर्धारी, धनुस् (धन्व) वाला; an archer, armed with bow.
मृगयायाम्	मृगया=मार्गणम्; तु०—मृगयते, मार्गयते (मृग अन्वेषणे; परिचर्या-परिसर्यामृगयाटाटयानामुपसंख्यानम्; a Vārttika on P. 3.3.10); hunting, a chase.
ककुदः	श्रेष्ठः, chief, pre-eminent; तु० ककुद्=पर्वत की चोटी।



भास्करी

क्षमाधनस्य	क्षमा ही है धन जिसका; having forbearance as wealth.
धेनुः	धयति वत्सानिति, गौ; a cow.
पल्लवस्निग्धपाटला	पल्लव इव स्निग्धा पाटला च; पल्लव के समान स्निग्ध और पाटल वर्ण वाली; of pink colour and smooth like a leaf.
प्रसूतिः	प्र+√सू+ति, प्रभवः, कारणम्; उत्पन्न करने वाली; देने वाली; producer, generator; तु० प्रसूतिः=प्रसूयत इति=संततिः।
दोग्ध्री	√दुह्+त्री; (दूध) देनेवाली, दुधारू; a cow which yields milk, giver.
प्रतिहर्त्री	प्रति+√हृ+तृ+ई; दूर करने वाली, नष्ट करने वाली, हटाने वाली; repeller, destroyer, averter.
राजर्षेः	राजा चासी ऋषिश्च; राजा-ऋषि; a royal sage, a ṛṣi of royal descent.
आतिथ्यम्	अतिथ्यर्थम्; (तु०—आतिथेयम्=अतिथौ साधु, like पाथेयम्); अतिथि-सत्कार, आवभगत; hospitality, hospitable reception.
प्रणतः	प्र+√नम्+त, विनतः; झुका हुआ, नत; bowed down, stooping low.
कुण्डोघ्नीनाम्	कुण्डमिव ऊघो यस्याः, भरे हुए बाँक वाली, दुधारू; a cow with full udder. तु०—पीनौघाः=पीन+ऊघस्।
दुर्लभाभिलाषः	दुर्लभः अभिलाषो यस्य; जिसकी इच्छा सिद्ध न होने योग्य हो; अलभ्य वस्तु की इच्छा वाला; one whose desire is difficult to be fulfilled; possessing an unattainable desire.
उपरुध्येत	उप+√रुध्=रोकना, रोड़ा अटकाना, बाधा डालना; to obstruct, to stop; तु०—अव+√रुध्। तु० “मैनमन्तरा प्रतिबन्धय” “इसे बीच में मत टोको”।
अनुत्सेकः	न+उत्सेकः, उत्+सिच्; निरभिमान, विना घमण्ड के, विनम्रता; absence of pride or haughtiness.
उत्सर्पिणः	उत्+√सृप्+इन्; —पीं=ऊपर उठने वाला, उद्धत; moving or gliding upwards.

संस्कृतोदयः

छन्दवर्तिनः	मनमानी करनेवाले; acting according to will. तु० अभिप्रायश्छन्द आवायः इत्यमरः ।
व्यवधूयमाना	वि+अव+√धू+शानच् (कर्मवाच्य); कँपाई जाती हुई; पछाड़ी जाती हुई, पीड़ित की जाती हुई; being caused to tremble or tormented.
शृङ्गग्रहं प्राप्ताम्	जिसके सींग पकड़ लिये गये हैं; with her horns seized. तु० वन्दिग्राहं गृहीताम्.
सोत्कम्पम्	उत्कम्पेन सह; काँपते हुए; shaking, trembling.
अवाक्षिण्यम्	अनुदारता, दया या प्रेम का अभाव; lack of courtesy, insincerity.
वात्सल्यपरिवाहिणा	स्नेह से भरे हुए, छलकते हुए; overflowing with affection.
परिष्वजमानः	परि+स्वञ्ज्=आलिङ्गन करना, आलिङ्गन करते हुए; दुलारते हुए; embracing, caressing.
उत्पथः	उत्क्रान्तः पन्थाः; अनुचित मार्ग, गलत रास्ता; a wrong road, a mistaken path. तु०—अपथम्, विपथम्, कापथः ।
जिह्वाम्	क्रियाविशेषण, टेढ़ा, कुटिल (ऋजु के विपरीत); falsehood, deceit, crookedly.
सरस्वत्याः	सरस्वती=विद्या की अधिष्ठात्री देवी, goddess of speech and learning.
दुष्प्रवर्षा	दुस्+प्र+√वृष्; अजेय, कठिनाई से वश में आनेवाली; unassailable, difficult to be assailed.
भटान्	भट=योद्धा, वीर, सैनिक; √भू; a warrior, soldier. तु० भृति ।
नडान्	नडकुल, एक प्रकार का सरकण्डा; a species of reeds.
दुराध्वम्	दुर्+आ+√धृष्; कठिनाई से दबाए जाने योग्य; अजेय; hard to be assailed, unassailable.
कदनम्	वध, हत्या, विनाशः; slaughter, destruction.

भास्करी

स्थाणुः	√स्था, 'खड़ा होना; हरः, 'स्थाणुः कोले हरे स्थिरे' इति विश्वः; हर, स्तम्भ; Hara, a pillar.
भरुदाहारः	भरुद् एव आहारो यस्य; living on air, having air as food.
ब्रह्मतेजः	ब्रह्मणस्तेजः, ब्रह्मविद्या का तेज; Brahmanic lustre, the glory of a Brāhmaṇa.
मुनिश्रेष्ठः	मुनीनां श्रेष्ठः, मुनियों में अग्रणी, श्रेष्ठ, धर्मात्मा; a great saint, greatest among the sages.
अव्यग्रम्	न+व्यग्रम्; शान्त, व्याकुल न होने वाला; not agitated, cool, quiet, undisturbed

सप्तमः किरणः

ज्वालामुखाः	ज्वालामुखी पर्वत; a volcano.
द्रवीभूतम्	√द्रु 'पिघलना'; अद्रवं द्रवं संजातम्; तरल बनाया गया, पिघला हुआ; liquefied, melted. तु०—द्रव, द्रव्य √द्रु।
अयसोगोलकम्	अयसो गोलकम्; लोहे की गोला; ball of iron.
अपरिमेयः	न+परि+√मा, न परिमातुं योग्यः, असोमित असंख्य; immeasurable, immense, limitless.
बाष्पनिबृहः	वाष्पस्य निबृहः; भाप का समूह; collection of steam, vapour or mist.
शिलाशकलानि	शिलानां शकलानि; पत्थरों के टुकड़े; particles of stones.
रजःपटलम्	रजसः पटलम्; धूल की परत; coating of dust.
पृथ्वीस्वरूपविमर्शकाः	पृथिव्याः स्वरूपस्य विमर्शकाः; पृथ्वी की रचना का विवेचन करने वाले; geologists.
उत्पत्तिक्रमः	उत्पत्तेः क्रमः, उत्+√पद्+ति; रचनाक्रम; order of creation or formation.

संस्कृतोदय

वसुधा	वसूनि दधातीति; धरती; earth. वसु √वस् 'shine'.
शैल्यप्रवाहः	शिलाया विकारः शैलेयम्, तस्य प्रवाहः; शिलाओं से निर्मित द्रव पदार्थ का प्रवाह, लावा; the stream of the liquid produced from rocks.
त्रिकोणाल्पाकृति	त्रिकोणं च तत् अल्पाकृति च; (नपुं०) त्रिकोण की तरह की छोटी आकृति वाला; resembling a triangle, somewhat like a triangle.
भूतत्त्वविज्ञानविदः	भुवस्तत्त्वं, तस्य विज्ञानं विदन्तीति; पृथ्वीतत्त्ववेत्ता, पृथ्वी के विषय में जानकारी रखने वाले; geologists, experts in the science of geology.
उपसृज्यमानस्य	उप+√चि (कर्मणि प्रयोग) शानच्; एकत्र होते हुए, इकट्ठा होते हुए; gathering together, heaping up, collecting.
अभिघातः	अभि+हन्+त; झटका, चोट; striking, eruption, sudden shock.
औष्ण्यम्	उष्णस्य भावः; √उष् 'दाह'; heat.
धूमशकटम्	रेलगाड़ी, भाप से चलने वाली गाड़ी; the railway train, the vehicle moved by steam.
उपरितनभागः	ऊपरी भाग; upper portion, higher portion.
उद्वेजितान्तर्गतान्नेयद्रवे	उद्वेजितेऽन्तर्गते आग्नेये द्रवे; भीतरी आग्नेय द्रव के उद्वेजित हो जाने पर; the internal fiery liquid being agitated or disturbed.
परःशताः	शतात् परे (तु० परःसहस्राः=सहस्रात् परे 'शतसहस्रौ परेणेति वक्तव्यम्, पा० २.१.३६ पर); सौ से ऊपर; beyond one hundred.
अतिनिविडः	अत्यन्तं निविडः; बहुत घना, कठोर; very thick, dense, hard.
अभ्रंकषशिखरोपशोभिन्	अभ्रंकषैः शिखरैरुपशोभी, √कष् हिंसायाम्, (तु०—सर्वकषः खलः, कूलंकषा नदी); अत्यन्त ऊँचे शिखरों से उपशोभित; beautiful with the exceedingly high spires.
प्रासादः	प्र+√सद्; महल, भवन, इमारत; a palace, mansion.
प्रायशः	प्रायणं प्रायः, बहुत्वम्, बहुधा; usually.
पौनःपुन्यम्	पुनः पुनर् भावः; बार-बार होना; frequent or constant repetition.

भास्करी

अष्टमः किरणः

निधीयते	निःशेषेण धीयते, नि+धा (कर्मणि); रखा जाता है, बनाया जाता है; is placed, is set down, is entrusted.
विसर्गयि	वि+सृज्=त्याग; छोड़ना, त्याग देना, दान; casting, giving away.
वारिमुचाम्	वारि मुञ्चतीति वारिमुच्, बादल; a cloud.
फलानुमेयाः	फलैः अनुमातुं योग्याः, अनु+√मा; परिणाम से ही जानने योग्य, फल देखकर अनुमान करने योग्य; known by the fruits, to be apprehended by the result.
याचन्ना	√याच्+ना; माँग, किसी वस्तु के लिए प्रार्थना, भोज, भिक्षा माँगना; begging, asking, request.
अधिगुणे	अधिकगुणे; सद्गुणी, अधिक गुणवान्; possessing superior quality, worthy.
चक्रनेमिक्रमेण	चक्रस्य नेमेः क्रमेण, नेमिः—√नम्; अरा नमन्ति यस्यां सा; चक्के की परिधि के क्रम से; by the order of the circumference of a wheel.
बलवद्विरोधिता	बलवता सह विरोधिता; बलवान् से झगड़ा या वैर; enmity or hostility with the powerful.
तितिक्षा	√तिज् 'पैताना', सन्नन्त; सहनशीलता, कष्ट सहने की शक्ति, धैर्य; endurance, patience.
अभिमानैकधनः	अभिमान एव एकं धन यस्य; स्वाभिमानी, प्रतिष्ठा को ही सम्पत्ति मानने वाला; having self-respect as the only possession, self-respected.
वाग्मिता	√वाच्; वाग्मी=अच्छे भाषणवाला, वाणी-संपन्न (वाचो मितिः); वाग्मिता=प्रशस्त भाषण, उत्तम कथन; eloquence, oration. तु०—वाचाल=बकवादी (आलजाटचौ बहुभाषिणि)
अङ्गोक्तम्	अङ्ग+√कृ; स्वीकृत, माना गया, अपनाया गया; accepted, agreed.
साहसः	√सह्; शक्ति, उत्साह, निर्भीकता, हिम्मत; force, daring, courage, boldness.

संस्कृतोदयः

अनारुह्य	न+आ+√रुह्+ल्यप्, न चढ़ कर, न स्वीकार करके; not ascending, not practising.
भूतिः	√भू; कल्याण, सुख, समृद्धि, सफलता; well-being, prosperity, success.
धर्मवृद्धेः	धर्मेण वृद्धः; √वृध्+त; धर्म में बढ़ा हुआ, धर्म में मंजा हुआ; advanced in religion.

नवमः किरणः

भर्यादापुरुषोत्तमः	भर्यादायां पुरुषाणामुत्तमः; आदर्श पुरुष; the ideal or limit of a noble man.
व्रेता	चार युगों के अन्तर्गत दूसरा युग; the second of the four Yugas. चार युग—कृत, त्रेता, द्वापर, कलि ।
प्रख्यातः	प्रकर्षेण ख्यातः; बहुत प्रसिद्ध; well-renowned, very famous.
कोसलाधिपः	कोसलानाम् अधिपः; कोसल प्रदेश का राजा; the king of Kosala country.
अभिरामः	मनोरम, सुन्दर, प्रिय; pleasing, delightful, agreeable.
अप्रतिभः	न विद्यते प्रतिमा यस्य; बेजोड़, अद्वितीय, अतुलनीय; without an equal, matchless.
मनोनयननन्दनः	मनसो नयनयोश्च नन्दनः (नन्दयतीति नन्दनः; तु० जनार्दनः, अर्दनः); मन और नेत्रों को आनन्दित करने वाला; gladdening the mind and the eyes, one who delights the mind and the eyes.
कुलगुरोः	कुलस्य गुरुः; कुल का आचार्य, पुरोहित; the family-priest, the teacher of the family.
नातिचिरात्	न+अतिचिरात्, जल्दी ही; quickly, without delay.
तपःश्रुतान्वितानाम्	तपःश्रुताभ्याम् अन्विताणाम्; अतु √इ+त; तपस्या और (वेद-) ज्ञान से युक्त; possessed of penance and Vedic lore.

भास्करी

अवदातैः	अव + √वा + त; शुभ्र, निष्कलङ्क; of clean character; तु० अवदान = a glorious act.
निकामम्	क्रियाविशेषण; जी भरकर, संतोष भर; to the heart's content, according to wish. तु० कणेहत्य पयः पिबति ।
यज्ञविघातशान्तये	यज्ञस्य विघातो यज्ञविघातः, तस्य शान्तिः; यज्ञ के विघ्नों की शान्ति; removal of the impediments to sacrifice.
उदारसत्त्वः	उदारं सत्त्वं यस्य; उद् + √वृ; मनस्वी, विशाल हृदय वाला; दयालु; noble-minded, magnanimous.
कौशिकेन	कुशिकस्यापत्यम्; कुशिक के वंश में उत्पन्न, विश्वामित्र; born in the family of Kuśika, Viśvāmitra.
धर्मरतीनाम्	धर्म रतिषेषाम्; धर्म में है रति जिनकी; religious, pious.
प्रादुर्बभूव	प्रादुस् + √भू = प्रकट होना, दिखाई पड़ना; to become manifest, to appear.
विषदिग्धः	विषेण दिग्धैः; √दिह् 'उपचये'; दिह् + क्त (तु० — दुग्ध = दुह् + क्त); विष से बुझा हुआ, विषैला, जहरीला; poisoned, envenomed.
सततसत्त्रिणाम्	सततं सञ्चरताम्; निरन्तर यज्ञ करने वाले; those who constantly perform sacrifices.
मखः	यज्ञिय क्रिया, यज्ञ; a sacrificial rite, sacrifice.
पणत्वेन	शर्त के रूप में, प्रतिज्ञा के रूप में; by way of a stake, a wager.
बुरानमम्	दुःखेन आनमनीयम्; जो नचाया या खींचा न जा सके; difficult to bend or draw.
शैवम्	शिवस्येदम्; भगवान् शिव का, शंकर का; belonging to the god Śiva.
अमृष्यमाणः	न + मृष्यमाणः; √मृष् 'सहन', न सहन करते हुए, बर्दाश्त न करते हुए; not tolerating, not enduring.
त्रिसप्तकृत्वः	त्रि सप्त + कृत्वस्; इक्कीस बार; twenty-one times, three times seven.

संस्कृतोदयः

द्रावणः	द्रावयिता; √द्रु 'भगाना', भगाने वाला, हराने वाला; repeller, subduer.
हृताप्रभः	हृता प्रभा यस्य; मन्द, निष्प्रभ, किकर्तव्यविमूढ; bereft of lustre, taken aback, confounded.
पलितशिराः	पलितं शिरो यस्य; वृद्ध, बूढ़ा; grey-haired, old, aged.
यौवराज्यम्	युवराज का पद; the rank of an heir-apparent.
विमाता	सौतेली माता, a step-mother.
संभारान्	सम्+√भृ; तैयारी; preparation, provision.
प्रतिभृतम्	वचन दिया गया, स्वीकार किया गया; promised, agreed.
अथर्वान्गिरसीम्	(अथर्ववेदीय); अथर्वान्गिरस् से संबद्ध; अत्यन्त उग्र; connected with Atharvan and Angiras or Atharvāngiras.
कृत्याम्	क्रियते अनया, √कृ 'करणे' (कृञ्: श च P. 3.3.100), काट; witch, bane.
उरगः	उरसा गच्छतीति (उरसो लोपश्च), साँप; a snake.
उदग्रमनः	उदग्रं मनः यस्य, मनस्वी, उच्च विचारवाला; high-minded, of elevated mind.
अभिल्या	अभि+√ल्य; सुन्दरता, शोभा; splendour, beauty, lustre. तु०—प्रल्या—बुद्धिः ।
मङ्गलक्षौमे	उत्सव के समय पर धारण किये जाने वाले रेशमी वस्त्र; a pair of silken cloth worn on the occasion of festivity.
मुखरागम्	मुखस्य रागः; मुख का रंग, मुख का भाव; the complexion of the face, look.

वशमः किरणः

इक्ष्वाकुकुलजः	इक्ष्वाकोः कुले जातः; इक्ष्वाकु वंश में उत्पन्न; born in the family of Ikṣvāku.
----------------	---

भास्करी

वत्सलः	प्रिय; dear, affectionate; तु० वत्सकः ।
संक्रान्तम्	सम् + √कृ + त, प्रतिफलित; reflected, transferred.
संनिदर्शनम्	सम् + निदर्शनम्; प्रमाण, सबूत; proof, evidence.

एकादशः किरणः

अनवद्याङ्गो	अनवद्यम् अङ्गं यस्याः; अवद्यम्—त + √वद् + य (निन्दार्थे, अनुद्यमन्यत्र). निर्दोष अङ्गो वाली, पवित्र रूप वाली, सुन्दर; having faultless limbs or form, possessing immaculate beauty.
न्यग्रोधपरिमण्डलम्	न्यग्रोधः परिमण्डलं परीणाहो यस्य । प्रसारितभुजस्येह मध्यभागद्वयान्तरम् । उच्छ्रायणे समं यस्य न्यग्रोधपरिमण्डलः ॥ a man being a fathom in circumference, an excellent man. न्यग्रोधपरिमण्डला स्त्री = न्यग्रोधस्येव परिमण्डलं परीणाहो नितम्बभागो यस्याः ।
महोरस्कः	महदुरो यस्य; चौड़ी छातीवाला, वीर पुरुष; broad-chested, hero. तु० व्यूडोरस्कः ।
सिंहविक्रान्तगामिनम्	सिंह के समान चलने वाला; moving like a lion, striding like a lion.
सिंहसंकाशम्	सिंह के समान, सिंह जैसा; like a lion, resembling a lion.
पृथुकीर्तिम्	पृथु है कीर्ति जिसकी, यशस्वी, जिसका यश दूर-दूर तक फैला हो; having wide fame, greatly renowned.
तरस्विनः	—स्विन् = तेज, वेगगामी, बलशाली, swift, quick, powerful. तरस् + √त्
आशोविषस्य	जहरीला साँप; a snake.
कालकूटम्	घातक महाविष, समुद्रमन्थन से निकला दुष्टा महाविष; a deadly poison, the poison churned out of ocean and drunk by Śiva.
प्रमृजसि	प्र + √मृज् = शुद्ध करना, साफ करना, रगड़ना; to remove, to strike, to rub.

संस्कृतोदयः

अवसज्य	अव+√सञ्ज्+त्यप्, चारों ओर बाँधकर, लटकाकर; having bound round, having suspended from.
कल्याणवृत्ताम्	कल्याणं वृत्तं यस्याः, सदाचारिणी, सुशीला; of virtuous conduct.
अयोमुखानाम्	अयो मुखे येषाम्; लोहे से बने अग्र भाग वाले, लोहे की नोक वाले; having an iron mouth, tipped or pointed with iron, iron-pointed (arrow).

द्वादशः किरणः

अनुतिष्ठामि	अनु+√स्था=पूरा करना; करना; to carry out, to execute.
मुखोदकम्	मुखार्थमुदकम्; मुख के लिए जल, मुख में लिया जाने वाला जल; water for mouth, water poured into mouth.
धर्मवञ्चना	धर्म की हानि, अधर्म; loss of religion, harm to righteousness.
अनार्यभावः	न आर्यस्य भावः, दुर्जनता, दुष्टता, बुरी नीयत; indecent attitude, disposition unbecoming of an Ārya.
मोचयितव्यः	√मुच्, णिजन्त; मुक्त किया जाना चाहिये, छुटकारा दिया जाना चाहिये; worthy to be freed, or acquitted.
अच्छलः	छलरहित, बिना कपट के, निष्कपट; devoid of fraud; free from deceit.

त्रयोदशः किरणः

उपचर्यमाणातिथिम्	उपचर्यमाणाः अतिथयः यस्मिन् यत्र वा, जिसमें अतिथियों की सेवा की जा रही थी; in which the guests were being served.
हरिहरपितामहाः	हरिश्च हर्श्च पितामहश्च; the trinity of Viṣṇu, Śiva and Brahmā.
पर्णशाला	पर्णनिर्मिता शाला; कुटिया, कुटी; a hut made of leaves, a hermitage.

भास्करी

अजिरम्	अजिरं चत्वरःशृङ्गणे; आंगन; court-yard.
उपह्वियमाणम्	उप+√हृ+शानच् (कर्मणि); ले जाया जाता हुआ, अर्पित किया जाता हुआ; being fetched, being offered.
बलिः	यज्ञ में अर्पित वस्तु, हविस्, दान आदि; oblation, offering, gift. √भृ
मौञ्जमेखला	मूँज की बनी करघनी; the girdle made of muñja grass.
समिध्	सम्+√इध्, ईधन; यज्ञाग्नि के लिए लकड़ी; wood, fuel, sacrificial sticks for fire.
न्यस्यमानवेवदण्डम्	न्यस्यमाना वेवदण्डा यत्र; जिसमें वेत के डण्डे फेंके जा रहे थे; in which the reeds were being put down.
कलिकालस्य	कलियुग; the age of Kali, the Kali-age.
अदृष्टपूर्वम्	न दृष्टपूर्व; जैसा पहले नहीं देखा गया, नया, अनूठा; unprecedented, not seen before.

चतुर्दशः किरणः

तपोनिधिः	तपसां निधिः; तपस्या का खजाना, महान् तपस्वी; a treasury of penance, an eminently pious person.
अग्रणीः	अग्रमग्रेणाय वा नयतीति, नेता, प्रमुख, प्रधान, श्रेष्ठ; a leader, foremost.
अवष्टम्भः	अव+√स्तम्भ्, आश्रय, अवलम्ब, आधार; support.
प्रवाहः	प्र+√वह्+घञ्, नदी, बहाव; stream, current, flow.
संतरणसेतुः	संतरणाय सेतुः; पार करने का पुल; the bridge for crossing.
तरणिः	आकाशे तरतीति, सूर्यः; the sun.
संतोषामृतसः	संतोषरूपी अमृत का रस, संतोष का अमृत जैसा रस; the juice of nectar-like contentment.

संस्कृतोदयः

वडवानलः	समुद्र की अग्नि; the submarine fire.
अर्णवः	अर्णस् + वस्, अर्णस् + वृत् 'गती', समुद्र, महासागर; the sea, the ocean.
निकषोपलः	निकष + उपलः, निकषश्चासौ उपलश्च; कसौटी—पत्थर; a touch-stone.
कीचकः	'कीचका वेणवस्ते स्युर्मे स्वमन्त्यनिलोद्धताः', छेद वाता खोखला वाँस; a hallow bamboo.
अर्गलबन्धः	अवरोध, बन्द करने का साधन, रोकने वाली कीली; the wooden bolt, the check of bolting.
आयतनम्	स्थान, निवासस्थान; abode, house, place.
नेमिः	परिधि, छोर; the circumference, the ring of a wheel.
अदत्तावकाशः	न दत्तः अवकाशो येन, स्थान न देने वाला, विषय न होने वाला; not giving place, not being a subject.
भत्तरः	ईर्ष्या, जलन, द्वेष; envy, jealousy.
अरातिः	न + रातिः, शत्रु, विरोधी; an enemy, a foe.
परिभवः	परि + भ + अप्, अपमान, हानि, पतन; insult, injury, degradation.
देन्यम्	दीनस्य भावः; दरिद्रता, दयनीय दशा, दुःखी अवस्था; poverty, miserable state, pitiable condition.
अनायत्तः	न + आयत्तः; आश्रित नहीं, वश में नहीं, स्वतन्त्र; not dependent, independent, uncontrolled.

पञ्चदशः किरणः

वासुदेवस्य	वासुदेवस्यापत्यं पुमान् = वासुदेवः; श्रीकृष्ण ।
दौत्यम्	दूतस्य भावः, दूतकार्यं, संदेश; mission of a messenger.
छात्रव्यसकः	छात्र इव व्यसको घूर्तः; a cheat like a student.

भास्करी

काञ्चुकीयः	कञ्चुकी— अन्तःपुरचरो विप्रो वृद्धो गुणागणान्वितः । सर्वकार्यार्थिकुशलः कञ्चुकीत्यभिधीयते ॥
समुदाचारः	उचित प्रयोग, उचित संबोधन; proper usage, proper mode of address.
प्रत्युत्थास्यति	प्रति+उद्+√स्था=उठकर स्वागत करना, आदरार्थ अपने आसन से उठना; to rise from one's seat (as a mark of respect).
दण्ड्यः	दण्ड्यर्हतीति, दमनं दण्डः; दण्डनीय; deserving punishment.
तीर्थकाकः	यथा तीर्थे काका न चिरं स्थातारो भवन्त्येवं यो गुरुकुलानि गत्वा न चिरं तिष्ठति स उच्यते तीर्थकाकः; उगळ, अस्थिर; a fickle-minded person.
स्वैरम्	स्व+ईरम्, आराम से, इच्छानुकूल, सुखपूर्वक; at will, at pleasure, at ease.
गङ्गापुत्रः	गङ्गायाः अपत्यम्, भीष्म; the son of (the river) Gaṅgā, i.e. Bhiṣma.
श्रान्तमयम्	श्रान्तमयाभावः, कुशल; welfare, well-being.
समयः	सम्+√इ+अ; समझौता, प्रतिज्ञा. अवधि; agreement, contract, oath, time.
धर्म्यम्	धर्मादिनपेक्षम्, धर्मानुसारी; just, righteous.
दायाद्वम्	पैतृक धन का अंश, भाग; share of patrimony; दायाद=the receiver of heritage.
अपह्राय	अप+√हा+त्यप्=छोड़कर, त्यागकर; having left, having abandoned.
पराक्रमः	परा+√क्रम्, पराक्रमते; वीरता, बल, शक्ति, बहादुरी; prowess, valour, heroism.

संस्कृतोदयः

पशुपतिः	पशूनां जीवात्मनां पतिः स्वामी; पशुओं (जीवात्माओं) का स्वामी अर्थात् भगवान् शिव; Siva, the Lord of jīvātmans (souls)
देवेन्द्रार्तिकरान्	देवेन्द्रस्य आर्तिकरान् (आर्त्तिः—आ + √ऋ + ति) इन्द्र को सताने वाले; causing trouble to the lord of the gods, one who troubles Indra.
गौः	गच्छतीति गौः; पृथ्वी अपनी कीली पर घूमती है; the earth.
षोडशः किरणः	
शबराणाम्	जंगली, वनवासी, भील; a mountaineer, barbarian, savage.
साधुजनविगर्हितम्	साधुभिर्जनैः विगर्हितम्, सज्जनों द्वारा निन्दित; condemned by noble men.
पुरुषपिशितोपहारे	पुरुषाणां पिशितस्य उपहारे, मनुष्य के मांस की भेंटमें; the oblation or gift of human flesh.
शिवास्तम्	शिवानां स्तम्, सियार का रोना, सियार की आवाज; the howling of a jackal.
कौशिकः	उल्लू; an owl.
शकुनिज्ञानम्	शकुनीनां शकुनिकृतं वा ज्ञानम्; चिड़ियों की जानकारी; the knowledge of birds.
आपानकम्	मद्यपान का स्थान, सामूहिक मद्यपान, शराब पीना; a place for drinking in company, a drinking party.
विषदिग्धमुखाः	विषेण दिग्धं मुखं येषाम्; दिग्ध=√दिह् + त; विषैली नोंक वाले, जिनका अग्रभाग विष में बुझा हो; having envenomed points, having their end poisoned.
सायकः	तीर, बाण; arrow.
परयोषितः	परेषां योषितः, दूसरों की पत्नियाँ; the wives of other men.
शार्दूलः	√शृ + हिंसायाम्, चीता; a tiger, a panther.

भास्करी

वनगजमर्दः	वनगजानां मर्दः; जंगली हाथियों के मदस्तावसे; with the rut of wild elephants.
अङ्गरागः	अङ्गनां रागः; लेप, सुन्दरता के लिए लगाया जाने वाला पदार्थ; unguent, cosmetic.
उत्सादकारि	उत्सादस्य कर्तृ; हानिकारक; causing ruin.
उत्खातमूलम्	उत्खातं मूलं यस्य; जड़ से उखाड़ा; uprooted.
कलत्रम्	नपुं०, पत्नी; wife.

सप्तदशः किरणः

निःश्रेयसम्	निःश्रेयस है प्रयोजन जिसका, निःश्रेयस की ओर ले जाने वाला; leading to happiness (or final beatitude).
राजर्षिवंशे	राजर्षियों के वंश में; राजर्षि=राजाओं में ऋषि; a royal ṛṣi, ṛṣi of royal descent.
प्राज्ञसंमत	प्राज्ञेषु संमत; बुद्धिमानों में आदरणीय; honoured among wise; प्रज्ञा=बुद्धि, wisdom. संमत=सम्+मत्+त.
प्रशस्तानि	प्र+शस्+त; प्रशंसित, अच्छा; praised, commended, good.
अनास्तिकः	न--नास्तिकः; जो नास्तिक न हो; not an atheist or unbeliever.
श्रद्धवानः	श्रद्+धा; श्रद्धा करता हुआ; having faith, being true or truthful.
संसारिणी	सम्+सृ; व्यापक; comprehensive.
अप्राप्यम्	न--प्राप्य; (प्र+प्राप्) जो मिल न सके; not to be attained.
आर्यकर्मणि	आर्याणां कर्मणि अथवा आर्ये कर्मणि; आर्यों का कर्म, श्रेष्ठ लोगों का कर्म, action worthy of honourable people.
भूतिकर्मणि	कल्याणकारी कर्म, उन्नतिकी ओर ले जाने वाले कर्म; actions leading to prosperity.

संस्कृतोदय

अभ्यसूयन्ति	अभि + √असूय् = द्वेष करना, डाह करते हैं; to hate or be indignant at.
असंभिन्नार्थमर्यादः	न संभिन्ना आर्याणां मर्यादा येन; नहीं तोड़ी है आर्यों की मर्यादा जिसने; one who has not transgressed the rules of the noble men.
सुव्याहृतानि	अच्छे कथन; वि + आ + √हृ; good sayings.
संचिन्वन्	सम् + √चि, शतृ प्रत्ययान्त, इकट्ठा करता हुआ; collecting.
शिलाहारी	शिल या उच्छ चुगनेवाला; one who lives on ears of corn.
मर्मसु	मर्मन् = वह स्थान जहां चोट लगने पर मर जाय; mortal spot.
शुश्रूषया	शुश्रूषा श्रोतुमिच्छा; √श्रु का सन्नत; सेवा, desire to hear, obedience, reverence.

अष्टादशः किरणः

वृत्तेन	कर्मणा, जीवनविधिना, कर्म; action, mode of life, behaviour.
लोकपालोपमम्	लोकपालाः उपमा यस्य तम्; दिशाओं के स्वामियों के समान; like the guardians of the quarters of the world.
शत्रुमर्दनम्	शत्रूणां मर्दनम्, शत्रुओं को कुचलने वाला, शत्रुओं को नष्ट करने वाला; one who destroys enemies.
वशगः	वशानुगः, वश में रहने वाला; अधीन; obedient to the will of another, devoted, submissive.
प्रियदर्शने	प्रियं दर्शनं यस्याः सा, सुन्दर; देखने में सुन्दर; pleasing to look at, handsome, lovely.
मुखप्रेक्षः	मुखं प्रेक्षते इति; मुख देखने वाला; observing or watching the face.
अगदः	बीमारियों का तोड़; the science of antidotes.
यशस्यम्	कीर्तिकारक; प्रख्यात; leading to glory, famous.

भास्करी

पतिवेदनम्	पति प्राप्त करने का साधन; आभिचारिक क्रिया द्वारा पति को बश में करना; securing or keeping a husband by magical means.
कृष्णा	द्रौपदी का एक नाम; a name of Draupadi.
मन्त्रमूलपराम्	मन्त्र-औषध में लगी हुई; devoted to magical acts.
वेश्मगतात्	वेश्मनि गतात्; having come home, arrived in house.
उद्विग्नस्य	उद्+√विज्+त; व्याकुल, परेशान; perturbed, disturbed, agitated.
सार्जवम्	आर्जवेन सहितम्, सरल, ईमानदार, छलरहित; possessed of simplicity, honest, simple.
प्रयता प्रणयम्	प्र+√यम्+त; संयमी, विनीत; restrained, self-subdued, devout. प्र+√नी; प्रेम, प्रीति, प्यार; love, affection, attachment.
शुश्रूषुः	√श्रु का सन्नत; सेवा करने की इच्छुक, आज्ञाकारी, सेवापरायण; desirous of serving, obedient.
दुर्व्याहृतात्	दुष्टं व्याहृतम्, निन्दित, बोल, बुरा कथन; ill-spoken.
दुरवेक्षितात्	दुर्+अवेक्षित (अव+√ईक्ष्+त), बुरा देखना; ill-looking.
स्वलंकृतः	सुष्ठु अलंकृतः; अच्छी प्रकार आभूषणों से सजा हुआ; well ornamented, well decorated, putting on ornaments.
अभिनन्दामि	अभि+√नन्द्=सत्कार करना, आवभगत करना, नमस्कार करना; to greet, to welcome.
प्रमृष्टभाण्डा	प्रमृष्टानि भाण्डानि यया; जिसने बर्तनों को साफ कर लिया है; one who has cleansed the vessels or utensils.
मृष्टाश्रा	मृष्टम् अन्नं यया सा; जिसने अन्न पका लिया है; having cooked food, one who has cooked food.

संस्कृतोदयः

गुप्तधान्या	गुप्तं धान्यं यया; अनाज को छिपाकर या ढककर रखने वाली; one who keeps grains or provisions hidden or covered.
सुसंमृष्टनिवेशना	सुष्ठु संमृष्टं निवेशनं यया; घर को साफसुथरा रखने वाली; one who keeps the house neat and clean, one who has well cleaned the house.
अतिरस्कृतसंभाषा	न तिरस्कृतं संभाषणं यया; वार्तालाप या अभिनन्दन का तिरस्कार न करने वाली; having not disregarded conversation or greeting.
अतिहासः	अधिक हँसना, जोर से हँसना; excessive laughter, to laugh too much.
अतिरोषः	अधिक क्रोध; excessive anger.
वराङ्गना	अङ्गनानां वरा; सुन्दर स्त्री; a lovely woman.
दिवारात्रम्	दिवा च रात्रौ च; दिन-रात, हमेशा; by day and night, always.

एकोनविंशः किरणः

भरतर्षभ	भरतानां भरतेषु वा ऋषभ, भरत के वंश में श्रेष्ठ; the most distinguished of the descendents of Bharata.
वाष्णय	वृष्णेरपत्यम्; कृष्ण का एक विशेषण; an epithet of Kṛṣṇa.
यमयोः	जुड़वाँ, एक साथ उत्पन्न; twin, twin-born.
प्रीतिविवर्धनम्	प्रीतिर्विवर्धनम्; आनन्द बढ़ाने वाला, प्रेम बढ़ाने वाला; increasing love or joy, enhancing happiness.
दीनात्मा	दीनः आत्मा यस्य; दुःखी, निराश, विषण्ण; distressed, afflicted, dejected.
समरे	सम् + √ऋ 'गती', आमने-सामने आना; युद्ध, लड़ाई; encounter, battle.
संयुगे	सम् + √युज्; टक्कर, युद्ध, लड़ाई, प्रतिस्पर्धा; fight, war, battle, contest.

भास्करी

परवीरहन्	परवीराणां हन्तः; शत्रु का नाश करने वाले, शत्रु के योद्धाओं को मारने वाले; the destroyer of the enemy's warriors.
पृतना	सेना, सेना का डिवीजन; an army, a division of army.
शान्तनवः	शान्तनोरपत्यम्; the son of Santanu=Bhishma.
दण्डपाणिम्	दण्डः पाणौ यस्य, यमराज, मृत्यु का देवता, हाथ में दण्ड धारण करने वाला; an epithet of Yama, the god of death.
अन्तकम्	अन्त करने वाला, मारने वाला, मृत्युका देवता यम; causing death, the destroyer, Yama, the god of death.
वज्रधरः	वज्रं धरतीति; वज्र धारण करने वाला, इन्द्र देवता; the wielder of thunderbolt, god Indra.
सुरासुरैः	सुराश्च असुराश्च; देवता और राक्षस; the gods and the demons.
आतशस्त्रः	आतं गृहीतं शस्त्रं येन, आत=आ+√वा+त; शस्त्र लिये हुए, शस्त्र उठाए हुए; wielding the weapon, one who has resorted to weapons.
गृहीतवरकामुकः	गृहीतं वरं कामुकं येन; कामुकम्=कर्मणि शक्तम्; श्रेष्ठ धनुष धारण करने वाला; having taken the excellent bow.
न्यस्तशस्त्रम्	न्यस्तं शस्त्रं येन सः; हथियार छोड़े हुए; शस्त्र का त्याग किये हुए; शस्त्र न चलाते हुए; having thrown away the weapons, one who has abandoned weapons.
द्रवमाणे	√द्रु 'भागता' आत्मनेपदे शानच्; भागता हुआ, पलायन करता हुआ; running away.
विकले	किसी अङ्ग के दोष वाला; शारीरिक दोष वाला; imperfect, maimed, deprived of a part; तु० सकलः।
एकपुत्रके	एकः पुत्रो यस्य; एक पुत्र वाला, जिसके केवल एक पुत्र हो; having one single son.

संस्कृतोदय

बुद्ध्यर्थे	दुस् + प्र + √ ईक्ष् + य; दखने में बुरा; कुरूप, भद्दे रूप वाला; ugly to look at.
समराकाङ्क्षी	युद्ध चाहने वाला, युद्धप्रिय; desirous of battle, delighting in fight.
बीभत्सुः	अर्जुन का एक नाम या विशेषण; an epithet of Arjuna.

विशः किरणः

निघने	नाश, मृत्यु, हानि; destruction, death, loss.
लघुचेतसाम्	लघु चेतो यस्य—चेताः; तुच्छ बुद्धि वाला, संकीर्ण विचार वाला; mean-minded, narrow-minded.
उदारचरितानाम्	उदारं चरितं येषाम्; उत्तम विचार वाले, विशाल हृदय वाले; noble-minded, magnanimous.
विक्रियाम्	विकारम्; परिवर्तन, बदलना; modification, alteration.
तृणोलकया	घास से बनाई गई लुकाड़ी; a fire-brand made of straw.
कुसुमस्तम्बकस्य	कुसुमानां स्तम्बकः; फूलों का गुच्छा; a bunch of flowers.
वृत्तिः	√ वृत्; दशा, अवस्था; existence, state, condition.
विशीर्येत	वि + √ शृ = चूर-चर होना, नष्ट होना, सूख जाना; to split in pieces, to waste away.
भारति	ओ वाणी, विद्या की देवी, सरस्वती; speech, Goddess Sarasvatī.
कनिष्ठः	अतिशयेन युवा; सबसे छोटा, सबसे कम; the smallest, the least, the youngest.
वह्निः	वहतीति; अग्नि; fire.
पुरुषसिंहः	पुरुषः सिंह इव; वीर पुरुष, पराक्रमी, पुरुषों में सिंह जैसा प्रतापी; a valiant man, heroic man, like a lion among men.

भास्करी

कापुरुषः	ओछा नर; (तु० कापथः); कायर, कदर्य; coward, wretch, a mean fellow.
व्यसनम्	बुरी आदत, निन्दित कर्म; evil practice, bad habit. वि√अस्+ल्युट्
कलहः	लड़ाई-झगड़ा; quarrel, strife.
कर्मफलहेतुः	कर्मफल हेतुर्यस्य; कार्य के परिणाम का ही ध्यात रखने वाला, फल के लिये कार्य करने वाला; acting with a view to the results of the deeds. भगवद्गीता का उपदेश है कि मनुष्य को कर्म के फल की चाहन करके कर्म करना चाहिये। इस विषय में देखो तिलक का गीता रहस्य।
बाहुप्रतापार्जितम्	बाह्वोः प्रतापेनार्जितम्; अपने बाहुबल से अर्जित, वीरतापूर्वक ग्रहण किया गया; earned or acquired by the power of arms.
हतद्विपेन्द्ररुधिरैः	हताणां द्विपेन्द्राणां रुधिरैः; द्विपेन्द्र=a big elephant; मारे गये हाथियों का रक्त; the blood of the killed elephants.
हिरण्यरेतसम्	हिरण्यं रेतो यस्य सः हिरण्यरेताः; अग्नि; fire.
धमः	√वि 'इकट्ठा करना'; ढेर, समूह; heap, collection.
आस्कन्दति	आ+√स्कन्द्=ऊपर चलना, कुचलना; to step over, to tread.
अभिभूतिभयात्	अभिभूतेः भयात्; पराजय या अपमान के भय से; for fear of defeat, subjugation or disgrace.
धाम(न्)	√धा; तेज, प्रकाश, गौरव, स्वाभिमान; light, lustre, splendour, glory.
निरुत्साहम्	उत्साहरहितम्; निर्+उत्साहः; उत्साहविहीन, मन्द, प्रयत्नहीन, उद्यम-रहित; spiritless, inactive, effortless.
अरिनन्दनम्	अरीणां नन्दनम्; शत्रु को प्रसन्न या आनन्दित करने वाला; delighting the enemies, one who gives pleasure to the enemy.

सीमन्तिनी	स्त्री सीमन्त कशवश' तद्वती स्त्री a woman
स्थविरम्	बूढ़ा आदमी, बुजुर्ग, वृद्ध, an old man.
कार्पण्यम्	कृपणस्य भावः, दरिद्रता, कापुष्यता; poverty, wretchedness.
निर्वाणम्	निर्+√वा; बुझना, समाप्त होना; extinction, blowing out; तु० निर्वातो देशः ।
परिस्रवति	परि+√स्रु=बहना, चूना; flowing, gliding down.

तृतीयः उन्मेषः

प्रथमः किरणः

दुर्गसंतरणम्	दुर्गस्य संतरणम्; दुर्ग को पार करने का साधन, कठिन मार्ग को पार करने का साधन; means of crossing a stream or narrow path.
निगृह्णन्ति	नि+√ग्रह्=वश में रखना; to keep in check, to restrain.
अनसूयकाः	असूयतीति असूयकः, न+असूयकः; जो द्वेष न करता हो, अच्छे विचार वाला; free from malice, not envious, not spiteful.
संवृता	संयत, restrained.
धर्मकोविदाः	धर्मे कोविदाः, धर्म में प्रवीण, धर्मज्ञ; learned in religion, experienced in religious conduct.
आह्वेषु	आ+√ह्वै; युद्ध, लड़ाई; battle, war.
संशान्तरजसः	सशान्तं रजो येषाम्; जिनका रजोगुण पूर्णतः शान्त हो गया है; those in whom the 'rajas' quality is fully allayed.
ग्राम्यादन्नात्	ग्राम्य भोजन से; तामस भोजन से; from bad food.
अद्विषानः	अत्+√धा+शानच्; विश्वास करते हुए, श्रद्धा रखते हुए; believing, trusting.
वान्तः	√वम्+त; वशी, संयमी; trained, subdued, restrained.

भास्करी

द्वितीयः किरणः

उञ्छवृत्तिः	उञ्छ एव वृत्तिर्यस्य; $\sqrt{\text{उञ्छ}}$, to glean, to gather; भूमौ पतितस्यै- कैकस्य कणस्योपादानमुञ्छः; दाने बीन-बीनकर जीवन धारण करने वाला; one who lives by gleaning grains, gleaner.
ब्रह्मसदनम्	ब्रह्मणः सदनम्; ब्रह्मा का निवासस्थान; the residence of Brahman.
एकाग्रमनः	एक + अग्र + मत; एकाग्रचित्त; one who has fixed his thoughts on one object.
अतिमानुषम्	मानुषमतिक्रान्तम्; मानव शक्ति से परे, मनुष्य के लिए दुष्कर; super- human, that which is beyond the human power.
अचितः	आ + $\sqrt{\text{चि}}$ + त; एकत्र किया, जुटाया; collected, accumulated.
शिलोपजीवी	शिलः, शिलम् gleaning ears of corn, अन्न के कण बीनना; अन्न के कण बीनकर जीविका चलाने वाला; one who lives on gleaning of the ears of corns.
अत्यवाहयत्	अति + $\sqrt{\text{वाह}}$; $\sqrt{\text{वह}}$, गिजन्त, लड़, विताना, गुजारना; to spend, to pass.
वर्षपूर्णा	वर्षाणां पूरा; कई वर्ष, अनेक वर्ष; a series or number of years.
अनावृष्ट्या	अनावृष्ट्या कृते; वृष्टि के अभाव से उत्पन्न; caused by drought.
यथाविधि	विधिमनतिक्रम्य; उचित ढंग से, नियमानुसार; duly, properly, accor- ding to rules.
समुन्नतविरलास्थिपञ्जरः	समुन्नतानां विरलानामस्थिनां पञ्जरः; ऊंची विरल हड्डियों का ढाँचा; a skeleton, a cage of bones.
धमनिसंततगात्रः	धमनीभिः संततं गात्रं यस्य; जिसका शरीर धमनियों से व्याप्त था; one whose body was stretched by the veins.
अर्घ्यम्	समानपूर्ण उपहार, अतिथि को दिया जाने वाला जल; respectful offering, water given to a guest.

प्रत्यग्रा

ताज fresh तु० शारदजार्तवे P 6 १ 9

पाद्यम्

पादार्थम् उदकम्; पादप्रक्षालनार्थं जल; water for washing feet.

अव्यवधानायाम्

न व्यवधानं यस्याम्; बिना आसन के, बिना आन्तरिक वस्तु के; without any intervening object, bare (ground).

बलिमन्त्रोपबृंहितान्

बलिमन्त्रों से समर्थित; increased, magnified by the mantras used at the offering of a portion of food to creatures.

क्षुत्परिवलान्तम्

क्षुधा परिकलान्तम्; भूख से पीड़ित, भूख से व्याकुल; distressed with hunger.

तपोधनः

तप एव धनं यस्य सः; तपस्या में रत, तपस्वी; devoted to penances, cherishing penance. तु० आचारप्रयतः।

चिन्तातुरः

चिन्तया आतुरः, चिन्ता से व्याकुल; affected with anxiety, disturbed.

अभ्यागताय

अभि+आ+√गम्+त; आया; आ, अतिथि; arrived, come as a guest, a visitor.

कारुण्यजीविते

करुणायाः भावः कारुण्यम्, तदेव जीवितं यस्या सा; दयालु, दयापूर्ण; compassionate, kind, full of pity.

उपपन्नम्

उप+√पद्+त; उचित, ठीक, सही; proper, suitable, right.

प्राणसंशयम्

प्राणानां संशयः; जीवन का भय, मृत्यु का भय; danger to life.

दयिताः

प्यारी; beloved.

साश्रुवर्षम्

अश्रुवर्षेण साकम्; आँसू बहाते हुए, रोते हुए; shedding tears, with tears in eyes.

अव्यतिरिक्ता

न+व्यतिरिक्ता; वि+अति+रिच्+त; अभिन्न, एक, अपृथक्; not separate, indistinct.

उपोषिताय

उप+√वस्=‘उपवास करना’, व्रत किये हुए, उपवास किये हुए; one who has undertaken a fast.

भास्करी

कश्मलाविष्टम्	कश्मलेन आविष्टम्; निराश, दुःखी; full of dejection, dejected.
प्रत्यभ्यनन्दत्	प्रत्यभि√नन्द्, प्रति+अभि√+नन्द्=स्वीकार करना; to accept.
कालपक्वः	कालेन पक्वः; पक्वः=√पच्+त; वृद्ध, बूढ़ा, उम्रके कारण पका हुआ; old in age, old, experienced.
उपवासः	उप+√वस्+अ; व्रत, निराहार रहना; a fast.
श्रुतिसुभगेन	श्रुत्यै सुभगम्; प्रिय, मधुर, कानों को सुख देने वाला; agreeable to the ear, sweet.
आयस्यमानहृदयम्	आयस्यमानं हृदयं यस्य तम्; दुःखी है हृदय जिसका; whose heart is effected with sorrow.
श्रद्धापूर्ताः	श्रद्धया पूताः, विश्वास से पवित्र, श्रद्धामय; sanctified by faith, sacred with faith.
शीलसंभृतम्	शीलसंगत, विनीत; courteous.
मुनिजनध्यानसंपद्	मुनिजनानां ध्यानरूपा संपत्; तपस्या का फल; मुनियों के ध्यान से उत्पन्न फल; the fruits of the penance of the sages.
क्षुधाविधुरा	क्षुधया विधुरा; भूख से पीड़ित, भूखी; afflicted with hunger, hungry.
आपन्नसत्त्वा	आपन्नं सत्त्वं यया; गर्भिणी; pregnant, quick or big with child.
छन्दमाना	√छन्द्; प्रसन्न की जाती हुई; being pressed, coaxed, persuaded.
विभुः	स्वामी, वि+√भू; master, sovereign, self-subdued.
न्यायोपात्तेन	न्यायेन उपात्तम्; उचित रूप से प्राप्त, न्यायपूर्वक अर्जित; received properly, earned with justice.
तुलातीता	अतीता तुलाम्; अतुलनीय, जिसकी तुलना न हो सके; not comparable, unequalled.

संस्कृतोदय

तृतीय किरण

अतिविरल.	अत्यन्तं विरलः, कम, बहुत अल्प; very scarce, very rare.
क्षयोन्मुखम्	क्षयमावहतीति; नाश की ओर उन्मुख, विनाशशील; tending to decay, leading to destruction.
समुदयावहम्	समुदयमावहतीति; उन्नति की ओर उन्मुख, उन्नतिकारी; leading to progress.
निरङ्कुशः	अङ्कुशरहिताः; जिन पर बन्धन न हो, मनमाना करनेवाले; unchecked, uncontrolled.
अवरकाले	अवरश्चासौ कालश्च; बाद का समय; later time.
मिथः कलहः	आपसी लड़ाई, एक दूसरे के साथ लड़ाई; mutual quarrel, quarrelling with one another.
पारिषद्याः	परिषदं समवेतीति पारिषद्यः, members of assembly; तु० सैन्यः, सैनिकः ।
परिद्वनः	परितो द्वनः; √द्व+त; दुःखी, पीडित; pained, afflicted, tormented.
अपोढविध्नम्	अप० √ वह्, +त; दूर हो गये हैं विघ्न जिससे; with all impediment removed.
व्यवसायपुरोजवस्य	व्यवसाय में अग्रगामी; leading in industry.
सौकर्याय	सुकरस्य भावः; सुविधा, सरलता, आसानी; ease, facility.
संघटनाय	रचना, व्यवस्था, निर्माण; organization, formation.
सांमनस्याय	संमनसो भावः; सहमति, ऐक्य, एकमत; agreement, concordance, harmony.

चतुर्थः किरणः

लोभोपहतचेतसः	लोभेन उपहतं चेतो येषाम्; लोभ से आविष्ट; confounded with greed, blind with greed.
--------------	--

भास्करी

अर्धपथे	पथोऽर्धे; बीच रास्ते में, आधे रास्ते में; half way, on the way.
बन्दिग्राहम्	बन्दी की तरह बन्धन में जकड़ कर; seizing like a captive, imprisoning.
गिरिकन्दरायाम्	गिरे: कन्दरायाम्, पहाड़ की गुफा में; in a cave of mountain.
पापाशयैः	पाप आशयो येषाम्; बुरी नीयत वाले, दुर्भावनापूर्ण; wicked-minded, evil-intentioned.
पवनजवः	पवन इव जवो यस्य; हवा जैसा तेज, वायु के समान वेगवान्; having the speed of the wind, swift as the wind.
पयस्विन्यः	गौ, दुधारु गौ, दूध देने वाली; a cow, a cow yielding milk.
व्याहृत्य	वि+आ+हृ+ल्यप्; कह कर; having spoken.
उपच्छन्दितः	प्रसादित; persuaded, coaxed.
शक्य	√शक्+र; इन्द्र; ।
दृष्टियथम्	दृष्टे: पन्थाः, दृष्टि की पहुँच का क्षेत्र, जहाँ तक दृष्टि पहुँचे; the range of sight.
पामर	पतित; vile, low, degraded.
प्रणिधानेन	प्र+नि+√धा+ल्युट्; चिन्तन, ध्यान, समाधि; meditation, contemplation.
विश्वासभाजनम्	विश्वासस्य भाजनम्; विश्वसनीय, विश्वासपात्र, जिस पर विश्वास किया जा सके; trusted, reliable.
निर्व्याजभक्तिः	निर्व्याजा भक्तिर्यस्य; सच्ची भक्ति वाला; of sincere devotion.
तिग्मानि	√तिज् 'तनूकरणे'; तेज, तीक्ष्ण; sharp.
अकृतार्था	न कृतार्था; कार्य में विफल, जिसका प्रयोजन सिद्ध न हुआ हो; not having accomplished her mission.

संस्कृतोदय

अनिन्दन	जो निन्दायोग्य न हो प्रशसनीय not subject to censure, praiseworthy.
सारमेयः	सरमायाः अपत्यम्; कुत्ता; a dog.
निर्वन्धः	जिद्, हठ; insistence, obstinacy.

पञ्चमः किरणः

स्नानोत्तीर्णः	स्नानादुत्तीर्णः; स्नान करके निकला हुआ; returned after taking bath.
उत्कण्ठया	चिन्ता, दुःख, परेशानी से; anxiety, uneasiness.
प्रियसखीवृत्तिम्	प्रिय सखी का व्यवहार; the attitude of dear friends.
अनुत्सेकिनी	न उत्सेकिनी; निरभिमान, जो घमण्ड में चूर न हो; not proud, not puffed up, not arrogant. उद्+√सिच् ।
आधिः	मानसिक कष्ट, अभिशाप; agony, anxiety. तु०—आधिः ।
कातरा	दुःखी, व्यथित; distressed, grieved, perplexed.
स्तम्भितवाष्पवृत्तिकलुषः	स्तम्भितस्य वाष्पस्य वृत्त्या कलुषः; आसुओं के रुकने से रूँधा हुआ; choked due to the obstruction of tears.
वैक्लव्यम्	विकलवस्य भावः; दुःख, तकलीफ, व्याकुलता; grief, distress.
अरण्यौकसः	अरण्यमोको येषाम्; वनवासी, वन में निवास करने वाले; dwelling in forest, residing in woods.
तनयाविश्लेषदुःखैः	तनयायाः विश्लेषः, तस्य दुःखैः; पुत्री से बिछुड़ने का दुःख; the sorrow caused by separation from a daughter.
व्यवस्यति	वि+अव+√सो; कोशिश करना; to strive, to wish.
प्रियसङ्गता	प्रियाणि सङ्गतानि यस्याः सा; जिसे आभूषण प्रिय हों, आभूषणों को चाहने वाली; fond of ornaments.

भास्करी

कुसुमप्रसूतिसमये	कुसुमानां प्रसूतिः, तस्याः समयः; फूलों के खिलने का समय; the time of the blooming of the flowers.
समवस्था	सम्+अवस्था=समावस्था, एक ही दशा; the same condition. तु० रघुवंश VIII. 41.
उद्गीर्णदर्भकवलाः	उद्गीर्णं दर्भकवलं याभिः; उद्+गृ 'बाहर निकालना'+त; बाहर निकाल दिया है दर्भ घास का कौर जिन्होंने; having omitted out the mouthful of darbha grass.
परित्यक्तनर्तनाः	परित्यक्तं नर्तनं यैः ते; जिन्होंने नाचना बन्द कर दिया है, नृत्य बन्द कर देने वाले; having abandoned dancing.
अपसृतपाण्डुपत्राः	अपसृतानि पाण्डुपत्राणि यासाम्; जिनके पीले पत्ते गिर गये हैं; having cast down pale leaves.
निक्षेपः	नि+√क्षिप्; बन्धक, गिरवी रखी हुई वस्तु; deposit, anything deposited.
गर्भमन्थरा	गर्भेण मन्थरा; गर्भ के कारण मन्द; slow due to pregnancy.
व्रणविरोपणम्	व्रणस्य विरोपणम्; वि+√रुप्+अन; घाव को अच्छा करने वाला; sore-healing.
कुशसूचिविद्धे	कुशानां सूचिभिः विद्धे; कुशों की नोक से क्षत; cut by the blades of kuśa grass.
श्यामाकसृष्टिपरिर्वाधितकः	श्यामाकस्य सृष्टिभिः परिर्वाधितकः; साँवा (श्यामक) अन्न की मुट्ठी दे-देकर बढ़ाया गया; reared by the handfuls of wild grains (śyāmāka).
पुत्रकृतकः	पुत्र की तरह पाला गया, गोद लिया गया, पुत्र; adopted as a son, adopted son.
अविरप्रसूतोपरतया	हाल के ज्वांत से जो मर गई है; dead of recent delivery.
ओदकान्तात्	आ+उदक+अन्तात्; पानी तक; up to the vicinity of water.
मलयतटोन्मूलिता	मलयतट से अलग की गई; uprooted from the slopes of Malaya.

दानानाथविपन्नशरणः	दीनार्थ अनाथार्थ विपन्नार्थ, तेषां शरणम्; गरीब, अनाथ और दुःखी को आश्रय देने वाला; the shelter of the poor, the unprotected, and the distressed.
सकलार्थिजनसंपादितमनोरथः	सकलानामर्थिजनानां संपादिता मनोरथा येन; सभी माँगने वालों की इच्छा पूरी करने वाला; one who has fulfilled the desires of all mendicants.
त्रिदिवम्	स्वर्ग; the heaven, space within the third sky, i.e. the most sacred part of the sky.
आखण्डलः	इन्द्र; the god Indra.
विहगामिषास्वादलालसः	विहगानामामिषस्यास्वादे लालसा यस्य; पक्षियों के मांस को खाने में है लालसा जिसकी; covetous of tasting the flesh of birds.
अकाण्डे	असमये; unexpectedly, suddenly.
उपप्लवम्	उप + √प्लु; √-प्लवः=दुर्भाग्य, विपत्ति; misfortune, calamity.
आस्थानगतम्	आस्थानं गतः तम्; सभा में बैठा हुआ; gone to the assembly, sitting in the hall of audience.
निभूतम्	गुप्त रूप से, एकान्त में, छिपकर; secretly, privately, unperceived.
अश्रुजललुलिताम्	अश्रुजलेन लुलिताम्; अश्रुजल के कारण डबडबाई, आँसुओं से कातर; agitated with tears, shaking with tears.
कृपणम्	क्रिचि०; असहायतासे, कातरतासे; helplessly.
अभ्यर्क्षितः	अभि + √अर्क्ष् + त; सताया गया, पीड़ित किया गया; tortured, distressed.
व्यपरोपयसि	वि + अप + √रुप् = हटाना, भगाना, दूर करना; to remove, drive off.

भास्करी

उदीर्णकारुण्यः	उदीर्णमुद्गतं कारुण्यं यस्मिन्; दया से अभिभूत, दया से भरा हुआ, दयार्द्र, करुणामय; filled or overtaken with pity.
परिप्लवनेत्रम्	तरलनेत्रम्; तु० "चञ्चलं तरलं चैव पारिप्लवपरिप्लवे" इत्यमरः; चञ्चलनेत्रम्; fickle-eyed.
दोलारूढः	दोलामारूढः; आ+√रूह्+त; द्वन्द्व में पड़ा हुआ; पशोपेश में पड़ा हुआ; mounted on a swing, in a dilemma, uncertain.
प्राणगृध्नूः	प्राणानां गृध्नूः; √गृध्; जीने के लिए लालायित, जीवन के मोह में पड़ा हुआ; covetous of life, desirous of living.
कापुरुषाक्षीर्णः	कापुरुषैः कुपुरुषैराक्षरितः; कायर या ओछों द्वारा अपनाया गया; followed by the coward or mean people. तु०—कापथम् ।
नष्टचेष्टः	नष्टा चेष्टा यस्य सः; निराश, विफल, निहत्साह; discouraged, effortless, disappointed.
परहृतपिशितभुजः	परैः हृतानां प्राणिनां पिशितस्य भोक्तारः; दूसरों द्वारा मारे गये शिकार का मांस खाने वाले; eaters of the flesh (of the animals) killed by others.
स्फोटम्	√स्फाप् 'विस्तारे'+त; समृद्धम्; विस्तृत, बड़ा, दूर तक फैला हुआ; extended, great, far-stretching.
आर्तायनः	आर्तानां दुःखिनामयनम्; दुःखियों का आश्रयस्थान; a place or resort for the afflicted.
निबन्धः	आग्रह, इच्छा; insisting upon, insistence, pertinacity.
भारिकेण	भारी, heavy.
पुण्यगन्धः	पुण्यो गन्धो यस्य; उत्तम गन्ध वाला; of pleasing fragrance.
समीरणः	सम्+√ईर्+ल्युट्; वायु, हवा; the wind.
अशरीरिणी	न शरीरं यस्याः; अमूर्त, विना शरीर वाली, अदृश्य; not possessing body, formless, invisible.

संस्कृतोदयः

प्रकटितरूपः	प्रकटितं रूपं येन; प्रकट किया है शरीर जिसने, जिसने अपना रूप प्रकट किया है; manifest, having manifested the form.
भास्वरी	√भास् 'चमकना'; शुभ्र, चमकदार, तेज; shining, radiant, brilliant.

सप्तमः किरणः

संरम्भः	सम् + √रम्; उद्धतता; arrogance, impetuosity.
केसरिणी	केसरवती, सिंहिनी; lioness.
वर्णचित्रितः	वर्णेन चित्रितः; रंगा हुआ, चित्रकारी वाला; coloured, painted.
दुर्ललितः	अधिक दुलारा गया; fondled too much, hard to please.
दुर्मोचहस्तग्रहः	दुर्मोचः हस्तग्रहो यस्य; कठोर है हाथ की पकड़ जिसकी; catching tightly with the hand.
डिम्भकेन	बालकेन.
व्यपदेशः	वंश, जाति; family, race.
एकान्वयः	एकः अन्वयो यस्य; समानवंशः; एक ही वंश का, समान वंश का; of one family or race.
धर्मदारपरित्यागिनः	धर्मदाराणां परित्यागिनः; धर्मपत्नी को त्यागने वाले का; of one who has abandoned his rightful wife.
शकुन्तलावण्यम्	शकुन्तलस्य लावण्यम्; पक्षी की सुन्दरता; the beauty of the bird.
मणिबन्धे	हस्ते, कलाई पर; on the wrist.
रक्षाकरण्डकम्	रक्षार्थं करण्डकम्; तावीज, गण्डा; a preservative amulet.
सिंहशावविमर्दः	सिंहशावस्य विमर्दः; सिंह के बच्चे की झटक; the crushing or violent stroke of the cub.
विक्रिया	विकार, बुराई, परिवर्तन; modification.

भास्करी

अष्टमः किरणः

राजेन्द्रमौलिमणिरञ्जितपादपद्मः	राजेन्द्राणां मौलीनां मणिभिः रञ्जितं पादपद्मं यस्य; जिसके चरणकमल महाराजाओं के मुकुटों की मणियों द्वारा रंगे गये हैं; whose lotus-like feet are coloured with the gems studded on the heads (or crowns) of great kings.
विप्रेन्दयादरजसा	विप्रेषु श्रेष्ठानां पादयोः रजसा; श्रेष्ठ ब्राह्मणों के पैरों की धूल से; by the dust of the feet of the great Brāhmanas.
भुजङ्गजिह्वाचपलाः	भुजङ्गस्य जिह्वा इव चपलाः; साँप की जीभ के समान चंचल; unsteady or fickle like the tongue of a snake.
विहितकनकशृङ्गम्	विहिते संपादिते कनकनिर्मिते शृङ्गे यस्य; जिसके सींग सोने से जड़े हों; with horns covered with gold.
रवितुरगसमानम्	रवेः तुरगैः समानम्; सूर्य के घोड़ों जैसा; सूर्य के घोड़ों के समान; like the horses of the sun.
अनिलवेगम्	अनिलस्य वेग इव वेगो यस्य तम्; हवा के समान तेज; तीव्र गति वाले; speedy or swift like wind.
सपदि	तत्काल, तुरन्त, एक क्षण में; instantly, immediately, within a moment.
वाजिनाम्	वाजिन्=घोड़ा, a horse. वाजः बलम्
मदनमसृणौ कपोलम्	मदेन मसृणौ कपोलौ यस्य; मदस्त्राव के कारण चिकने कपोल वाला; having checks wet with rut.
षट्पदैः	भ्रमर, भौरा; a black bee, having six feet.
मेघगम्भीरघोषम्	मेघ इव गम्भीरो घोषो यस्य; बादलों की कड़क के समान गम्भीर आवाज वाला; with a resonant voice like the thundering of clouds.
अविधा	न+विधा; 'शान्तं पापम्' की तरह प्रयोग में आने वाला अव्यय; an interjection.
वारणानाम्	वारण=हाथी; an elephant.

कालपययात	कालस्य पययात परिवर्तनात् परि + √इ + भ्र through revolution of time
अनुशोचिनुम्	अनु + √शुच् = पछताना, पश्चात्ताप करना; to repent, to mourn over.
अनेकयज्ञाहुतिर्तर्पितः	अनेकानां यज्ञानामाहुतिभिस्तर्पितः, अनेक यज्ञों की आहुतियों द्वारा पूजित; worshipped or satiated with the oblations offered in many sacrifices.
पाकशासनः	पाको नाम कश्चिद्राक्षसः तस्य शासनः, इन्द्र देवता; the god Indra.
पुरंदरेण	पुरः दारयति इति पुरंदरः, इन्द्र का एक नाम; a name of Indra.
अमोघम्	न + मोघम्, अचूक; infallible, unfailing.

तवमः किरणः

निशोथिनीम्	नि + √शी + थ; तद्वती; रात्रि; night.
बाहुशालिता	वीरता, बाहुओं की शक्ति, धाक; bravery, strength of arms.
समरशौण्डता	समरे शौण्डः, तस्य भावः; युद्ध-निपुणता; skill in battles.
अोजित्याय	ऊजितस्य भावः; महत्ता; greatness.
प्रव्रज्याम्	प्रव्रजनम्; भिक्षु का जीवन; wandering about as a religious mendicant, a mendicant's life.
वैधव्यवेणीम्	विधवायाः भावः, तस्य वेणीम्; विधवावस्था की वेणी (बालों की चोटी); the braid of widowhood.
चीवरे	भिक्षुक के वस्त्र, चीयड़े; the garment of a mendicant, a rag.
परमेष्ठी	परमे + √स्था; ब्रह्मा का एक नाम; an epithet of Brahmā.
शस्त्रोपजीविनाम्	शस्त्रेण उपजीवन्तीति; शस्त्रधारी, सैनिक, शस्त्र द्वारा जीविका निर्वाह करने वाले; a professional soldier, a warrior, one who lives by fighting. तु०—आयुधजीवी

भास्करी

दीर्घरक्तनयनम्

दीर्घे रक्ते च नयने यस्य; बड़ी और लाल आँखों वाला; having large and red eyes.

मध्यमानक्षीरसागरोद्गारगम्भीरा मध्यमानस्य क्षीरसागरस्य उद्गार इव गम्भीरा; क्षीरसमुद्र के मन्थन से उत्पन्न ध्वनि के समान गम्भीर; resounding like the sound produced by the churning of the milky ocean.

यामिनी

यामवती, निशीथिनी; रात्रि; night. तु० निशीथिनी.

वशमः किरणः

प्रकृतिरञ्जनात्

प्रकृतीनां प्रजानां रञ्जनम् प्रसादः; प्रजा को सुखी या संतुष्ट रखना; pleasing or keeping the subjects contented.

वैदेहि

विदेहस्यापत्यं स्त्री; संखो०; विदेहराज जनक की पुत्री सीता; Sītā, the daughter of Janaka, the king of the Videhas.

अनुष्ठाननित्यत्वम्

नित्य धार्मिक क्रिया में रति; daily practising of religious rites.

आहितारुग्नीनाम्

आहितोऽग्निर्यैः; पवित्र यज्ञाग्नि का आधान करने वाले; those who have kindled the sacred fire.

प्रत्यवार्यैः

प्रति+अव+√इ 'गती'; विघ्न, हानि, रुकावट; obstacle.

सोमपोथी

सोमस्य पाता; सोमरस का पान करने वाला; a drinker of soma-juice.

नन्दिनी

नन्दयतीति; पुत्री; a daughter.

वीरप्रसवा

वीराणां प्रसवित्री; वीर पुत्रों को उत्पन्न करने वाली; one who gives birth to valiant sons.

गर्भदोहदः

गर्भकृतः दोहदः; मनोरथः ('दोहदं दौहदं श्रद्धा लालसं च समं स्मृतम्' इति हलायुधः); गर्भवती स्त्री की इच्छा; the longing of a pregnant woman.

ननान्दुः

—न्दु=नन्द, पति की बहन; husband's sister.

कठोरगर्भा	जिसके गर्भ के दिन पूरे होने को हो far advanced in pregnancy.
पुत्रपूर्णात्सङ्गाम्	पुत्रेण पूर्ण उत्सङ्गो यस्याः सा; पुत्र से भरी गोद वाली; with a son in the lap.
सौख्यम्	मुखमेव सौख्यम्; स्वार्थे तद्धितप्रत्ययः, कल्याण, सुख; आनन्द; pleasure, happiness.
राघवकुलधुरंधरः	राघवकुलस्य धुरं धरतीति; रघु के कुल में श्रेष्ठ; foremost in the family of Raghu.

एकादशः किरणः

गर्भदेवरत्वम्	गर्भदेव स्वामित्वम्; पेट से ही ऐश्वर्यवान् होना; born as a sovereign, born in a rich family.
अभिनवयौवनत्वम्	नयी युवावस्था, उठती जवानी; youth, young age.
अमानुषशक्तित्वम्	अतिमानवीय शक्ति से संपन्न होना; being possessed of super-human power.
अनर्थपरंपरा	अनर्थानां परंपरा; बुराईयों का सिलसिला; series of evils.
समवायः	समूहः, सम्+अव+√इ 'गतां'+घञ्; समूह, समुदाय, मिलन; combination, union, conjunction.
यौवनारम्भे	युवावस्था के आरम्भ में; at the advent of youth.
मृगतृष्णिका	मृगतृष्णा; mirage.
रजनिकरगभस्तयः	चन्द्रकिरणाः, चन्द्रमा की किरणें; the beams of the moon.
शङ्खाभरणम्	शंखों का आभूषण; ornamentation by conch-shells.
प्रदोषसमयनिशाकरः	मंथ्या-समय का चांद; the moon of night-fall.
अनास्वादितविषयरसस्य	न आस्वादितो विषयाणां रसो येन; जिसने इन्द्रियविषयों का रसास्वादन न किया हो; not having tasted the pleasures of sensual objects.



भास्करी

कुसुमशरप्रहारजर्जरिते	कामदेव की चोटों से चूर-चूर, दुर्बल; shattered by the strokes of Cupid.
प्रजागरः	प्र + √जागृ + अ; जागरूक होना, जाग, सावधानी; wakefulness, being vigilant.
कल्याणाभिनिवेशी	कल्याणे अभिनिवेशः आग्रहः यस्य; भलाई करने में रत, सदाशय; one strongly bent on doing good.
वैदग्ध्यम्	विदग्धस्य भावः, पकापन, वि + √दह् + त; दक्षता, चतुराई, निपुणता; skill, proficiency.
गन्धर्वनगरलेखा	आकाशस्थ गन्धर्वलोक का परिसर; the margin-line of an aerial town. The different forms of changing clouds comparable with an aerial form are usually termed गन्धर्व-नगर.
जरावैकल्यप्रलपितम्	जराया वैकल्यस्य प्रलपितम्; वृद्धावस्था की विकलता का बड़बड़ाना; prating due to the infirmity of old age.
आत्मप्रज्ञापरिभवः	आत्मनः प्रज्ञायाः परिभवः, अपनी बुद्धिमत्ता की पराजय या अपमान; defeat or insult to one's own wisdom.
उपरचिताञ्जलिः	उपरचितो बद्धोऽञ्जलिर्येन; अञ्जलि बाँधे हुए, हाथ जोड़े हुए; with folded hands.
महामोहकारिणि	महामोहं करोतीति तस्मिन्; मोह या अज्ञान उत्पन्न करने वाला; causing great infatuation or ignorance.
विटैः	धूर्तैः; चरित्रहीन व्यक्ति, लण्ड, दुष्ट; a dissolute young man, a rogue.
सिद्धादेशः	जिसकी आज्ञा मानी जाती है; one whose orders are carried out.
खलीकरोति	अखलं खलं करोतीति; बुरा बना देता है; makes evil or wicked.
आरूढप्रतापः	आरूढः प्रतापो यस्य; चढ़ा है प्रताप जिसका, प्रतापी, धाकवाला; one whose valour is high.

द्वादश किरण

विनीत आदर करने वाला समान करने वाला polite respectful humble.

वयः	√वी 'enjoy'; आयु, उम्र; age.
निष्कृतिः	पूर्ति, प्रतीकार; return.
विपर्ययः	वैपरीत्यम्; वि+परि+√इ+‘गतौ’; विपरीत स्थिति, विपरीतता ; reverse, inversion. तु० पर्ययः ।
अवमन्येत	अव√मन्, अनादर करना, तिरस्कार करना; to despise, to condemn.
समासेन	संक्षेपेण; संक्षेप में, थोड़े में; briefly, in short. सम्+√अस्+अ.
दृष्टिपूतम्	आँख से देखकर; having carefully observed.
कृष्णवर्त्म	कृष्णं वर्त्म यस्य, अग्नि, fire.
अस्तेयम्	न स्तेयम्; चोरी न करना; not stealing.
इन्द्रियनिग्रहः	इन्द्रियाणां संयमः; इन्द्रियों का संयम; control of the senses.
दमः	दमनम्; रोकना; control restraint.

त्रयोदशः किरणः

मन्दाकिन्याम्	गङ्गा नदी में; in the river Ganges.
तूष्णीम्	चुपचाप, बिना बोले; silently, without speech.
अकण्टकम्	कण्टकैर्हीनम्; विघ्नरहित, बिना विघ्न के; free from impediments.
अम्बुवेगेन	अम्बुनो वेगः तेन; जल की धारा; the flow of water.
खरः	गर्दभः; गदहा; an ass.

भास्करी

तार्क्ष्यस्य	गरुडस्य; an epithet of Garuḍa.
अरिदमः	अरीन् दमयतीति; शत्रुयो का नाश करने वाला; destroyer of enemies.
ककुत्स्थः	ककुत्स्थस्यापत्यम्; सूर्यवंशी राजा ककुत्स्थ का वंशज; a descendent of ककुत्स्थ of solar dynasty.
कुञ्जराः	कुञ्ज+रः; कुञ्जः=करः; हाथी; an elephant; तु० दन्ती.
सुसमाहिताः	सम्यक्तया आहिताः, भली-भाँति एकत्र किये गये; मिलाये गये; well adjusted, well united.
निघषाः	नि+√चि+अ; समूह, ढेरी; a collection, heap.
दृढस्थूणम्	दृढाः स्थूणाः यस्य, मजबूत स्तम्भों वाला; resting on strong pillars, possessing firm pillars.
अंशुः	अंशुः=किरण; a ray, a beam of light.
वलयः	√वृ, वरिः=वलिः; सिकुड़न, झुरी, a wrinkle.
ऋतुमुखम्	ऋतु का आरम्भ; the advent or beginning of a season.
धसुनि	धन, सम्पत्ति; wealth, riches; from √वस् 'to shine.'
सार्थम्	सार्थः=काफला; troop, multitude.
पितृपैतामहः	पिता, पितामह से संबद्ध, वंश से संबद्ध; belonging to father and forefather.
व्यतिक्रमः	वि+अति+√क्रम्; उल्लंघन, चूक, अनियमितता; violation, breach.
स्वर्गतः	मृत, दिवंगत; gone to heaven.
ऋद्धिः	√ऋध्+ति, उन्नति, समृद्धि, वैभव, सफलता; rise, prosperity.
न्याय्यम्	न्यायादनपेतम्, न्याययुक्त; right, proper.

चतुदश किरण

तुमुलम्	महत्, कोलाहलपूर्ण, उत्तेजनापूर्ण; tumultous, noisy, excited.
रुधिरौक्षितसर्वाङ्गौ	रुधिराक्षितौ क्षितौ सर्वाङ्गौ अङ्गानि ययोः; जिनके सभी अङ्ग खून में सन गये हैं; having all the limbs besmeared with blood.
अपारवीर्यौ	अपारम् वीर्यं ययोः; असीमित बल वाले, अति बलशाली; of unlimited strength.
द्विरदौ	द्वौ रदौ यस्य=हस्ती, हाथी; an elephant. तु० द्विप, दन्ती ।
घोररूपम्	भयंकर रूपवाला, विकराल; of terrible form.
असंवृतम्	न संवृतम्; बेरोक; unrestrained.
चन्दनागरुषिते	चन्दन और अगरु के लेप से युक्त; smeared with sandal and agaru.
परीप्सन्तौ	आप्तुमिच्छन्तौ, परि+√आप्+सन्+शतृ; प्रयत्न करते हुए, ताक में लगे हुए; striving, contesting.
पावकार्चिषः	पावकस्यार्चिषि, आग की चिनगारिया; the flames of fire.
वृषभाक्षौ	साँड के समान नेत्र वाले; having eyes like those of a bull.
संरब्धम्	=सम्+रम्+त=उत्तेजित; excited, agitated.
अमितौजसम्	अमितम् ओजो यस्य तम् । अवुलित बलशाली, महान् पराक्रमी; of unmeasured prowess.
सृत्या	सृतिः √सृ+तिः; उड़ल, पेंच, दाँव; gliding.
वज्रनिष्पेषसमा	वज्र की चोट जैसी; like a stroke of thunderbolt.

पञ्चदश किरणः

शमयित्रे	—ता=विनाशक; शान्त करनेवाला, दवानेवाला, मारनेवाला; one who quiets or calms down.
----------	---

भास्करी

स्तुत्यम्	स्तवनाहंम्, स्तुतियोग्य, प्रशंसायोग्य; praiseworthy.
अवाङ्मनसगोचरम्	वाक् च मनश्च वाङ्मनसी, तयोर्गोचरो विषयो न भवतीति; वाणी और मन की पहुँच से परे, वर्णनातीत, मन से परे; beyond the reach of speech and mind, indescribable and incomprehensible.
संहर्त्रे	सम् + √हृ + तृ, संहारकः; एकत्र करनेवाला; one who collects.
अमेयः	न मेयः, इत्यतया अपरिच्छेद्यः, निःसीम, असीमित; immeasurable, limitless,.
मितलोकः	मितो लोको येन; जिसने विश्व को नाप डाला हो; one who has measured the world.
प्रार्थनावहः	प्रार्थना, भावहतीति कामद इत्यर्थः; प्रार्थना पूरी करने वाला; giver of desired objects.
जिष्णुः	जयशीलः, जयशील, विजयी, जीतनेवाला; conqueror, one who wins.
अव्यक्तः	न व्यक्तः, अत्यन्तं सूक्ष्मरूपः, वि + √अञ्ज् + त; जो व्यक्त न हो; un-manifest.
व्यक्तकारणम्	व्यक्तस्य चराचरस्य जगतः कारणम्; व्यक्त का कारण, दृश्यमान जगत् का कारण; the cause of the manifest.
अनासन्नम्	न आसन्नम्, आ + √सद् + त; निकट नहीं, बहुत दूर; not near, far, तु०—अभ्यर्ण ।
अनघस्पृष्टम्	अघेन स्पृष्टः, अघस्पृष्टः; न अघस्पृष्टः, दोष या पाप से अछूता; un-touched by sins or distress.
सर्वयोनिः	सर्वस्य कारणम्, सबका मूल; the source of all.
आत्मभूः	आत्मनो भवतीति, स्वयं उत्पन्न; अपने ही से उत्पन्न; self-born, self-caused.
सर्वरूपभाक्	सर्वाणि रूपाणि भजत इति, सभी रूपों में विद्यमान, सभी रूपों का पात्र; dwelling in all the forms, liable to all the forms.

चतुर्वर्गफलम्	चतुर्णां धर्मार्थकाममोक्षाणां वयं स फलं यस्य तत् मानव जीवन् के चार पुरुषार्थ (धर्म अथ, काम और मोक्ष) ह फल जिसे (जान) के; having four ends of human life as fruit.
चतुर्युगाः	कृतत्रेताद्वैपरकलितामकानि चत्वारि युगानि यामु ताश्चतुर्युगाः कालावस्थाः कालपरिमाणम्; the measure of time divided into four Yugas.
अभ्यासेन निगृहीतेन	अभ्यासेन निगृहीतम्; अभ्यास द्वारा वश में किया गया; controlled by practice of the austerities.
चतुर्वर्णमयः	चत्वारो वर्णाः यस्मिन्निति चतुर्वर्णमयः, चातुर्वर्ण्यप्रचुर इत्यर्थः; society mainly consisting of four castes, i. e. ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य and शूद्र ।
हृदयाश्रयम्	हृदयम् आश्रयो यस्य तम्, हृदय में स्थित; residing in the heart.
अजः	न जायत इत्यजः, जन्मशून्यः; जो पैदा न हो, अनादि; unborn, not born.
विविचिन्वन्ति	वि+√वि, अन्विष्यन्ति, तु० चिन्तोति, सुनोति; seek.
निरोहस्य	चेष्टारहितस्य, ईहारहितस्य, निश्चेष्ट, चेष्टारहित; effortless.
हतद्विषः	हता द्विषो येन तस्य; मार दिये हैं शत्रु जिसने; one who has destroyed his enemies.
जागरूकस्य	प्रबुद्धस्य, सर्वसाक्षितया नित्यप्रबुद्धस्य, √जागृ-+ऊक, सावधान, जगा हुआ, सजग; vigilant, careful, watchful.
आगमैः	सांख्यादिभिर्दर्शनैः, धर्मशास्त्र, धार्मिक नियम, दर्शन, सिद्धान्त; scriptures
पन्थानः	पथिन्; मार्गाः, उपायाः, रास्ते; ways.
सिद्धिहेतवः	पुरुषार्थस्य साधकाः; प्राप्ति के साधन, मुक्ति के साधन; the cause of attainment, the cause of liberation.
जाल्लवीयाः	जाल्लव्या इमे जाल्लवीयाः; गङ्गा, गङ्गा-संबंधी; of the Ganges.
ओघाः	धारा, प्रवाह, बाढ़; current, flow, flood.

भास्करी

आवेक्षितचित्तानाम्	(त्वयि) आवेक्षितं चित्तं येस्तेषाम्; तुम्हारा ध्यान करने वाले, जिन्होंने अपना मन तुममें लगा रखा है; those who have fixed their minds on you, those who have surrendered or resigned themselves to you.
वीतरागानाम्	इच्छारहित, निष्काम, उदासीन, विरक्त; disinterested, without any desire.
त्वत्समर्पितकर्मणाम्	तुभ्यं समर्पितानि कर्माणि यैः तेषाम्; जिन्होंने अपने कर्म तुम्हें सौंप दिये हैं; those who have given over their actions to thee. समर्पित= सम्+√कृ+त ।
विवस्वतः	विवस्वात्, विवस्वत्तौ, etc., सूर्य; the sun.
निवेदितफलाः	निवेदित है फल जिनका, समर्पित है फल जिनका ।
लोकानुग्रहः	लोकस्य अनुग्रहः, कृपा; विश्व के लिए कृपा, दया; the favour to the universe.
उत्कीर्त्त	उद्+√कीर्त्=कृत्, बखान करके; having proclaimed, praised.
इयत्ता	इयतो भावः, सीमा, मान; limitation, limit.

षोडशः किरणः

निसर्गात्	स्वभाव से, जन्म से; by nature, by birth. नि+√सृज् ।
पाकशासनः	इन्द्रः, पाकी नाम कश्चिद्राक्षसः, तस्य शासनः, नन्धादित्वाल्प्युप्रत्ययः ।
अनुरूपेण	अनुरूप; becoming.
वयोऽतीतः	यौवनादिकमतीतः, द्वितीयासमासः, तु०—‘द्वितीया श्रितातीत—’; beyond age.
ब्राघीयसा	ब्राघीयस्, ब्राघिष्ठम्; तु०—लघुः, लघीयान्, लघिष्ठः; अधिक बड़ा, अधिक लम्बा; bigger, longer.

परिकलान्तः	परि+√कलम्+त, परिथान्तः, थका हुआ, चूर-चूर; fatigued, exhausted.
कीर्णया	√कृ+त, व्याप्तया; बिखरी हुई, व्याप्त; strewn, scattered. तु०—शीर्ण, चीर्ण, पूर्ण ।
इन्दुकरैः	इन्दोः कराः तैः, चन्द्रमा की किरणें; the beams of the moon.
युक्तया	√युच्+त, युक्त, मिश्रित; mixed, united.
अह्नः पर्यन्तः	दिनान्तः; the close of the day.
लोकाभिभाविना	लोकमभिभवतीति, लोकव्यापीत्यर्थः, तेन । अभि+√भू, लोकजयी, संसार को जीतने वाला; overcoming the world.
धाम्ना	तेजसा; √धा+मन्; splendour.
अंशुमान्	अंशु+मतुप्, सूर्य; the sun.
तन्वभ्रपटलच्छन्निग्रहः	स्तोकाभ्रवृन्दान्तरितमूर्तिः; पतले बादलों से छिपा हुआ है शरीर जिसका; one whose body is covered by the thin clouds.
अप्राकृताकृतिः	अलोकसामान्यमूर्तिः, अप्राकृता आकृतिर्यस्य, अकामान्य आकृति वाला; of unusual aspect.
आक्रान्तलक्ष्मीकः	आक्रान्ता अभिभूता लक्ष्मीराश्रमशोभा येन; आ+√कम्+त; आश्रम शोभा को दवाता हुआ; one who has overpowered the beauty of the hermitage.
ससाध्यसम्	साध्यसेन सहितम्; सभयम्; frightened.
पृथासूनुः	पृथायाः सूनुः (पार्थः), पृथा (कुन्ती) का पुत्र, अर्जुन; the son of Prthā= Arjuna.
परितस्तरे	परि+√स्तृ, लिट् लकार ।
प्रह्लावते	प्र+√ह्लद्=आनन्दित होना, आनन्दित करना; to be delighted, to be greatly pleased.

भास्करा

आतिथेयीम्	अतिथिषु साध्वीम् ('पूजाम्' का विशेषण), अतिथियों के योग्य; befitting guests.
अपचितिम्	पूजा, सत्कार, संमान; honouring, worshipping. 'पूजा नमस्यापचितिः' इत्यमरः ।
हरिः	इन्द्र, Indra.
व्याजहार	उक्तवान्, वि+आ+√हृ; बोला; spoke. तु०—व्याहार उक्तिर्लपितम् ।
वर्षीयान्	अतिवृद्ध, वर्षीयस् (वृद्धशब्दस्य वर्षाद्वाद्वाः); अधिक आयुका, बहुत पुराना; older, very old.
गुणसंपद्	गुणरूपा संपत्, (गुण=तप आदि), गुण—रूपी संपत्ति, सद्गुण; the treasure of virtues.
शरदम्बुधरच्छायाः	शरदः अम्बुधराणां छाया इव चञ्चलाः, शरद् ऋतु के बादल की छाया के समान चञ्चल; fickle like the shade of the cloud in autumn. गत्वरी=सृत्वरी ।
आपातरम्याः	आपाते (एव) रम्याः, तत्कालरम्याः; केवल भोग के समय सुखदायी; charming till the enjoyment only. तु०—"तदात्वे पात आपातः" इति वैजयन्ती ।
पर्यवस्थाता	परि+अव+√स्था+तृ; प्रतिरोद्धा, रोकनेवाला, दवानेवाला ।
युयुत्सुना	√युष्+सन्, लड़ने का इच्छुक, युद्धप्रिय; desirous of fighting.
भयः	भवतीति; योग्य; होने योग्य ।
उत्तिष्ठते	उद्+√स्था, उद्युक्तो भवति । Note the use of आत्मनेपद । gets prepared; otherwise उत्तिष्ठति ।
केवलाजिनवल्कले	केवले अजिनवल्कले; केवल मृगचर्म और पेड़ की छाल; only the skin of a deer and the bark of a tree.
चित्तवान्	प्रशस्तचित्तः; of excellent mind.
प्राणभृत्	प्राणान् विभर्तीति; जीव, प्राणी; living being.

कथलभ	एव only
आनुयतम्	आ√मुच् +त; पहरा है; put on.
संदेहयति	सम्√दिह्; संदेह पैदा करता है; causes doubt in my mind.
निःस्पृहः	गतस्पृहः; devoid of attachment.
अनभिद्रुहः	अहिंसकस्य, अभिद्रोषीति √द्रुह्; one who does not hate.
अत्रभवान्	पूज्य इत्यर्थः, तु०—'त्रिषु तत्रभवान् पूज्यस्तथैवात्रभवानपि' इति यादवः ।
क्रोधलक्ष्म	क्रोधस्य लक्ष्म चिह्नम्; क्रोध का चिह्न; the sign or expression of anger.
अर्थकामौ	अर्थश्च कामश्च; अर्थ और काम; wealth and love.
मा पुषः	मा उपचिनुष्व; do not increase.
तत्त्वावबोधस्य	तत्त्वस्यावबोधः ज्ञानम् तस्य; तत्त्व का ज्ञान, सत्य का ज्ञान; knowledge of reality, perception of the truth.
दुरुच्छेदौ	दुःखेन उच्छेद्यौ, दुर्वारौ; difficult to eradicate.
गत्वरीः	क्षणिक, बीतने वाली, चंचल; momentary. Acc. of गत्वरी, √गम्
उदन्वान्	उदकमस्त्यस्मिन्नित्युदन्वानुदधिः; अर्ण-व, जल से पूर्ण, जल वाला; watery, abounding in water.
वामशीलाः	वामं वक्रं शीलं येषाम्; दुष्ट, कुटिल स्वभाव वाले, शठ; of a crooked nature.
असवः	√अस्, 'भुवि'; प्राण; असवः प्राणाः; life, breath.
शल्यम्	बाण, तीर, बछ्छा; an arrow, a shaft.
मा नीनशः	√नश्, नष्ट न करो, न भुलाओ; do not efface, drive away, spoil.
मा सञ्जि	√सञ्ज् परिष्वज्जे; लुडि; न माङ्गयोगे; तु० मा नीनशः

भास्करी

उच्छेदम्	विनाशम्; उद्+छिद्; काटना, विनाश; cutting off, destruction.
उदायुधः	गृहीतशस्त्रः, उद्धृतमायुधं येन; हथियारबंद; equipped with weapons.
प्रश्रयगम्भीरम्	विनयमधुर; शील से गम्भीर, तु०—'विनयप्रश्रयौ समौ' इति यादवः; sober with courtesy, courteous.
कपिध्वजः	अर्जुन, जिसकी ध्वजा पर वानर की आकृति है; Arjuna, having monkey on the flag.
पौर्वापर्यम्	कारणं फलं च, पूर्वं चापरं च पूर्वापरे, त एव पौर्वापर्यम्; पहले और बाद का संबंध, उचित क्रम; cause and effect, reason and result.
स्फुटतारस्य	व्यक्ततारस्य; तारों से खिला हुआ, जिसमें तारे निकल आये हों; in which the stars are distinct or shining, starry.
कृष्णद्वैपायनः	द्वीपोज्यन्तं जन्मभूमिर्यस्य स द्वीपायनः, स एव द्वैपायनो व्यासः; व्यास का एक नाम; a name of Vyāsa. कृष्णवर्णत्वात् कृष्णद्वैपायनः ।
मस्त्यतः	—त्वान्=इन्द्र का एक नाम; a name of Indra.
दुरक्षान् दीव्यता	कपटपाशकैरित्यर्थः; 'दिवः कर्म च' इति करणे कर्मसंज्ञा, दीव्यता क्रीडता, √दिव् क्रीडायाम्; कपटपाशों से खेलते हुए; gambling with deceitful dices.
पार्थः	पृथा कुन्ती तस्वास्तमथः, अर्जुन ।
धनंजयः	धनानां जेता, उत्तरकुरुभ्यः धनाहरणादर्जुनस्येदं नाम; winner of wealth.
पणताम्	गलहताम्; दाँव पर लगाना; staking, wager.
दायादैः	दायं पैतृकं धनमाददत इति दायादा जातयः तैः; relatives.
प्रास्तस्य	प्र+अस्तः, निरस्तः ।
सोढवान्	असह्यत; √सह्+क्तवतु; सह गया; tolerated.
अन्त्याम्	अन्ते भवाम्, निकृष्टाम्; नीच, आखिरी; the worst.

अवाच्यता	निघता censure
कूलच्छाया	(आसन्नपानस्य नदी-) तटस्य छाया; नदी-तट की छाया; the shade on the bank of a river.
अवधूय	परिभूय; अव+धू 'कम्पनं'; तिरस्कृत करके; having treated with contempt, having disregarded.
वसुंधरा	वसूनि धनानि वरतीति; पृथिवी; the earth.
ह्लेपयन्ति	ह्लीवातोर्ण्यस्ताल्लट्; लज्जयन्ति; लज्जित करते हैं; put to shame. cause to blush.
अन्तरायम्	—यः=विघ्न, बाधा; an impediment, obstacle.
उदन्वद्भीचिचञ्चलम्	उदन्वतो वीचय इव चञ्चलम्, समुद्रतरङ्गवदस्थिरम्; समुद्र की लहरों के समान चञ्चल, क्षणभङ्गुर; fleeting or momentary like the waves of the sea.
अनुवर्त्यन्ते	अनु+√वृत्; अनुवर्तन्ते; तु०—एणद्धि, रुन्वे; पालन करते हैं; follow.
कृतध्वंसाः	कृतापकाराः (भरातिभिः); शत्रुओं द्वारा जिनका ध्वंस या अपकार हुआ है; having been ruined (by the enemies)
अनित्यताशनिः	अनित्यता विनाशिता सैव अशनिः; अनित्यता-रूपी वज्र; the thunder of impermanence.
विच्छिन्नाश्रयितायम्	विच्छिन्नं वाताहतम् अन्नं तदिव विलीय; जिस प्रकार बादल नष्ट होते हैं; just as clouds melt away. उपमाने कर्मणि च' इति कर्तरि उपपद णमुल् ।

सप्तदशः किरणः

अनर्घम्	अमूल्यम्, अमूल्य; priceless, invaluable.
अगोचरः	अविषयः; न-गोचरः; पहुँच से परे; beyond the reach.

मास्करी

प्रभविष्णवः	प्रभावशाली; प्र+√भू+इष्णुच्; शक्तिशाली, वैभव-संपन्न; mighty, powerful, glorious. तु०—अलंकरिष्णुः ।
समासु	वर्षेषु; years.
शुश्रूषाभिरतः	शुश्रूषा में रत; सेवा में तत्पर; सेवा में संलग्न; devoted to the service.
निष्कृतिः	बदला; acquittance; निष्कृत्यः=निष्क्रीयते प्रत्याह्वियतेऽनेन परिगृहीतमिति निष्कृत्यः ।
मुष्टिमात्रम्	एक मुट्ठीभर; a handful.
अणीयसः	अणुः, अणीयान्, अणिष्ठः; तु० लघुः, लघीयान्, लघिष्ठः; सबसे छोटा कण, रत्नमात्र; the smallest particle.
अभिस्नेहः	अभि+स्निह्; लगाव, प्रेम; attachment.
अभिष्वङ्गस्य	अभि+स्वज्, गाढ स्नेहस्य; गहरे प्रेम का; of deep attachment.
दुरुपपादेषु	दुर्+उप+पद्; दुष्करेषु, कठिन; difficult to accomplish.
अवसादे	अव+सद्; शोक में; sitting down, lassitude.
प्रायणोत्तरम्	प्र+अयन+उत्तरम्; मरने के बाद; after death.
निवापादि	निवाप+आदि; श्राद्धादि; offerings at the śrāddha.
दिष्टभार्वं गते	मृते, मरने पर; on death.
उपचितिम्	उप+चि+ति; वृद्धिः, बढ़ती, विकास; growth, increase. तु० अभ्युपचयः; अभ्युपचितिः ।
परिवर्त्तनेन	परिवर्त्तनेन; change.
युगानुयुगम्	युग-युग में, युग के बाद युग में, निरन्तर; age after age, constantly.
अवसक्तानि	अव+सञ्ज्+त; लगे हैं; are attached.

अनारतम	न-आ-√रम्-त सततम् निरन्तरं लगातार constantly per- petually
प्रालेयाद्रेः	हिमालयस्यः, प्रालेयम्=snow, frost, हिमालयः the Himālayas.
उपत्यकाः	वादी; valleys, a land at the foot of a mountain. पर्वतस्यासन्नं स्थानमुपत्यकाः, आरुढं स्थलमधित्यका. cp. उपाधिभ्या त्यक्त्वासन्ना- रुढयोः P. 5.2.39.
आशुणे आलोके	आशान्तिके प्रकाशे; प्रातः कालीन प्रकाशमें; in the morning light.
सायंतने	संध्याकालीन; belonging to the evening.
उस्मयमाना	उद्-√स्मि, शानजन्तः; मुस्कुराती हुई; smiling.
तनुप्रवाहा	अल्पप्रवाहा, पतला है प्रवाह जिसका, पतली धारा वाली; of narrow flow, of narrow current.
रहस्यनिचिता	रहस्यों से भरी; full of mystic ideas.
मन्थर--रा	मन्द और शान्त है प्रवाह जिसका; of slow and graceful flow.
जीवला	जिन्दा दिल, full of life.
पृथुपीनवक्षाः	पृथु पीन च वक्षो यस्याः; विशाल वक्षस्थल वाली, दूर-दूर तक फैली हुई। of broad and heavy breasts, expanding far and wide.
अपोहिताः	अपाकृताः, अप-+√बह्-त; हटाई गई; removed, taken away.
पुरातनरुढयः	पुरानी रीतियों, प्राचीन अन्धविश्वास; old conventions, super- stitions.
उद्धर्तयेत्	उद्-+वर्तयेत्, √वृत्; मरोड़ डाले; would eradicate or destroy.
उपगूहन्ति	उप-+गूह्, अभि-ध्वजन्ति; clasp, embrace.
निगडितः	बद्धः, बन्धनबद्ध, बँधा हुआ; fettered.
मिथः	परस्पर, आपस में; mutually

भास्करी

परिदुम्बन्ति	परितो दुम्बन्ति दुःखयन्ति, सता रही हैं; जता रही हैं; afflict.
रिक्थे	उत्तराधिकार, पैतृक धन; inheritance, legacy.
अवैमि	अव-√इ; जानता हूँ; realize.
बन्धः	कडी, जुज ।
शेवधिः	मूल्यवान् संपत्ति; a valuable treasure.
प्रभवः	प्र-√भू; मूल स्रोत; source.
परिमण्डनम्	परितो मण्डयति अलंकरोतीति; आभूषण, गहना; an ornament on all sides.
कणशः	लवण., कण-कण करके, प्रत्येक कण; by particle, every atom.
पांसुपरुषाः	पांसुभिः परुषाः; धूलि-धूसरित, धूल में सने हुए; harsh or rough with soil.
मृदा	मृद्=पृथ्वी, धूल; soil, earth.